हिन्दी

महाभारत

आश्वमेधिकपर्व

लेखक
चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्मा

प्रकाशक
रामनरायन लाल
पब्लिशर और बुकसेलर
इलाहाबाद

१९३०

आश्वमेधिकपर्व

विषय-सूची

अध्याय

अध्याय

अध्याय

पृष्ठ

अध्याय

२
२
२
२
२
२
२
२
२
३
३
३
३
३
३
३
३
३
४
४
४
४
४
४

ग्रन्थ-लेखन

आश्वमेधिकपर्व

प्रथम अध्याय

युधिष्ठिर की विकलता और धृतराष्ट्र द्वारा सान्त्वना-प्रदान

श्रीनारायण को, नरों में उत्तम नर भगवान को और देवी सरस्वती को प्रणाम कर, जय नाम के इतिहास की कथा कहे।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! महाबाहु युधिष्ठिर तर्पण कर्म समाप्त कर और धृतराष्ट्र को आगे कर, गङ्गा से बाहिर निकले। उस समय युधिष्ठिर का चित्त बहुत व्यग्र हो रहा था। उस समय उनके नेत्रों से आँसुओं की धारें बह रही थीं। वे तट पर आ, मारे व्याकुलता के वधिक से घायल हाथी की तरह, भूमि पर गिर पड़े। श्रीकृष्ण जी के कहने से भीमसेन ने युधिष्ठिर को पकड़ लिया। उस समय श्रीकृष्ण जी ने युधिष्ठिर से कहा—युधिष्ठिर! तुमको इस प्रकार घबड़ाना उचित नहीं।

हे राजन्! उस समय पाण्डव, भूतलशायी युधिष्ठिर को शोकार्त्त, दीन चित्त, ज्ञान रहित और लंबी साँसे छोड़ते देख, बहुत दुःखी हुए और हताश हो बैठ गये। तदनन्तर पुत्र शोकातुर, प्रज्ञाचक्षु एवं बुद्धिमान् धृतराष्ट्र ने राजा युधिष्ठिर से कहा—

हे कुरुशार्दूल! तुम उठो और आगे जो कर्म करने हैं, उन्हें पूरा करो। हे कुन्तीनन्दन! तुमने क्षात्रधर्मानुसार इस पृथिवी को जीता है। अतः सुहृदों और भाइयों सहित इसका उपभोग करो। हे धार्मिकश्रेष्ठ! यह

समय शोक करने का नहीं है। क्योंकि तुम्हारे शोक का कारण तो मुझे कोई देख नहीं पड़ता। हे राजन्! जिसके स्वप्न में प्राप्त धन की भाँति सौ पुत्र मारे गये, उस गान्धारी और मुझको शोक करना उचित है। हे राजन्! दुर्बुद्धिवश, महात्मा और अपने हितैषी विदुर के महत् अर्थयुक्त कथन को न सुन कर, मुझे अब सन्तप्त होना पड़ा है। दिव्यदर्शी महात्मा विदुर ने मुझसे कहा था—दुर्योधन के अपराध से आपका श्रेष्ठ कुल नष्ट होगा। यदि आप अपने कुल की भलाई चाहते हैं तो मेरे कथनानुसार इस दुष्ट एवं मन्दबुद्धि दुर्योधन को त्याग दीजिये। इसका कर्ण और शकुनि का साथ छुड़ा दीजिये और इन दुराचारियों के द्यूत को इनके प्रवादों सहित रोक दीजिये। हे राजन्! धर्मात्मा युधिष्ठिर को राजसिंहासन पर अभिषिक्त कीजिये। क्योंकि वह संयतेन्द्रिय धर्मपुत्र, राजसिंहासन पर बैठ धर्म पूर्वक राज्य करेगा। यदि आप कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर को राज्य देना न चाहते हों, तो आप मध्यस्थ हो स्वयं राज्य करें। जब आप पक्षपात छोड़ कर राज्य करेंगे, तब आपके स्वजन आपका आश्रय ग्रहण कर, जीविका निर्वाह करेंगे।

हे कुन्तीनन्दन! दूरदर्शी महात्मा विदुर के इस प्रकार कहने पर भी, मैं अपनी दुर्बुद्धि में पड़ गया और विदुर के कथनानुसार न चल कर पापी दुर्योधन की बातों में आ गया। विदुर का कहना न मानने ही से आज मुझे इस शोक-सागर में निमग्न होना पड़ा है। हे प्रजा-नाथ! अपने मातृ पितृ-स्थानीय दुखिया हम दोनों बुढ़िया बुड्ढों की ओर देखो। इस समय तुम्हें शोक करना उचित नहीं।

दूसरा अध्याय

श्रीकृष्ण का युधिष्ठिर को समझाना

वैशम्पायन जी बोले, हे जनमेजय! जब मेधावी युधिष्ठिर, बुद्धिमान राजा धृतराष्ट्र के ऐसे वचन सुन कर, चुप हो गये, तब श्रीकृष्ण जी ने उनसे कहा—

हे प्रजानाथ! जो मन ही मन अति दुःखित होता है, उससे मृत पूर्वजों को बड़ा सन्ताप प्राप्त होता है। अतः आप दुःख को त्याग कर पूर्ण दक्षिणा वाले विविध यज्ञानुष्ठान और सोमपान द्वारा देवताओं को और तर्पण द्वारा पितरों को तृप्त कीजिये। महाराज! इस समय आपके सदृश महाप्राज्ञ पुरुष को, अन्न एवं जल से अतिथियों को प्रसन्न करना चाहिये और दरिद्र मनुष्यों को उनकी मुहमाँगी वस्तु दे, सन्तुष्ट करना चाहिये। आपको इस प्रकार मोहमुग्ध होना उचित नहीं। आप गङ्गानन्दन भीष्म, कृष्णद्वैपायन व्यास, नारद और विदुर से कर्तव्य कर्म का उपदेश प्राप्त कर चुके तथा राजधर्म भी सुन चुके। अतः आपको इस प्रकार अज्ञानियों की तरह वन जाना शोभा नहीं देता। आप अपने बाप दादों की लकीर पर चल, राज्य भार उठाइये। जिन यशस्वी वीरों ने क्षात्र धर्म का अवलंबन कर युद्ध में प्राण गँवाये हैं, उन्हें स्वर्ग मिला; क्योंकि उनमें से किसी ने रणक्षेत्र में पीठ नहीं दिखलायी। हे महाराज! जो होनहार था, वही हुआ है। इसके लिये आप को शोक करना उचित नहीं। युद्ध में जो लोग मारे गये हैं, आपके शोक करने पर भी, आप उन्हें कदापि नहीं देख सकते।

हे जनमेजय! जब श्रीकृष्ण जी इस प्रकार युधिष्ठिर को समझा कर, चुप हो गये, तब परम तेजस्वी युधिष्ठिर ने उनसे कहा।

युधिष्ठिर बोले—हे गोविन्द! आपकी मेरे ऊपर जैसी प्रीति है, वह मुझे मालुम है। आपने प्रीति और सुहृदतावश मुझ पर जो अनुकम्पा की है, वह भी मुझे विदित है। हे श्रीमान् चक्रगदाधारिन्! हे यादवनन्दन! मेरी सब प्रकार से भलाई आप ही के द्वारा हुई है और आगे भी होगी। अब आप मुझे प्रसन्न हो तपोवन में जाने की अनुमति प्रदान करें। क्योंकि पितामह को मार कर, मेरा मन शान्त नहीं होता। संग्राम में कभी मुख न मोड़ने वाले कर्ण को मार कर मेरा मन शान्त नहीं होता। हे जनार्दन! जिस कर्म द्वारा मैं इन सब पापों से छुट जाऊँ और मेरा मन पवित्र हो, आप मुझे उसीका विधान बतलावें।

जब पृथापुत्र युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण जी से इस प्रकार कहा, तब परम तेजस्वी और धर्मज्ञ वेदव्यास जी ने युधिष्ठिर को ढाँढस बँधाते हुए ये अर्थ-युक्त और कल्याणकर वचन कहे।

व्यास जी बोले—हे तात! तुम्हारी बुद्धि अभी नितान्त कच्ची है। इसीसे तुम बाल-स्वभाव-सुलभ अज्ञानवश मुग्ध होते हो। हम लोग जब इतना तुम्हें समझाते हैं, तब भी तुम नहीं समझते; तब क्या हम लोग पागल हैं, जो बार बार व्यर्थ अपनी वाणी को कष्ट दें। तुमको वह क्षात्र धर्म विदित है, जिसके अनुसार क्षत्रिय की आजीविका युद्ध बतलाया गया है। जो राजा न्यायपूर्वक शासन करता है, उसे मानसिक शोक में नहीं फँसना पड़ता। तुम यह जानते हो। साथ ही तुम मोक्षधर्म भी यथार्थ रीत्या सुन चुके हो। मैं स्वयं अनेक बार तुम्हारे कामज सन्देहों को दूर कर चुका हूँ। यह तुम्हारी दुर्बुद्धि है कि, तुम मेरे कथन पर श्रद्धा नहीं रखते। जान पड़ता है, तुम्हारी स्मरण शक्ति निश्चय ही लुप्त हो गयी है। तुम्हें ऐसी बातें शोभा नहीं देतीं। तुमको अज्ञानी बनना उचित नहीं। हे अनघ! तुम स्वयं समस्त पापों के प्रायश्चित्त जानते हो। क्योंकि तुम राज-धर्म और दानधर्म सुन चुके हो। अतः सब धर्मानुष्ठानों को जान कर तथा सर्व-शास्त्र-विशारद हो कर, क्यों बारंबार अज्ञानियों की तरह अज्ञान से मोहित होते हो?

तीसरा अध्याय

यज्ञ करने के लिये व्यास जी का युधिष्ठिर को उपदेश

व्यास जी बोले—हे युधिष्ठिर! मैं जान गया, तुम्हारी बुद्धि कुण्ठित हो गयी है। क्योंकि कोई भी मनुष्य स्ववश हो कोई कर्म नहीं करता। हे मानद! मनुष्य, ईश्वर की प्रेरणा से शुभाशुभ कर्मों को करता है। इसमें

परिताप करने की कौनसी बात है ? हे भारत ! यदि तुम निश्चय ही अपने को पापी समझते हो, तो जिस प्रकार तुम पाप से छूट सकते हो—सो सुनो।

हे युधिष्ठिर ! मनुष्यगण सदैव बहुत से पाप कर्म कर, तपस्या, यज्ञ और दान द्वारा उन पापों से छूट जाया करते हैं। हे नरनाथ ! पापियों की पाप से शुद्धि, यज्ञानुष्ठान, तपश्चर्या और दान देने ही से होती है। क्या देवता और क्या असुर सभी तो—पुण्य सञ्चय और पापनिवृत्ति के लिये समधिक यज्ञानुष्ठान किया करते हैं। इसीसे यज्ञ श्रेष्ठ माना गया है। देवता लोग यज्ञ द्वारा ही असुरों से अधिक प्रभावशाली बने और क्रियावान् देवताओं ने दानवों को परास्त किया। हे युधिष्ठिर ! अतः तुम भी दशरथ-नन्दन श्रीरामचन्द्र की तरह, राजसूय, अश्वमेध, सर्वमेध और * नरमेध यज्ञ करो और विधि पूर्वक ब्राह्मणों को बहुत सी दक्षिणा दो तथा अन्नादि लोगों को बाँटो। किन्तु यज्ञ, चित्त को सावधान किये बिना नहीं होते—अतः प्रथम तुम अपना चित्त सावधान करो। तुम्हारे पितामह दुष्यन्त-पुत्र एवं शकुन्तला-नन्दन, महाबली पृथिवीनाथ महाराज भरत ने इसी प्रकार यज्ञ किये थे।

युधिष्ठिर बोले—अश्वमेध यज्ञ निस्सन्देह राजाओं को पवित्र करने वाला है, किन्तु इस सम्बन्ध में मेरे जो विचार हैं, उन्हें भी मैं आपके सामने प्रकट कर देना चाहता हूँ। हे द्विजवर्य ! मैं इतना भारी प्राणियों का संहार कर, अल्पदान करना उचित नहीं समझता। क्योंकि इस समय मेरे पास इतना धन नहीं है कि, मैं बहुत सा दान कर सकूँ। साथ ही मैं यह भी नहीं चाहता कि, जिन राजपुत्रों के अभी घाव तक नहीं सूखे और जो स्वयं इस समय कष्ट में पड़े हुए हैं, उनसे धन लूँ। हे द्विजसत्तम ! मैं स्वयं जनसंहार कर, यज्ञ के लिये किस मुँह से कर वसूल करूँ ? हे मुनिसत्तम ! हम लोगों को तो दुर्योधन ने इस अकीर्तिकर कार्य में प्रवृत्त किया है और उसीके अपराध से भूमण्डल के राजाओं का नाश हुआ है। धृतराष्ट्रपुत्र नीचमना दुर्योधन

---

* मूल पाठ यह है:—

"नरमेधं च नृपते त्वमाहर युधिष्ठिर।"

ने लोभ में पड़ पृथिवी का नाश किया है। इससे उसका धनकोश भी एक प्रकार से रीता सा हो रहा है। इस यज्ञ में पृथिवी दान करने की प्रथम विधि है, यह विधि विद्वानों द्वारा बनायी गयी है। यदि इस विधि के अनुसार कार्य न किया जाय, तो विधिविपर्यय के कारण यज्ञ नष्ट हो जायगा। मैं यह भी नहीं चाहता कि, इसके बदले कोई नयी विधि मैं चलाऊँ। अतः आप इस विषय में मुझे सलाह दें कि, मैं क्या करूँ ?

इस पर वेदव्यास जी ने कुछ देर तक विचारने के बाद कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर से कहा— हे पार्थ ! जो धनागार रीता हो गया है, वह भर जायगा। हिमालय पर्वत में एक स्थान पर बहुत सा धन पड़ा है। यह धन राजा मरुत्त के यज्ञ में ब्राह्मणों द्वारा त्यागा हुआ है। वही धन मँगा लो। उसी से तुम्हारा यज्ञ पूर्ण हो जायगा।

युधिष्ठिर बोले—हे वाग्मिवर ! यह तो बतलाइये कि, राजा मरुत्त ने किस प्रकार वह धन एकत्र किया था और राजा मरुत्त कब हुए थे ?

व्यास जी ने कहा—हे पार्थ ! यदि तुम्हें राजा मरुत्त का वृत्तान्त सुनने की इच्छा है तो सुनो। मैं बतलाता हूँ कि, वह अति धनाढ्य राजा कब हुआ था।

चौथा अध्याय

राजा मरुत्त का वृत्तान्त

युधिष्ठिर बोले—हे धर्मज्ञ ! मैं अवश्य ही राजर्षि मरुत्त का वृत्तान्त सुनूँगा। आप मुझे उनका वृत्तान्त विस्तार पूर्वक सुनावें।

व्यास जी बोले—हे तात ! सत्ययुग में दण्डधारी महाराज मनु जी हुए। उनका पुत्र सुप्रसिद्ध प्रसन्धी था। प्रसन्धी का पुत्र क्षुप हुआ। क्षुप के पुत्र इक्ष्वाकु हुए। इक्ष्वाकु के सौ पुत्र हुए जो बड़े धर्मात्मा थे। इक्ष्वाकु ने उन सब को भिन्न भिन्न देशों का राजा बनाया। उन सब में जो ज्येष्ठ था, उसका नाम विंश था। वह एक प्रख्यात धनुर्धर था। उस

विंश का पुत्र विविंश हुआ। विविंश के पन्द्रह पुत्र थे। वे सब धनुर्विद्या में निपुण, वेदों और ब्राह्मणों के रक्षक, सत्यवादी, उदार, शान्त स्वभाव और सदा प्रिय एवं मधुर वचन बोलने वाले थे। इनमें जो ज्येष्ठ था, उसका नाम खनीनेत्र था। खनीनेत्र अपने छोटे भाइयों को सताने लगा। खनीनेत्र बड़ा पराक्रमी था। उसने अकण्टक राज्य जीता था। तो भी प्रजा को उसमें श्रद्धा भक्ति न थी। इसीसे वह अपने राज्य की रक्षा न कर सका। हे राजेन्द्र! खनीनेत्र को उसके राज्य के अधिकारियों ने राज्याधिकार से च्युत कर उसके पुत्र सुवर्च्चा को राजसिंहासन पर बिठाया। इससे सब प्रजाजन अत्यानन्दित हुए। सुवर्च्चा अपने पिता के विपरीत कर्मों और अधिकारच्युत होने का दृश्य देखे हुए था। अतः वह बड़ी सावधानी से राज्य करने लगा और वह ऐसे काम करने लगा, जिससे प्रजा की वृद्धि हो। वह वेदों और ब्राह्मणों की रक्षा करता था। वह सदा सत्य बोलता था और बड़ा जितेन्द्रिय था। वह जैसा बाहिर स्वच्छ एवं पवित्र था वैसा ही उसका अन्तरात्मा भी स्वच्छ और पवित्र था। निरन्तर धर्मानुष्ठान-परायण राजा सुवर्च्चा से उसके प्रजाजन बहुत प्रसन्न थे। उस धर्मात्मा राजा का धनागार धनरहित था। यहाँ तक कि उसके पास एक भी सवारी नहीं रह गयी। यह देख उसके पड़ोसी राजाओं ने उसे चारों ओर से सताना आरम्भ किया। धन तथा घोड़े आदि वाहनों से रहित और अनेक शत्रुओं से पीड़ित राजा सुवर्च्चा और उसके राज्याधिकारी वर्ग बहुत दुःखी हुए। जब शत्रुओं ने उस पर आक्रमण किया तब वह शत्रुओं का सामना न कर सका। जब उस राजा को तथा उसके प्रजाजनों को बड़ा कष्ट होने लगा; तब उसने प्रजा पर कर बाँधा और उस कर को उगाहा। उसकी आय से सेना खड़ी की। उस सेना से उसने अपने शत्रुओं को परास्त किया। इसीसे सुवर्च्चा का दूसरा नाम करन्धम पड़ा।

उस करन्धम का पुत्र कारन्धम त्रेतायुग के प्रारम्भ में हुआ। कारन्धम इन्द्र के समान धनी था और ऐसा बलवान् था कि, उसे देवता भी नहीं

जीत सकते थे। अतः समस्त राजा उसके अधीन हो गये। वह अपने पराक्रम और अच्छे चाल चलन से समस्त राजाओं का सिरमौर बन गया। अब वह अविक्षित नाम से प्रसिद्ध हुआ। धर्मात्मा अविक्षित, शूरता में इन्द्र के समान, तेजस्विता में सूर्य के समान, क्षमा में पृथिवी के समान, बुद्धि में बृहस्पति के समान और मन की स्थिरता में हिमाचल की तरह था। वह बड़ा धर्मात्मा था और यज्ञानुष्ठान सदा किया करता था। वह बड़ा धैर्यवान जितेन्द्रिय था। इस राजा ने अपने सद् व्यवहार और जितेन्द्रियत्व से समस्त प्रजाजनों को प्रसन्न किया। जिस सम्राट् अविक्षित ने एक सौ अश्वमेध यज्ञ किये और स्वयं विद्वान् अङ्गिरा ने जिसे यज्ञ कराये, उस धर्मात्मा अविक्षित के पुत्र राजा मरुत्त थे। यह बड़े धर्मज्ञ थे। इनके शरीर में दस हज़ार हाथियों जितना बल था। यह अपर विष्णु के समान थे। महायशस्वी चक्रवर्त्ती राजा मरुत्त अपने गुणों से अपने पिता से भी अधिक चढ़ बढ़ कर निकले। धर्मात्मा महाराज मरुत्त ने सोने चाँदी के हज़ारों यज्ञीय पात्र बनवाये और हिमालय के उत्तर अञ्चल में मेरु पर्वत पर, जहाँ एक बहुत बड़ा सुवर्ण का वृक्ष है, यज्ञकार्य आरम्भ किया। तदनन्तर उन्होंने सुनारों से अगणित सुवर्ण के कुण्ड, पात्र और पीढ़े बनवाये। यज्ञकुण्डों के निकट ही यज्ञवाट था। धर्मात्मा पृथिवीपति महाराज मरुत्त ने समस्त राजाओं सहित उसी स्थल पर विधिपूर्वक यज्ञ किया।

पाँचवाँ अध्याय

युधिष्ठिर और वेदव्यास का कथोपकथन

युधिष्ठिर ने कहा—हे वाग्मिवर! महाराज मरुत्त कैसे पराक्रमी थे और उन्होंने किस प्रकार इतना धन सञ्चित किया था? भगवन्! वह धन अब कहाँ है? और वह हमें अब क्योंकर मिल सकता है? व्यास जी बोले—हे राजन्! जिस प्रकार, प्रजापति दक्ष के सुर और असुर बहुत से

पुत्र आपस में सदा ईर्ष्या किया करते हैं, उसी प्रकार अङ्गिरा के दो पुत्र थे। उनमें से एक का नाम संवर्त था। यह बड़े व्रतशील और तपस्वी थे। दूसरे का नाम बृहस्पति था, जो ब्रह्मवर्चस से सम्पन्न थे। इन दोनों में आपस में स्पर्धा थी—अतः वे दोनों अलग अलग स्थानों पर रहा करते थे। किन्तु बृहस्पति सदा संवर्त को सताया करते थे। बड़े भाई से तंग आ कर संवर्त दिगम्बर हो और समस्त धन दौलत छोड़, वनवास की अभिलाषा से वन में चले गये।

उधर इन्द्र ने असुरों को परास्त कर, तीनों लोकों का प्रभुत्व पाया और अङ्गिरा के ज्येष्ठ पुत्र, द्विजवर्य बृहस्पति को अपना पुरोहित बनाया। इन्द्र के समान तेजस्वी, संशितव्रती तथा अप्रतिम बल, वीर्य एवं धन से सम्पन्न महाराज कारन्धम पहले अङ्गिरा के यजमान थे। उनके पास अत्यन्त सुन्दर वाहन, बलवान योद्धा, विविध बुद्धिमान् मित्र और बहुमूल्य सेजें थीं। उन्होंने अपने गुणों की उत्कृष्टता और मनोयोग के बल से तथा अपने सुखप्रद स्वभाव से समस्त राजाओं को वशीभूत कर लिया था। वह मनमानी आयु भोग कर, सशरीर स्वर्ग गये। उनके बाद ययाति की तरह धर्मज्ञ अविक्षित नामक उनके शत्रुविजयी पुत्र ने भूमण्डल को अपने वश में कर, अपने भुजबल और सद्गुणों से पिता की तरह राज्य किया। इन्द्र के समान वीर्यवान् मरुत्त उनके पुत्र थे। आसमुद्रान्त भूमण्डलवासी उन पर अनुरक्त थे। पृथिवीपति मरुत्त देवराज इन्द्र के साथ स्पर्द्धा करते थे। इतना ही नहीं, प्रत्युत अनेक यत्न करने पर भी इन्द्र, उन गुणवान पवित्र चित्त पृथिवीपति मरुत्त से न बढ़ सके। तब इन्द्र ने बृहस्पति को बुला कर उनसे कहा—हे बृहस्पति! यदि आप मेरा भला चाहते हैं, तो राजा मरुत्त को श्राद्ध और यज्ञ मत कराइये। एक मैं ही हूँ जिसने तीनों लोकों में देवताओं के राजा होने का महत्त्व प्राप्त किया है। राजा मरुत्त तो केवल, पृथिवी का राजा है। हे द्विजवर्य! आप अमर देवराज इन्द्र को यज्ञ करा कर, एक मर्त्यशील राजा को निश्शङ्क हो, कैसे यज्ञ कराते हैं। यदि आप अपना भला चाहते हैं,

तो आप या तो मुझे ही अपना यजमान समझें अथवा राजा मरुत्त को। आपको उचित तो यह है कि, आप मरुत्त को त्याग कर, मेरे पास रहें और सुख भोगें।

हे युधिष्ठिर! इन्द्र के इन वचनों को सुन कर, बृहस्पति जी एक मुहूर्त तक विचार करते रहे। तदनन्तर इन्द्र से बोले—तुम जीवधारियों के प्रभु हो। तुम्हारे ही द्वारा सारे लोक प्रतिष्ठित हैं। तुमने विश्वरूप नमुचि और वलि को मारा है। तुमने अकेले ही देवताओं की वीरश्री हरण की है और तुम्हीं सदैव पृथिवी तथा स्वर्ग का पालन करते हो। हे पाकशासन! अतः मैं तुम्हारा पुरोहित बन, क्यों कर एक मनुष्य राजा को यज्ञ कराऊँगा? हे देवेन्द्र! तुम मेरे इस कथन पर विश्वास रखो। मैं आज से कभी राजा मरुत्त के यज्ञ में श्रुवा हाथ में न लूँगा। भले ही हिरण्यरेता अग्नि में उष्णता न रहे, भले ही पृथिवी उलट जाय और भले ही सूर्य प्रकाशित न हो, किन्तु मेरा सत्य वचन अन्यथा नहीं हो सकता।

श्रीवैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! उस समय मत्सरतारहित देवराज इन्द्र ने, बृहस्पति के इस कथन को सुन, उनकी प्रशंसा की और वे निज भवन में चले गये।

छठवाँ अध्याय

बृहस्पति और राजा मरुत्त के प्रश्नोत्तर

वेदव्यास जी बोले—हे युधिष्ठिर! इस प्रसङ्ग में पण्डित लोग बृहस्पति और राजा मरुत्त का संवाद युक्त यह वृत्तान्त कहते हैं। पृथिवीपति मरुत्त ने जब बृहस्पति की उस प्रतिज्ञा को सुना जो उन्होंने देवराज इन्द्र के सामने की थी; तब उन्होंने धूमधाम से एक यज्ञ करने की तैयारी की। राजा मरुत्त मन ही मन यज्ञ का सङ्कल्प कर, बृहस्पति के निकट गये और उनसे बोले—भगवन्! आपने पहले मेरे सामने जिस यज्ञ का प्रस्ताव

किया था, मैंने आपके प्रस्तावानुसार वह यज्ञ करना अब निश्चय कर लिया है और यज्ञोपयोगी आवश्यक सामग्री भी एकत्र कर ली है। मैं आपका यजमान हूँ। अतः आप उस सामग्री से मुझे चल कर यज्ञ करावें।

बृहस्पति बोले—हे पृथिवीनाथ! अब मैं आपको यज्ञ कराना नहीं चाहता। क्योंकि देवराज इन्द्र के निषेध करने पर मैं उनके सामने आपको यज्ञ न कराने की प्रतिज्ञा कर चुका हूँ।

मरुत्त ने कहा—आपका मैं पुश्तैनी यजमान हूँ और इसीसे मैं आपका बड़ा सन्मान करता हूँ। अतः आप चल कर मुझे यज्ञ करावें।

बृहस्पति बोले—मैं अमर देवराज इन्द्र का पुरोहित हो, किस प्रकार एक मरणशील मनुष्य का पुरोहित बनूँ। आप जाँय या बैठें, अब मैं फिर आपको यज्ञ नहीं करा सकता। आप जिसे चाहें उसे अपना उपाध्याय या पुरोहित बना यज्ञारम्भ कर सकते हैं।

वेदव्यास जी कहने लगे—पृथिवीपति मरुत्त, बृहस्पति की इन बातों को सुन, बहुत लज्जित हुए और वहाँ से उठ कर चले आये। उस समय वे बहुत उदास थे। रास्ते में उन्हें नारद मुनि मिले। उन्होंने नारद मुनि को हाथ जोड़ कर प्रणाम किया। तब नारद मुनि ने उनसे कहा—हे राजर्षे! आप उदास क्यों हो रहे हैं? हे अनघ! सब प्रकार से कुशल तो है? आप कहाँ गये थे जहाँ से आप ऐसे उदास लौट कर आ रहे हैं? यदि मेरे सुनने योग्य हो, तो आप अपना समस्त वृत्तान्त मुझे सुनावें। जहाँ तक मुझसे बनेगा मैं आपका दुःख दूर करने का प्रयत्न करूँगा।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! इस पर राजा मरुत्त ने नारद को वह सब बातचीत सुनायी, जो उनसे और बृहस्पति से हुई थी।

राजा मरुत्त ने कहा—मैं बृहस्पति जी के निकट उन्हें अपने यज्ञ में ऋत्विक बनाने के लिये गया था। किन्तु उन्होंने मेरी प्रार्थना स्वीकार न कर, मुझे हताश कर दिया। उन्होंने मेरी पुरोहिताई त्याग दी है। उपाध्याय द्वारा इस प्रकार परित्यक्त और लाञ्छित हो, मैं अब जीना नहीं चाहता।

यह सुन नारद जी ने, राजा मरुत्त को अपने वचनों से पुनः जीवित करते हुए, उनसे कहा —

नारद मुनि बोले—अङ्गिरा के दूसरे पुत्र संवर्त्त दिगम्बर हो, प्रजाजनों को मोहित करते हुए, इधर उधर घूमा फिरा करते हैं। यदि बृहस्पति आपके यज्ञ में ऋत्विक बनना नहीं चाहते, तो आप उस महातेजस्वी संवर्त्त के पास जावें। वे सहर्ष आपको यज्ञ करा देंगे।

राजा मरुत्त ने कहा—हे वाग्मिवर ! सचमुच आपने अपने इन वचनों द्वारा मेरे शरीर में जान डाल दी। परन्तु यह तो बतलाइये। संवर्त्त से मैं किस स्थान पर जा कर मिलूँ और उनसे किस प्रकार मिलूँ ? मुझे कोई ऐसी युक्ति बतलाइये जिससे वे मुझे न त्यागें। यदि कहीं उन्होंने भी मना किया, तो मेरे जीवित रहने में पुनः सन्देह उपस्थित होगा।

नारद मुनि बोले—हे राजन् ! संवर्त्त उन्मत्त वेष बनाये विश्वनाथ के दर्शन करने के लिये काशी में घूमा करते हैं। आप काशी जाँय और वहाँ जा काशीपुरी के किसी स्थान पर एक मुर्दा रख दें। उस मुर्दे को देख जो लौट जाय, उसे ही आप संवर्त्त जान लेना और उसीके पीछे हो लेना। जब वे एकान्त स्थल में पहुँचे; तब हाथ जोड़ कर उनसे प्रार्थना करना और कहना—मैं आपके शरण हूँ। यदि संवर्त्त आपसे पूँछे कि मेरा पता तुमको किसने बतलाया ? तो आप मेरा नाम बतला देना। यदि वे आपको मेरा अनुगमन करने की आज्ञा दें तो आप निडर हो कह देना कि, नारद जी अग्नि में प्रवेश कर गये।

व्यास जी बोले—हे युधिष्ठिर ! इस पर राजा मरुत्त ने नारद जी से कहा— बहुत अच्छा—मैं ऐसा ही करूँगा। फिर नारद जी का पूजन कर और उन्हें विदा कर, राजा मरुत्त नारद जी के वचनों को स्मरण करते हुए काशी पहुँचे। वहाँ नारद जी के कथनानुसार उन्होंने काशीपुरी के द्वार पर एक मुर्दा रख दिया। दैवात् संवर्त्त उसी समय उसी द्वार पर आये और वहाँ मुर्दा पड़ा देख पीछे लौटे। उन्हें लौटते

देख, राजा मरुत्त हाथ जोड़े हुए उनके पीछे हो लिये। संवर्त्त ने राजा मरुत्त को अपने पीछे आता हुआ देख उन पर धूल, कीच, बालू फेंकी और उन पर थूका। संवर्त्त को इस प्रकार अपनी अवज्ञा करते देख, राजा दुःखी हुए और हाथ जोड़ उन ऋषि को प्रसन्न करते हुए उनके पीछे लगे चले गये। बहुत दूर चलने से थक कर संवर्त्त एक बड़े सघन गूलर वृक्ष की छाया में बैठ गये।

सातवाँ अध्याय

राजा मरुत्त और संवर्त्त

संवर्त्त बोले—तुमने मुझे किस प्रकार पहचाना और किस पुरुष ने तुम्हें मेरा पता बतलाया? यदि तुम मेरे प्रिय बनना चाहो तो सच सच मुझे बतलाओ। यदि तुम मेरे प्रश्नों का उत्तर सत्य दोगे; तो तुम्हारी मनोकामना पूरी होगी और झूठ बोलने से तुम्हारे सिर के सौ टुकड़े हो जाँयगे।

राजा मरुत्त ने कहा—आप मेरे गुरुपुत्र हैं। यह हाल मुझे घूमते फिरते हुए नारद जी से मालूम हुआ था। तभी से आपके प्रति मेरी प्रीति उत्पन्न हुई है।

संवर्त्त ने कहा—नारद जी को मालूम है कि, मैं यज्ञ करा सकता हूँ। तुम्हारा यह कथन ठीक है। अच्छा अब यह बतलाओ कि, इस समय नारद जी कहाँ हैं?

राजा मरुत्त ने कहा—देवर्षिसत्तम नारद मुनि ने मुझे आपका परिचय दे तथा आपके पास आने की अनुमति दे, स्वयं अग्नि में प्रवेश किया है।

वेदव्यास जी बोले—हे युधिष्ठिर! राजा मरुत्त के इस उत्तर को सुन संवर्त्त परम सन्तुष्ट हुए और कहने लगे—हे मरुत्त! मैं भी ऐसा कार्य कर सकता हूँ। इसके बाद हे राजन्! संवर्त्त उन्मत्त से हो गये और बड़े बड़े

कठोर वचन कह कर, राजा मरुत्त की निन्दा करने लगे। वे बोले—मैं उन्मत्त हूँ। मेरे मन में जिस समय जो आता है वही मैं करता हूँ। मुझ जैसे स्वभाव वाले ब्राह्मण के द्वारा तुम क्यों यज्ञ करवाना चाहते हो? यज्ञ कार्य में निपुण मेरे भाई बृहस्पति, इन्द्र से मिल गये और उनके यज्ञकर्म में लगे हुए हैं। तुम उन्हींकी सहायता से अपना कार्य पूरा करो। मेरे बड़े भाई बृहस्पति ने मेरे शरीर को छोड़, घर में जो कुछ था—यहाँ तक कि, मेरे यजमानों तक को—छीन लिया है। हे अविक्षितपुत्र! वे मेरे पूज्य हैं। बिना उनकी अनुमति मैं, तुम्हें यज्ञ नहीं करा सकता। अतः यदि तुम्हें यज्ञ ही करना है, तो जा कर मेरे लिये बृहस्पति से अनुमति ले आओ। तब मैं तुम्हारा याजन कर्म करा सकूँगा।

राजा मरुत्त ने कहा—भगवन्! मैं आपको बृहस्पति का वृत्तान्त सुनाता हूँ। मैं पहले तो बृहस्पति ही के पास गया था। उन्होंने इन्द्र को अपना यजमान बनाया है। अतः वे अब मुझे अपना यजमान नहीं समझते। उन्होंने मुझसे कहा कि, इन्द्र ने उनसे कहा है कि, राजा मरुत्त पृथिवीपति हो कर सदा मेरे साथ स्पर्द्धा किया करता है। अतः आप उसे अब यज्ञ न कराने पावेंगे। यह कह इन्द्र ने उनसे मना कर दिया है। अतः वे देवता यजमान पा कर, मनुष्य का याज्यकर्म न करावेंगे।

हे मुनिपुङ्गव! इन्द्र ने भ्राता बृहस्पति को मेरा यज्ञ कर्म कराने के लिये निषेध कर दिया है और वे इन्द्र के साथ प्रतिज्ञाबद्ध हो चुके हैं। हे मुनिवर! आप यह निश्चय जानें कि, वे देवराज इन्द्र का सहारा पा गये हैं। मैं तो बड़ी भक्ति के साथ उनके पास गया था, किन्तु उन्होंने मेरी यजमानी छोड़ दी। इसीसे तो मैं सर्वस्व लगा कर, आपके द्वारा इन्द्र को अतिक्रम करना चाहता हूँ। हे ब्रह्मन्! जब बिना अपराध बृहस्पति ने मुझे त्याग दिया है, तब पुनः उनके पास जाना मैं उचित नहीं समझता।

संवर्त्त बोले—हे राजन्! यदि तुम मेरी समस्त अभिलाषाएँ पूरी करने का वचन दो, तो मैं तुम्हें यज्ञ करा सकता हूँ। किन्तु मेरे मन में एक

खटका है। वह यह कि, जब मैं तुम्हें यज्ञ कराने लगूँगा, तब बृहस्पति और इन्द्र दोनों क्रुद्ध हो, तुममें और मुझमें विद्वेष उत्पन्न करने का प्रयत्न करेंगे। इसलिये मेरा मन कचियाता है। यदि तुम अपना विचार दृढ़ कर लो, तो मैं तुम्हारा काम कर सकता हूँ और यदि कहीं तुमने बीच में अपना मन चञ्चल किया तो मैं उसी समय बान्धवों सहित तुम्हें भस्म कर डालूँगा।

राजा मरुत्त ने कहा—हे ब्रह्मन्! यदि मैं आपका साथ छोड़ूँ तो जब तक सूर्य प्रकाश करता है और जब तक समस्त पर्वत विद्यमान् हैं, तब तक मुझे उत्तम लोक प्राप्त न हों। यदि मैं आपका साथ छोड़ूँ तो कभी मेरी अच्छी बुद्धि न हो और मैं विषयों में लिप्त हो जाऊँ।

संवर्त्त ने कहा—हे अविक्षित-नन्दन! सुनो। मैं चाहता हूँ कि, तुम्हें मैं इस प्रकार यज्ञ कराऊँ जिससे तुम्हारी बुद्धि अच्छी बनी रहै। साथ ही मैं तुम्हारे धन को अक्षय्य कर दूँगा। इससे तुम देवताओं सहित इन्द्र को नीचा दिखा सकोगे। मैं और किसी को न तो अपना यजमान बनाना चाहता हूँ और न अन्य किसी से धन लेने ही की मेरी इच्छा है। किन्तु हाँ, मैं इन्द्र और बृहस्पति को अवश्य छकाना चाहता हूँ। मैं तुमसे प्रतिज्ञा करता हूँ कि, मैं तुम्हें इन्द्र की समता को पहुँचा दूँगा।

आठवाँ अध्याय

संवर्त्त द्वारा राजा मरुत्त को धन प्राप्ति और बृहस्पति का कुढ़ना

संवर्त्त बोले—हिमालय के पीछे मुञ्जवान् नामक एक पर्वत है। उस पर्वत पर बैठ उमापति शिव जी सदा तप किया करते हैं। अनेक भूतों-प्रेतों से घिरे हुए महादेव जी, पार्वती सहित, कभी उस पर्वत की किसी गुफा में कभी उसके विषम शृङ्ग पर और कभी वहाँ की झाड़ियों में और कभी वहाँ

के वृक्षों के तले इच्छानुसार सुखपूर्वक निवास करते हैं। वहाँ वसुगण, रुद्रगण, यम, वरुण, अपने अनुचरों सहित कुबेर, भूत, पिशाच, अश्विनी-कुमार, नासत्य, गन्धर्व, अप्सरा, यक्ष, देवर्षि, आदित्य, मरुत्त और यातुधान बहुरूपधारी उमापति शिव की उपासना किया करते हैं। वहाँ पर महादेव जी कुबेर के विकृत स्वभाव वाले और विकृताकार अनुचरों के साथ क्रीडा किया करते हैं। प्रातःकालीन सूर्य की तरह द्युतिशाली एवं निज सौन्दर्य से प्रज्वलित अग्नि की तरह महादेव जी उस शैल पर, लोगों को दर्शन भी दिया करते हैं। किन्तु उनके दर्शन इन माँस-चक्षुओं से नहीं हो सकते। राजन्! उस स्थान पर गर्मी, सर्दी, हवा, सूर्य, भूख, प्यास, ज़रा, मृत्यु और भय कुछ भी नहीं है। उस पहाड़ के चारों ओर सूर्य की किरणों की तरह दमकते हुए सोने की खानें हैं। किन्तु उन खानों पर कुबेर के विश्वास-पात्र अनुचर शस्त्र उठाये पहरा दिया करते हैं। तुम वहाँ जाओ और उन महादेव को प्रणाम कर उनके शरणागत हो जाओ। जिनके ये नाम हैं—शर्व, विधाता, रुद्र, शितकण्ठ, सुरूप, सुवर्च्च, कपर्दी, कराल, हर्यक्ष, वरद, विलोचन, सूर्यदण्डभेदी, वामन, शिव, दक्षिणामूर्ति, अव्यक्तरूपी, सुव्रत, शङ्कर, मङ्गल्य, हरिकेश, स्थाणु, पुरुष, हरिनेत्र, मुण्ड, कृश, उत्तर, भास्वर, सुतीर्थ, देवदेव, रेह, उष्णीषी, सुवक्र, सहस्राक्ष, मीढान, गिरीश, प्रशान्त, पतिचीरवासा, विल्वदण्ड, सिद्ध, सर्वदण्डधारी, मृग, व्याध, महान्, धन्वी, भव, वर, सोमवक्त्र, सिद्धमन्त्र, नेत्रस्वरूप, हिरण्यबाहु, उग्र, दिक्पति, लेलिहान, गोष्ठ, सिद्धमंत्र, सर्वव्यापी, पशुपति, भूतपति, वृष, मातृ-भक्त, सेनानी, मध्यम, स्रुवहस्त, यती, धन्वी, भार्गव, अज, कृष्णनेत्र, विरूपाक्ष, तीक्ष्णदंष्ट्र, तीक्ष्ण, दीप्ति, दीप्ताक्ष, महातेजा, कपालमाली, सुवर्णमुकुटधारी, महादेव, कृष्ण, त्र्यम्बक, अनघ, क्रोधन, नृशंस, मृदुबा-हुशाली, दण्डी, तपस्वी, अक्रूरकर्मा, सहस्रशिर, सहस्रपाद, स्वधास्वरूप, बहुरूप, दंष्ट्री, पिनाकी, महादेव, महायोगी, अव्यय, त्रिशूलहस्त, वरद, भुवनेश्वर, त्रिपुरघ्न, त्रिलोकेश, सर्वभूतप्रभव, सर्वभूताधार, धरणीधर, ईशान,

शङ्कर, शर्व, शिव, विश्वेश्वर, भव, उमापति, विश्वरूप, महेश्वर, विरूपाक्ष, पशुपति, दशभुज, दिव्य, गोवृषभध्वज, उग्र, स्थाणु, शिव, रौद्र, गिरीश, ईश्वर, अज, शुक्र, पृथु, पृथुहर, विश्वरूप, बहुरूप, अनङ्गारि, हर, शरण्य, चतुर्मुख।

हे राजन्! महादेव जी को सीस झुका कर प्रणाम करने से तुम्हें वह सुवर्ण मिल जायगा।

यह सुन राजा मरुत्त ने महात्मा संवर्त्त के इन वचनों को सुन तदनुसार ही कार्य किया और उन्हें वहाँ बड़ी सम्पत्ति मिली। तब सुनार सोने के पात्र बनाने लगे। राजा मरुत्त की देवताओं से भी अधिक समृद्धि का वृत्तान्त सुन, उधर बृहस्पति बहुत पछताये। मन ही मन यह सोच कर कि, उनका शत्रु संवर्त्त बड़ा धनाढ्य होगा—बड़े दुःखी हुए। यहाँ तक कि, उनका चेहरा फीका पड़ गया और उनका शरीर कृश हो गया। जब यह हाल देवराज इन्द्र को विदित हुआ, तब वे देवताओं सहित बृहस्पति के पास गये और उनसे कहने लगे।

नवाँ अध्याय

राजा मरुत्त के निकट देवराज इन्द्र का अग्नि को अपना दूत बना कर भेजना

इन्द्र ने कहा—हे गीष्पति! आप रात को अच्छी तरह सोते तो हैं? आपके परिचारक आपके मनमुताबिक काम करते हैं? हे विप्रवर! आप देवताओं के सुख की कामना किया करते हैं? देवता लोग आपका ठीक ठीक पालन किये जाते हैं?

बृहस्पति बोले—हे देवराज! मैं सेज पर सुख पूर्वक सोता हूँ। परिचारक गण मेरे मनोनुकूल ही काम करते हैं। मैं सदैव देवताओं के सुख

के लिये कामना किया करता हूँ और देवता लोग बड़े आदर के साथ मेरा पालन भी करते हैं।

इन्द्र बोले—हे ब्रह्मन्! तब आपको किस बात का शारीरिक और मानसिक दुःख है! आपका शरीर क्यों पीला पड़ गया है और आपका चेहरा क्यों उतरा हुआ है! आप अपने दुःख का कारण बतलावें। आपको दुःख देने वाले का मैं अभी वध करता हूँ।

बृहस्पति बोले—हे पाकशासन! मैंने कितने ही लोगों से सुना है कि, राजा मरुत्त एक महायज्ञ करेगा, जिसमें बड़ी बड़ी दक्षिणाएँ बाँटी जाँयगी और संवर्त्त उस यज्ञ को करावेगा। अतः मैं चाहता हूँ कि, आप कोई ऐसा उपाय विचारें जिससे संवर्त्त यज्ञ न कराने पावे।

इन्द्र बोले—भगवन्! जब आप देवताओं के मंत्रदाता पुरोहित हुए हैं और जरा मृत्यु से रहित हो गये हैं, तब संवर्त्त आपका क्या कर सकता है?

बृहस्पति जी बोले—हे देवेन्द्र! शत्रु की उन्नति देख, दुःख होता ही है। असुरों में जिसे आप समृद्धिशाली देखते हैं, उसे ही आप देवताओं को साथ ले, मार डालने का प्रयत्न करते हैं। आपको जिस प्रकार अपने शत्रु की बढ़ती देख दुःख होता है। उसी प्रकार मुझसे भी संवर्त्त की उन्नति नहीं देखी जाती। इसी दुःख से मेरा शरीर पीला पड़ गया है और मेरा चेहरा उतरा हुआ है। अतः हे इन्द्र! जैसे बने वैसे आप राजा मरुत्त का दमन करें।

बृहस्पति के इस कथन को सुन इन्द्र ने अग्निदेव को बुला कर, उनसे कहा—हे अग्निदेव! मेरी आज्ञा से तुम राजा मरुत्त के निकट जाओ और उनसे कहो कि, बृहस्पति तुम्हें यज्ञ करा देंगे और तुम्हें अमर कर देंगे।

अग्निदेव बोले—भगवन्! मैं इस समय आपका दूत बन राजा मरुत्त के निकट जाता हूँ और यत्न करूँगा कि, वे बृहस्पति को अपना ऋत्विज बनावें, जिससे आपका वचन सत्य हो।

व्यास जी कहने लगे—हे युधिष्ठिर ! तदनन्तर धूमकेतु अग्निदेव वन, बेल, लता आदि को कुचलते और पवन की तरह गरजते और वेग से हिमालय के निकट हिमालयस्थ राजा मरुत्त के पास पहुँचे।

राजा मरुत रूपवान अग्निदेव को देख, विस्मित हो, संवर्त्त से बोले—हे मुनिवर ! मुझे आज यह बड़ा विस्मयोत्पादक व्यापार दिखलायी पड़ता है। अग्निदेव निज रूप धारण कर आये हैं। अतः आप इन्हें, पैर धोने को तथा आचमन करने को जल और बैठने को आसन दें। आप एक गौ भी इनको भेंट करें।

अग्निदेव बोले—मैंने आपका दिया पाद्य, आसन और गौ ग्रहण की। आपको विदित हो कि, मैं इन्द्र का दूत बन, उनके आदेशानुसार आपके निकट आया हूँ।

राजा मरुत्त ने कहा—हे धूमकेतु ! श्रीमान् देवराज इन्द्र प्रसन्न तो हैं ? वे मुझसे सन्तुष्ट तो हैं ? देवता लोग उनकी आज्ञा का पालन तो करते हैं ? हे देव ! आप मुझे ये सब बातें ठीक ठीक बतलावें।

अग्निदेव ने कहा—हे पार्थिवेन्द्र ! देवराज बहुत अच्छी तरह हैं और देवता उनके कहे में हैं। आप अब देवराज का संदेसा सुनिये। उनकी आपके ऊपर बड़ी प्रीति है। इसीसे वे आपको अमर करना चाहते हैं। वे आपको बृहस्पति जी को देना चाहते हैं। इसी लिये मुझे आपके पास भेजा है। सुरगुरु बृहस्पति जी आपको यज्ञ करावेंगे।

राजा मरुत्त ने कहा—मैं बृहस्पति जी को हाथ जोड़ कर प्रणाम करता हूँ। अब तो मुझे यज्ञ संवर्त्त जी करावेंगे। मुझे अब उनसे कुछ भी प्रयोजन नहीं। अमर महेन्द्र को यज्ञ करा, मरणशील एक मनुष्य को यज्ञ कराने से उनकी वैसी प्रतिभा न रहेगी।

अग्निदेव बोले—यदि बृहस्पति से आप यज्ञ करावें तो देवराज की कृपा से आपको देवलोक में उत्तम स्थान प्राप्त होगा और आप महायशस्वी हो निश्चय ही स्वर्ग जावेंगे। हे नरेन्द्र ! यदि बृहस्पति ने आपको यज्ञ

करवाया तो आप, केवल देवलोक ही नहीं प्रजापति के बनाये मनुष्यादि समस्त लोकों को जीत लेंगे।

संवर्त्त ने कहा—हे पावक ! तुम बृहस्पति सम्बन्धी संदेसा ले कर, अब फिर कभी राजा मरुत्त के निकट मत आना। यदि आये, तो जान लो मैं निश्चय ही क्रुद्ध हो, अपनी दारुण दृष्टि से तुम्हें जला कर भस्म कर डालूँगा।

व्यास जी बोले—हे युधिष्ठिर ! भस्म किये जाने की बात सुन अग्निदेव भयभीत हुए और पीपल के पत्ते की तरह थर थर काँपने लगे। वे वहाँ से चल दिये और देवताओं के निकट पहुँचे। उन्हें बृहस्पति के निकट बैठा देख, इन्द्र ने उनसे कहा।

इन्द्र बोले—हे अग्निदेव ! मेरी प्रेरणा से तुम बृहस्पति सम्बन्धी जो सँदेसा राजा मरुत्त के पास ले गये थे, उसे सुन राजा मरुत्त ने क्या कहा ? उसने मेरा प्रस्ताव स्वीकृत किया कि नहीं ?

अग्निदेव ने कहा—मैंने बारंबार आपका सन्देसा राजा मरुत्त से कहा—किन्तु उसने आपका प्रस्ताव स्वीकृत नहीं किया और कहा—बृहस्पति को मेरी ओर से हाथ जोड़ कर प्रणाम कहना। मुझे तो संवर्त्त ही अब यज्ञ करावेंगे। इसके अतिरिक्त राजा मरुत्त ने यह भी कहा है कि, प्रजापति के बनाये मनुष्यलोक, देवलोकादि अन्य उत्कृष्ट लोकों को पाने की मेरी इच्छा नहीं है। यदि मुझे उन लोकों को प्राप्त करना होता, तो मैं बृहस्पति के साथ बातचीत करता।

इन्द्र बोले—तुम एक बार फिर राजा मरुत्त के निकट जा मेरी ओर से उससे यह कह कर, उसे सावधान कर दो कि, यदि उसने तुम्हारा कहना न माना, तो मैं उस पर वज्र का प्रहार करूँगा।

अग्निदेव बोले—हे वासव ! मुझे वहाँ जाते डर मालूम होता है। क्योंकि ब्रह्मचारी संवर्त्त ने क्रोध में भर मुझसे कहा है कि, यदि तुम बृहस्पति सम्बन्धी सँदेसा लेकर फिर राजा मरुत के पास आये, तो मैं तुम्हारे ऊपर

बड़ा अप्रसन्न होऊँगा और तुम्हें दारुण दृष्टि से भस्म कर डालूँगा। अतः अब आप इन गन्धर्वराज को अपना दूत बना कर भेजें।

इन्द्र ने कहा—हे पावक! तुम स्वयं सब को भस्म करते हो। तुम्हें छोड़ दूसरा कोई भस्म करने वाला है ही नहीं। तुम्हारे स्पर्श मात्र से सब भयभीत हो जाते हैं। अतः तुम्हारे कथन पर विश्वास करने को मेरा जी नहीं चाहता।

अग्निदेव बोले—देवेन्द्र! आपने निज भुजबल से जब स्वर्गलोक, मर्त्यलोक और आकाश को अपने वश में कर लिये; तब आप जैसे त्रिलोकनायक के रहते हुए वृत्रासुर ने किस तरह स्वर्ग पर अपना अधिकार कर लिया था?

इन्द्र बोले—हे अग्निदेव! मैं बड़े बड़े पर्वतों को तोड़ कर मच्छर जितना छोटा कर सकता हूँ। किन्तु शत्रु के हाथ से मैं सोमपान नहीं करूँगा। मैं निर्बल पर वज्र नहीं चलाता। इसीसे वृत्रासुर को मैंने नहीं हराया। किन्तु मुझ पर प्रहार कर, कोई भी मनुष्य सुखी नहीं रह सकता। हे पावक! मैंने कालिकेय नामक असुरों को धराधाम पर परास्त किया है। अन्तरिक्षचारी दानवदल को भगाया है और प्रल्हाद को स्वर्ग में बसाया है। मेरे ऊपर प्रहार करने की किस मनुष्य में शक्ति है?

अग्निदेव बोले—हे महेन्द्र! पूर्वकाल में च्यवन ने शर्याति राजा के यज्ञ में अकेले अश्विनीकुमारों ही को सोमपान कराया था। उस समय आपने क्रोध में भर शर्याति के यज्ञ को रोकने का जो प्रयत्न किया था और उसका जो परिणाम हुआ था, उसे आप स्मरण कर लें। जब आपने क्रोध में भर च्यवन के ऊपर वज्र चलाना चाहा था, तब च्यवन ने आपकी भुजा को स्तम्भित कर दिया था। फिर उन्होंने मद नाम भयङ्कर असुर को आपकी शत्रुता के लिये उत्पन्न किया; उसे देख आपने मारे डर के अपने नेत्र बंद कर लिये थे। उस दानव का एक ओठ पृथिवी पर और दूसरा स्वर्ग से सटा हुआ था। सौ योजन लंबे लंबे उसके पैने पैने दाँत थे।

उनमें चार दाँत बहुत मोटे थे और चाँदी के मोटे गोल खंभे की तरह जान पड़ते थे। वह मद दानव हाथ में त्रिशूल ले और दाँतों को कट कटाता तुम्हारा वध करने को तुम्हारी ओर झपटा था। उस समय उस घोर असुर को देख, आप ऐसे दयनीय हो गये थे कि, सब लोग आपकी ओर टकटकी बाँध देखने लगे थे। तब आपने हाथ जोड़ च्यवन की शरण गही थी। सो हे शक्र! क्षत्रबल से ब्रह्मबल सर्वथा उत्कृष्ट है। क्योंकि ब्राह्मणों से बढ़ कर श्रेष्ठ और कोई नहीं है। अतः ब्रह्मतेज के महत्त्व को जान, मैं पुनः संवर्त्त के पास जाना नहीं चाहता।

दसवाँ अध्याय

राजा मरुत्त और संवर्त्त की बातचीत

इन्द्र बोले—हे पावक! तुम्हारा यह कहना ठीक है कि, समस्त बलों से ब्रह्मबल उत्कृष्ट है और ब्राह्मणों से अन्य कोई श्रेष्ठ नहीं है। किन्तु राजा मरुत्त की अवज्ञा को मैं नहीं सह सकता। मैं उस पर अवश्य ही घोर वज्र का प्रहार करूँगा। हे गन्धर्व धृतराष्ट्र! तुम मेरी ओर से जाओ और संवर्त्त सहित मरुत्त से कह दो कि राजन्! तुम बृहस्पति को ऋत्विज बनाओ, नहीं तो इन्द्र तुम्हारे ऊपर घोर वज्र का प्रहार करेंगे।

व्यास जी बोले—हे युधिष्ठिर! तदनन्तर गन्धर्व धृतराष्ट्र ने राजा मरुत्त के निकट जा, उन्हें इन्द्र का संदेसा सुना कर, कहा—

धृतराष्ट्र ने कहा—हे नरेन्द्र! मैं धृतराष्ट्र नामक गन्धर्व हूँ। मैं इन्द्र का सँदेसा सुनाने आपके निकट आया हूँ। अतः आप लोकाधिपति देवराज इन्द्र का सँदेसा सुनिये। देवराज इन्द्र ने आपसे इतना ही कहलाया है कि, आप बृहस्पति को अपना ऋत्विज बना लें। यदि आप मेरा कहना न मानेंगे, तो मैं आपके ऊपर घोर वज्र से प्रहार करूँगा।

मरुत्त ने कहा—आप स्वयं, देवराज इन्द्र, विश्वदेव, वसुगण और अश्विनीकुमार आदि समस्त देवता यह जान रखें कि, इस लोक में मित्र-द्रोही पुरुष का निस्तार नहीं होता। मित्रद्रोह महापातक है और वह ब्रह्म-हत्या के समान है। हे राजन्! अब मुझे इन्द्र तथा बृहस्पति की बातें अच्छी नहीं लगतीं। बृहस्पति, वज्रधारी इन्द्र को यज्ञ करावें। मुझे तो संवर्त्त ही यज्ञ करावेंगे।

गन्धर्व ने कहा—हे राजसिंह! आप नभमण्डल में गर्जन करने वाले इन्द्र का घोर शब्द सुनें। सहस्राक्ष इन्द्र निश्चय ही आपके ऊपर वज्र छोड़ेंगे। हे राजन्! अतः आप स्वयं अपनी रक्षा के लिये अपने मन में सोच समझ लें।

व्यास जी ने कहा—हे युधिष्ठिर! गन्धर्व का यह कथन सुन राजा मरुत्त ने नभमण्डल में उत्कट शब्द करते हुए इन्द्र की ओर, धर्मज्ञ एवं पुरुषश्रेष्ठ संवर्त्त का ध्यान आकर्षित किया।

मरुत्त ने कहा—हे विप्रेन्द्र! सामने मेघघटा के बीच इन्द्र दिखलायी पड़ते हैं। अतः मुझे अब अपनी कुशल नहीं देख पड़ती। हे विप्रवर! आप इन्द्र से मुझे अभय कीजिये। वज्रधारी पुरन्दर भयङ्कर अमानुष रूप से दसों दिशाओं को प्रकाशित कर और मेरे सदस्यों को त्रस्त करते हुए इधर ही आ रहे हैं।

संवर्त्त ने कहा—हे राजसिंह! तुम्हारा शत्रु कुछ भी बिगाड़ न कर सकेगा। मैं स्तम्भनी विद्या द्वारा तुम्हारे इस भय को नष्ट कर डालूँगा। अतः तुम धैर्य रखो। इन्द्र से तुम कदापि मत डरो। मेरे स्तम्भन करते ही देवताओं के सब अस्त्रप्रहार विफल हो जाँयगे। वज्र दिशाओं में मारा मारा फिरेगा। पवन बहेगा। मेघों का जल वनों में गिर जायगा और अन्तरिक्ष में जो जल होगा वह व्यर्थ हो जायगा। बिजली की कड़क व्यर्थ है। उससे तुम मत डरो। क्योंकि अग्निदेव सब ओर से तुम्हारी रक्षा करेंगे और तुम्हारी समस्त कमानाएँ पूरी करेंगे।

राजा मरुत्त ने कहा—विप्रवर ! वायु की सनसनाहट, बिजली के कड़कने का यह भयङ्कर शब्द, मेरे कानों में पड़, मेरे अन्तरात्मा को बारबार व्यथित करता है। मुझे किसी तरह भी चैन नहीं पड़ता।

संवर्त्त ने कहा—नरनाथ ! मैं वायु बन अभी इस वज्र के भय को दूर किये देता हूँ। अतः तुम भयभीत न हो। तुम्हारे मन में जो अभिलाष हो—सो कहो। मैं तुम्हें वर दे उसे पूरी करूँगा।

राजा मरुत्त ने कहा—हे विप्रवर ! मेरी अभिलाषा है कि, मेरे यज्ञ में इन्द्र प्रत्यक्ष हो, हवि लें और सोमपान करें। आपसे मैं यही वर माँगता हूँ।

संवर्त्त ने कहा—राजन् ! मैं मंत्रबल से इन्द्र का शरीर आज आकर्षित करता हूँ। मेरे मंत्र के प्रभाव से घोड़ों के रथ पर सवार हो और देवताओं से स्तुति किया जाता हुआ इन्द्र, इस यज्ञ में आ रहा है। तुम इन्द्र को प्रत्यक्ष देखोगे।

तदनन्तर देवराज इन्द्र उत्तम घोड़ों के रथ पर सवार हो और देवताओं को साथ लिये, राजा मरुत्त के यज्ञ में सोमपान करने की अभिलाषा से आये। इन्द्र को देख, राजा मरुत्त और संवर्त्त उठ खड़े हुए और उनको प्रणाम किया। तदनन्तर राजा ने यथाविधि उनका पूजन किया और कुशल प्रश्नादि के अनन्तर राजा मरुत्त ने उनसे कहा—हे इन्द्र ! आपका आगमन कल्याणप्रद हो। आपके पधारने से यज्ञ की शोभा बढ़ गयी। हे बलि और वृत्रासुर के मारने वाले ! मेरे दिये हुए इस सोमरस को आप पीवें। हे पाकशासन ! आप मुझे कृपा की दृष्टि से देखें। मैं आपको प्रणाम करता हूँ। मेरा यज्ञ सफल हुआ। मेरा जीवन सफल हुआ। यह तो आपको विदित ही है कि, यह यज्ञ बृहस्पति जी के छोटे भाई संवर्त करवा रहे हैं।

इन्द्र ने कहा—हे महाराज ! मैं आपके पुरोहित, तपस्वी एवं तेजस्वी संवर्त्त को, जो बृहस्पति के छोटे भाई हैं, भली भाँति जानता हूँ। मैं उसी

के बुलाने से आया हूँ। मैं अब आपके ऊपर प्रसन्न हूँ। मेरा जो क्रोध आपके ऊपर था वह अब दूर हो गया।

संवर्त्त बोले—हे देवराज! यदि आप प्रसन्न हैं तो स्वयं यज्ञ का समस्त विधान और समस्त कार्य कीजिये। हे देव! यहाँ ऐसी रचना करवाइये जो देवताओं की बनी हुई जान पड़े।

व्यास जी ने कहा—हे युधिष्ठिर! अङ्गिरापुत्र संवर्त के इस कथन को सुन, इन्द्र ने देवताओं को आज्ञा दी कि, अपूर्व रूप और धन धान्य से भरे पूरे एक सहस्र भवन और एक सभाभवन तैयार करो। गन्धर्वों और अप्सराओं के चढ़ने योग्य खंभेदार ऐसे भवन बनाओ, जिनमें सब अप्सराएं नृत्य करें और यज्ञमण्डप के हाते को सजा कर स्वर्ग जैसा बना दो।

हे राजन्! इन्द्र के कथनानुसार स्वर्गवासी देवताओं ने तुरन्त कार्य आरम्भ कर दिया। तदनन्तर इन्द्र ने राजा मरुत्त से कहा—राजन्! मैं आप के द्वारा किये गये इस पूजन से आप पर प्रसन्न हुआ हूँ। मेरे यहाँ आगमन से आपके पूर्वजों तथा देवताओं ने प्रसन्न हो, आपका दिया हुआ हवि ग्रहण किया है। अब नीललोहितवर्ण अग्नि और विश्वादेवा से सम्बन्ध रखने वाले यज्ञ के लिये, ब्राह्मणों की आज्ञा से बैल का बलिदान करो। इसके पीछे हे राजन्! वह यज्ञ बड़ी धूमधाम से हुआ, इस यज्ञ में देवताओं ने भोज्य सामग्री ली और ब्राह्मणों से पूजित देवराज इन्द्र सदस्य हुए। तदन्तर यज्ञशाला में वर्तमान अपर अग्नि के समान अत्यन्त प्रसन्नचित्त महात्मा संवर्त्त ने देवताओं को आमंत्रित कर, मंत्र पढ़ अग्नि में आहुतियाँ दीं।

अन्त में इन्द्रसहित समस्त देवता सोमपान कर और तृप्त हो प्रसन्न होते हुए बिदा हुए। तब प्रसन्नमन राजा मरुत्त ने प्रत्येक स्थान पर सुवर्ण के ढेर लगवाये और ब्राह्मणों को दक्षिणाएं बाँटी। उस समय कुबेर की तरह राजा मरुत्त की शोभा हुई। फिर विविध प्रकार के धनादि को सुरक्षित

स्थानों में रखवा कर, सोत्साह अपने धनागार को भर और अपने गुरु संवर्त्त से आज्ञा ले, मरुत्त ने ससागरा पृथिवी का शासन किया। राजा मरुत्त ऐसे प्रतापी थे कि, उनके यज्ञ में इतना सोना प्रकट हुआ था। हे राजन्! आप उसी धन को ले कर, उससे देवताओं की तृप्ति के लिये यज्ञ करो।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! प्रसन्न मूर्ति राजा युधिष्ठिर ने व्यास जी के कहने से, उस धन को ले, यज्ञ करने का विचार किया और अपने मंत्रियों से भी सलाह की।

ग्यारहवाँ अध्याय

धर्मराज युधिष्ठिर और श्रीकृष्ण का वार्तालाप

अद्भुतकर्मा वेदव्यास जी के कह चुकने पर, श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर से कहा। धर्मपुत्र युधिष्ठिर को, बन्धु तथा स्वजनों के मारे जाने से सधूम अग्नि एवं राहुग्रस्त सूर्य की तरह निष्प्रभ एवं उदास देख, श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर को ढाँढस बँधाते हुए कहा।

श्रीकृष्ण बोले—राजन्! कुटिलता ही मृत्युदायिनी और सरलता ही ब्रह्म-पद-दायिनी है। जिस मनुष्य को यह ज्ञान हो जाता है, वह कभी प्रलाप नहीं कर सकता। राजन्! न तो सम्पूर्णतः आपके शत्रु पराजित हुए और न आपके कर्मानुष्ठान ही निःशेष हुए हैं। क्योंकि आपने अपने शरीर में रहने वाले शत्रु को तो जान ही नहीं पाया। अतः जैसा मैंने सुना है, वैसा मैं आपको इन्द्र और वृत्रासुर के युद्ध का यथार्थ वृत्तान्त सुनाता हूँ।

हे नरनाथ! पूर्वकाल में यह पृथिवी वृत्रासुर के द्वारा व्याप्त थी। अतः इस पृथिवी से गन्ध लुप्त हो पृथिवी-हरण-जनित दुर्गन्ध उत्पन्न हो गयी। तब इन्द्र ने क्रोध में आ, वृत्रासुर के ऊपर वज्र छोड़ा; वज्र के प्रहार से घायल हो वृत्रासुर जल के भीतर घुस गया। तब जल का रसत्व अपहृत

हो गया। यह देख इन्द्र ने पुनः उस पर वज्र का प्रहार किया। तब घायल हो वृत्रासुर अग्नि में घुस गया। वहाँ जा उसने अग्नि का तेज हर लिया। तब इन्द्र ने क्रोध में भर पुनः उस पर वज्र छोड़ा। तब वृत्रासुर वायु में चला गया। तब वायु में से उसका स्पर्श गुण जाता रहा। वहाँ भी जब वृत्रासुर पर इन्द्र का वज्र पड़ा, तब वह आकाश में चला गया। वहाँ जाने से वृत्रासुर ने आकाश का शब्द गुण अपहृत कर लिया। यह देख इन्द्र ने पुनः वृत्रासुर को वज्र से घायल किया, तब तो वृत्रासुर ने इन्द्र ही को पकड़ लिया। वृत्रासुर द्वारा जब इन्द्र पकड़ लिये गये, तब इन्द्र को बड़ा मोह प्राप्त हुआ।

श्रीकृष्ण जी बोले—हे तात ! हमने सुना है कि, जब इन्द्र वृत्रासुर के द्वारा पकड़े जा कर अत्यन्त विमोहित हो गये, तब वसिष्ठ ने उन्हें सावधान किया। इन्द्र ने सावधान हो अदृश्य वज्र द्वारा वृत्रासुर का वध किया। हे युधिष्ठिर ! तुमको मैंने अभी जो विषय सुनाया है सो इस धर्मरहस्य को महर्षियों ने इन्द्र से और महर्षियों से मैंने सुना है।

बारहवाँ अध्याय

श्रीकृष्ण और युधिष्ठिर संवाद

श्रीकृष्णचन्द्र जी बोले—हे युधिष्ठिर ! शारीरिक और मानसिक दो प्रकार की व्याधियाँ हुआ करती हैं और इनकी उत्पत्ति परस्पर के सहयोग से होती है। जो व्याधि शरीर से उत्पन्न होती है, उसे शारीरिक और जो मन से उत्पन्न होती है, उसे मानसिक व्याधि कहते हैं। सर्दी, गर्मी अथवा कफ, पित्त और वायु, ये शारीरिक गुण हैं। जब ये तीनों गुण समभाव से रहते हैं, तब ही पण्डित जन शरीर को स्वस्थ बतलाते हैं। जब कफ (सर्दी) या पित्त (गर्मी) बढ़ जावे, तब औषधोपचार से उसके दोषों को शान्त करे। सत्व, रज और तम ये तीन गुण आत्मा के हैं। इन तीनों

गुणों की साम्यावस्था के पण्डित लोग—स्वास्थ्य कहा करते हैं। किन्तु जब इन तीनों में कोई न्यूनाधिक हो जावे, तब उसकी शान्ति का उपाय करे। राजन्! शोक से हर्ष में और हर्ष से शोक में बाधा पड़ती है। जब लोग दुःखी होते हैं, तब वे सुख को और सुखी होने पर दुःख को स्मरण करने की इच्छा किया करते हैं। हे कौन्तेय! आपको सुख दुःख रूपी व्याधियों से रहित हो कर, सुख या दुःख—किसी की भी इच्छा नहीं करनी चाहिये। तब आप दुःख विभ्रम में क्यों पड़ते हैं? अथवा आपकी प्रकृति ही ऐसी है; जिससे आप उस ओर आकर्षित होते हैं। हे महाराज! आपने जो पाण्डवों के सामने रजस्वला एवं एकवस्त्रा द्रौपदी को भरी सभा में खड़ा देखा था, इस समय आपको इस बात का स्मरण करना उचित नहीं है। आपको यह भी उचित नहीं कि, अब आप अपना देशनिकाला, मृगछाला पहिनना, महावनों में निवास, जटासुर द्वारा उत्पीड़न, चित्रसेन के साथ युद्ध, सिन्धु देशाधिपति द्वारा द्रौपदी का हरण, अज्ञातवास के समय कीचक द्वारा द्रौपदी की लाञ्छना, भीष्म और द्रोण का युद्ध में मरण आदि बीती हुई बातों को स्मरण करें। हे अरिंदमन! मनुष्य के लिये तो मन के साथ युद्ध करना ही बहुत बड़ा काम है। अतः आपके लिये भी अब मन के साथ युद्ध करने का समय उपस्थित है। हे भरतर्षभ! आप तो लड़ने के लिये मन के सामने जा, योगबल और निज कर्मों द्वारा उस अव्यक्त मन को परास्त कर, उससे पार हो जाइये। हे युधिष्ठिर! यह युद्ध ऐसा है कि, इसमें न तो तीर कमान की आवश्यकता है और न सहायता के लिये भाई बंदों की। इस युद्ध में तो मन के साथ तुम्हें अकेले ही लड़ना है। यदि आप इस युद्ध में विजयी न हुए तो आपको हर ओर दुःख ही दुःख देख पड़ेगा। हे कुन्तीनन्दन! अतः इस रहस्य को यदि आप जान लें, तो आप कृतकृत्य हो जाँयगे। आप इस प्रकार अपने मन को बोध करा, प्राणियों की गतागति का विशेषरीत्या निश्चय कर, बाप दादों की रीति पर चल, यथोचित रूप से राज्यशासन करें।

तेरहवाँ अध्याय

श्रीकृष्ण और युधिष्ठिर-संवाद

श्रीकृष्ण जी ने कहा—हे युधिष्ठिर ! बाहरी धन या राजपाट त्यागने से मोक्ष नहीं होती। किन्तु शरीरस्थ कामादिक त्यागने ही से मुक्ति मिलती है अथवा विवेक रहित केवल वैराग्यवान् होने से भी काम नहीं चल सकता। बाह्य वस्तु राज्यादि में वैराग्य और शारीरिक कामादि में अनुराग आपके शत्रुओं को हो। सांसारिक पदार्थों में ममता रूप द्वयक्षर मृत्यु कहलाता है और साँसारिक विषयों में निर्ममता रूप त्र्यक्षर शाश्वत ब्रह्म कहलाता है। अर्थात् माया में फंस धनादि को अपना मानने से मृत्यु होती है और "न मम" अर्थात् यह मेरा नहीं है—मानने से सनातन ब्रह्म की प्राप्ति होती है। हे महाराज ! ब्रह्म और मृत्यु दोनों ही अदृश्य रूप से मानव चित्त में विद्यमान रहते हैं तथा प्राणियों को युद्ध में प्रवृत्त करते हैं। हे भारत ! यदि इस जगत में किसी पदार्थ का नाश न होता, तो कोई प्राणी अन्य प्राणी को न तो मारता ही और न किसी को हिंसा करने का पाप ही लगता। हे कुन्तीनन्दन ! यदि चराचरात्मक पृथिवी मण्डल को पा कर, जीव उसमें ममता न करता, तो यह पृथिवी उसके लिये, फलदायिनी न होती। साथ ही जो लोग वन में रह, वन्य फलमूल से जीवन बिताते हुए भी राज्य भोगादि में ममता प्रदर्शित करते हैं; समझना चाहिये वे मृत्यु के मुख में वास करते हैं। आप तो ध्यानयोग से बाह्य अर्थात् राज्यादि तथा आन्तरिक शत्रु अर्थात् कामादि माया ममत्व रूप स्वभाव पर दृष्टि रखिये। जो लोग इस अनादि-माया-मय स्वभाव को भलीभाँति जान लेते हैं, वे ही इस महाभयङ्कर संसार से मुक्त हो सकते हैं। कामवासना से पूर्ण जन की लोकसमाज में प्रशंसा नहीं होती। किन्तु इस लोक में कामना सब की अङ्गभूता होने से कामना बिना कोई मनुष्य किसी कार्य में प्रवृत्त भी तो नहीं होता। अतः भोग का रहस्य जानने वाले पुरुष, बार

बार जन्म लेने के अभ्यासयोग से चित्त को शुद्ध कर, सदैव मुक्ति मार्ग का चिन्तवन करते हुए—कामनाओं को नष्ट कर डाला करते हैं; जो मनुष्य, कामना को धर्मविरोधिनी जानता है और कामना शून्य हो, व्रतानुष्ठान, यज्ञ और ध्यानयोग का अनुष्ठान करता है, वह मानों कामना-निग्रह ही को धर्मकार्य और मोक्षमूलक जानता है। हे युधिष्ठिर! पुराणज्ञ पण्डितगण इस विषय में अनेक कामनागत गाथाएँ कहा करते हैं, जिनसे वे प्रकट करते हैं कि, कामना को कोई नष्ट ही नहीं कर सकता। मैं वे गथाएं ज्यों की त्यों आपको सुनाता हूँ। सुनिये।

काम कहता है—निर्ममता और योग का अभ्यास किये बिना मुझे कोई नहीं जीत सकता। जो कामना युक्त पुरुष मेरी शक्ति को अपने मन में जान कर, वाणी आदि इन्द्रिय साध्य जपादि रूपी शस्त्र से मुझे नष्ट करना चाहता है, मैं उसके मन में अहङ्कार बन कर प्रकट होता हूँ और उसके जपादि कर्म को विफल कर देता हूँ। जो पुरुष वेद और वेदाङ्ग का साधन कर, मुझे विनष्ट कर डालना चाहता है; स्थावर योनि में अनभिव्यक्ति रूप से उत्पन्न जीवों की भाँति मैं, उसके मन में उत्पन्न होता हूँ। जो सत्यपराक्रमी मनुष्य, धैर्य के सहारे मुझे जीतने की चेष्टा करता है, मैं उसके लिये चित्त रूप से प्रकट होता हूँ। अतः वह मुझे नहीं जान पाता। जो संशितव्रत पुरुष तप द्वारा मुझे जीतना चाहता है, मैं उसके मन में तपरूप से उत्पन्न होता हूँ। अतः वह मुझे जान ही नहीं पाता। जो पण्डित नित्ययुक्त आत्मा का स्वरूप न पहचान कर, मोक्ष पाने के लिये मोक्षमार्ग का अवलंबन कर, मुझे नष्ट करना चाहता है, मैं सब प्राणियों से अवध्य एवं सनातन तथा अद्वितीय उस मोक्षरत पुरुष का उपहास कर, उसके सामने नृत्य किया करता हूँ।

हे राजन्! जब निष्काम हुए बिना, योगाभ्यास को छोड़, काम को जीतने का, दूसरा कोई उपाय ही नहीं है, तब उस काम को परित्याग कर, विविध दक्षिणाओं से सम्पन्न होने वाले यज्ञ का अनुष्ठान करने ही से,

आपका कल्याण होगा। अतः आप निष्काम हो कर और सविधि दक्षिणा-युक्त अश्वमेध यज्ञ तथा अन्य प्रकार के दक्षिणायुक्त यज्ञों को कीजिये। जो लोग इस रणक्षेत्र में मारे जा चुके हैं, उन्हें अब आप किसी तरह भी नहीं देख सकते। अतः आप शोक को त्याग कर, दक्षिणायुक्त महायज्ञ द्वारा देवताओं का पूजन करें। ऐसा करने से आपको इस लोक में अनुपम यश और परलोक में उत्तम गति प्राप्त होगी।

चौदहवाँ अध्याय

युधिष्ठिर का हस्तिनापुर में प्रवेश

श्रीवैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! हतबन्धु राजर्षि युधिष्ठिर को उन तपोधन मुनियों ने इस प्रकार के वचनों से समझा बुझा कर, शान्त किया। भगवान् विष्टरश्रवा, वेदव्यास, श्रीकृष्ण, देवस्थान, नारद, भीमसेन, नकुल, सहदेव, द्रौपदी, धीमान् अर्जुन तथा अन्यान्य श्रेष्ठ पुरुषों और शास्त्रवेत्ता ब्राह्मणों द्वारा समझाये जाने पर, धर्मराज युधिष्ठिर ने शोक तथा विषाद को त्याग दिया। तदनन्तर धर्मात्मा युधिष्ठिर ने मरे हुए भाई बंदों का मासिक श्राद्धादि कर्म कर तथा देवताओं एवं ब्राह्मणों का पूजन करते हुए, आसमुद्रान्त भूमण्डल पर राज्य किया। फिर शान्त हो, शान्त-चित्त महाराज युधिष्ठिर ने राज्य पा कर व्यास, नारद तथा अन्य ऋषियों से कहा—मुनियों में आप लोग प्रधान और प्राचीन हैं। अतः आप लोगों के आश्वासन प्रदान करने से अब मेरे मन में रत्ती भर भी दुःख नहीं रहा। मैंने बड़ा धन पाया है। उसीसे मैं आपको आगे कर यज्ञ द्वारा देवताओं का पूजन करूँगा। हे द्विजसत्तम पितामह! मैंने सुना है कि, वह स्थान बड़ा अद्भुत है। अतः आप लोगों की रक्षा में हम लोग जिस तरह वहाँ पहुँच सकें, उस तरह का प्रबन्ध आप कर दें। हे विप्रर्षे! मेरे उस यज्ञ का होना न होना आप ही लोगों के अधीन है। भगवान् देवस्थान तथा देवर्षि

नारद जी ने मुझसे और भी अनेक हित की बातें कहीं हैं। दुःख में पड़े हुए किसी भी भाग्यहीन पुरुष को ऐसा साधु-सम्मत गुरूपदेश नहीं मिल सकता।

युधिष्ठिर के इस कथन को सुन और युधिष्ठिरादि को हिमालय पर्वत पर जाने का आदेश दे, वे महर्षि सब के सामने वहीं अन्तर्धान हो गये। धर्मपुत्र युधिष्ठिर उसी जगह बैठे रहे। तब पाण्डवों ने मृत भीष्म के शौच कर्म किये। ये सब कर्म थोड़े ही समय में पूरे हो गये। कुरुसत्तम युधिष्ठिर ने भीष्म कर्णादि कौरवों के और्द्धदेहिक क्रिया कर्म कर, ब्राह्मणों को बड़े बड़े दान दिये। फिर उन्होंने और धृतराष्ट्र ने मिल कर ब्राह्मणों को बहुत सा धन दिया। तदनन्तर पाण्डवगण—पितृस्थानीय प्रज्ञाचक्षु धृतराष्ट्र को आगे कर और उन्हें धीरज बँधाते हुए हस्तिनापुर में गये। वहाँ जा भाइयों सहित महाराज युधिष्ठिर पृथिवी का शासन करने लगे।

पन्द्रहवाँ अध्याय

राजा जनमेजय के प्रश्न का वैशम्पायन द्वारा उत्तर

राजा जनमेजय ने पूँछा— जब पाण्डवों ने रण में विजय प्राप्त कर ली और वे शान्त चित्त हुए, तब भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुन ने क्या किया?

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! पाण्डवों द्वारा राज्य हस्तगत किये जाने और प्रशान्त होने पर, श्रीकृष्ण तथा अर्जुन अत्यन्त हर्षित हुए। फिर उन दोनों ने विचित्र वनों, पर्वत शिखरों, उत्तम पुण्यस्थलों, पल्वलों तथा नदियों के तटों पर बिचरते हुए वैसे ही विहार किया, जैसे स्वर्ग में दो देवराज, अथवा नन्दन कानन में दोनों अश्विनीकुमार विहार किया करते हैं। हे भारत! श्रीकृष्ण और अर्जुन इन्द्रप्रस्थ में रहते थे और (मय दानव-रचित) सभाभवन में वे देवताओं की तरह विहार किया करते थे। उस समय वे दोनों आपस में विविध विषयों पर वार्तालाप करते हुए

युद्ध सम्बन्धी क्लेशों का भी वर्णन किया करते थे। उस समय पुराण ऋषिसत्तम महात्मा श्रीकृष्ण और अर्जुन ने अत्यन्त हर्षित हो ऋषियों तथा देवताओं के वंशविस्तार का वर्णन किया। निश्चयज्ञ तथा केशिनिषूदन श्रीकृष्ण ने हज़ारों स्वजनों और पुत्रशोक से सन्तप्त कुन्तीनन्दन अर्जुन को अनेक प्रकार से समझाया। विज्ञानवेत्ता एवं महातपस्वी श्रीकृष्ण, अर्जुन को भली भाँति शान्त कर और मानों शरीर का भार हलका कर, विश्राम करने लगे।

तदनन्तर श्रीकृष्ण ने गुडाकेश अर्जुन को मधुर वचनों से सान्त्वना प्रदान कर, निम्न हेतुयुक्त वचन कहना आरम्भ किया। श्रीकृष्ण जी बोले—हे सव्यसाचिन्! तुम्हारे भुजबल के सहारे ही महाराज युधिष्ठिर ने समुद्रों सहित इस पृथिवी को जीता है। हे नरोत्तम! भीम तथा नकुल एवं सहदेव के प्रभाव से युधिष्ठिर आज एकछत्र राज्य करते हैं। धर्मराज ने धर्म ही से अकण्टक राज्य पाया है और धर्मबल ही से रण में दुर्योधन को मार पाया है। अधर्माभिलाषी, सदा कठोर वचन कहने वाले, लोभी, लालची एवं दुरात्मा धृतराष्ट्र पुत्रों को बान्धवों सहित युद्धभूमि में सदा के लिये सुला, धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर, तुम्हारे द्वारा सुरक्षित हो, अखिल भूमण्डल का राज्य कर रहे हैं। मैं तुम्हारे साथ विहार कर रहा हूँ। हे अमित्रकर्षण! मैं और अधिक तुमसे क्या कहूँ, कुन्ती, युधिष्ठिर, महाबली भीम, तुम, नकुल, सह-देव जिस स्थान पर रहते हो, उसी स्थान पर मेरा अनुराग हो जाता है। हे अनघ! स्वर्ग तुल्य इन रमणीय पुण्यस्थलों और सभाभवन में तुम्हारे साथ रहते रहते अब बहुत दिन बीत गये। वसुदेव जी, बलदेव जी तथा अन्य वृष्णिपुङ्गवों को बहुत दिनों से न देखने से, मैं द्वारकापुरी जाने को उत्क-ण्ठित हो रहा हूँ। अतः हे नरश्रेष्ठ! तुम अब मुझे जाने की अनुमति प्रदान करो। जब राजा युधिष्ठिर शोकार्त्त हो रहे थे, तब उनके शोक को दूर करने के लिये, मैंने उन्हें समझा बुझा कर, शान्त किया है। फिर भीष्म जी के शोक से पीड़ित होने पर भी, मैंने उन्हें समझा बुझा कर, शान्त किया

था। महात्मा युधिष्ठिर हम लोगों के शास्ता है और पण्डित होने पर भी, हमने उनसे जो कुछ कहा—उन्होंने हमारे इस कथन की अवहेला न कर, उसे मान लिया। महाराज युधिष्ठिर बड़े धर्मज्ञ, सत्यवादी तथा कृतज्ञ हैं। अतः उनका धर्म, उनकी उत्कृष्ट बुद्धि तथा मर्यादा कभी भी विचलित न होगी।

हे अर्जुन! यदि तुम मुझसे सहमत हो, तो महाराज युधिष्ठिर के निकट जा, उन्हें मेरे जाने की बात जना दो। हे महाबाहो! उनकी अनुमति पाये विना, मैं कोई कार्य नहीं कर सकता। द्वारकापुरी को जाना तो जहाँ तहाँ, प्राणत्याग का प्रसङ्ग उपस्थित होने पर भी, मैं उनके अनभिलषित कार्य को न करूँगा। हे कुन्तीनन्दन! मैं तुम्हारा प्रीतिपात्र और हितैषी हूँ। इसीसे मैंने तुमसे ये सत्य वचन कहे हैं। इन्हें तुम मिथ्या मत समझना। हे अर्जुन! देखो सबल, सपद और अपने अनुयायियों सहित दुर्योधन मारा जा चुका है। अतः यहाँ रहने की मेरी जो आवश्यकता थी, वह पूरी हो चुकी। पर्वतों, वनों और काननों सहित एवं अनेक प्रकार के रत्नों से भरी पूरी ससागरा यह पृथिवी धर्मराज के हाथ आ गयी। अब वे बंदिजनों से प्रशंसित और महानु-भावों से उपासित हो, धर्मपूर्वक अखिल भूमण्डल का पालन करें। आज तुम मेरे साथ, महाराज युधिष्ठिर के पास चल कर उनसे मेरे द्वारकागमन के सम्बन्ध में पूँछ लो। क्योंकि हे पार्थ! महाबुद्धिमान् महाराज युधिष्ठिर मेरे पूज्य और मान्य हैं। मैं अपना यह शरीर और अपना सर्वस्व उनको समर्पण कर चुका हूँ। जब महाराज युधिष्ठिर को तथा तुम लोगों को यह राज्य मिल गया, तब मेरे यहाँ रहने का अब कुछ प्रयोजन नहीं है।

हे राजन्! श्रीकृष्ण की इन बातों को सुन, अर्जुन ने उनके प्रति पूर्ण सम्मान प्रदर्शित कर, दुःखी मन से कहा—अच्छी बात है—ऐसा ही करूँगा।

सोलहवाँ अध्याय

एक ब्राह्मण का इतिहास

राजा जनमेजय ने पूँछा—भगवन् ! शत्रुओं को मार, श्रीकृष्ण और अर्जुन ने उस सभा भवन में निवास करते हुए कौन सी कथा कही थी ?

श्रीवैशम्पायन जी बोले—महाराज ! कुन्तीपुत्र अर्जुन, राज्य वापिस पा कर, आनन्दपूर्वक, श्रीकृष्ण के साथ उस सभा में रहने लगे । अनन्तर हर्षित मना श्रीकृष्ण और अर्जुन ने स्वजनों सहित स्वर्गतुल्य एक सभामण्डप में गमन किया । उस रमणीय सभामण्डप को देख और अत्यन्त सन्तुष्ट हो, अर्जुन ने श्रीकृष्ण से कहा—हे देवकीतनय ! युद्ध के समय आपका ईश्वर रूप और माहात्म्य मुझे विशेष रूप से अवगत हुआ है । हे केशव ! आपने उस समय सुहृदता के नाते जो बातें कही थीं, उन बातों को मैं चित्तभ्रंश वश भूल गया हूँ । आप अब द्वारका जाने वाले हैं । किन्तु मैं वे बातें पुनः सुनना चाहता हूँ ।

वैशम्पायन जी ने कहा—अर्जुन के इस कथन को सुन वाग्मिवर श्रीकृष्ण ने उन्हें आलिङ्गन कर यह कहा ।

श्रीकृष्ण जी बोले—हे पार्थ ! तुम मुझसे समस्त गुप्त विषय सुन चुके हो और सनातनधर्म एवं शाश्वत लोकों को भी जान चुके हो । तुमने मूर्खता वश मेरे कथन को ग्रहण नहीं किया, इसका मुझे बड़ा खेद है । क्योंकि अब मुझे स्वयं ही वे बातें याद नहीं हैं । हे पाण्डुपुत्र ! अतः मुझे निश्चय ही जान पड़ता है कि, तुममें न तो श्रद्धा ही है और न तुम्हारी स्मरणशक्ति ही अच्छी है । मैं तुम्हें वे बातें ज्यों की त्यों नहीं सुना सकता । हे धनञ्जय ! ब्रह्मपद के विज्ञान में, वह धर्म यथेष्ट है । मैं पुनः तुमसे पूर्ववत् उसे न कह सकूँगा । उस समय मैंने योगयुक्त हो, तुमसे परब्रह्म के सम्बन्ध में कहा था । अब उस विषय से सम्बन्ध रखने वाला एक प्राचीन इतिहास तुमको सुनाता हूँ ।

यदि तुम तदनुसार चलोगे तो तुम्हें श्रेष्ठ गति प्राप्त होगी। अतः तुम अब सावधान हो कर, जो कुछ मैं कहूँ, उसे सुनो।

हे अरिदमन! एक बार एक दुर्द्धर्ष ब्राह्मण स्वर्गलोक और ब्रह्मलोक में होता हुआ मेरे पास आया। मैंने उसका पूजन कर उससे धर्म-सम्बन्धी प्रश्न किया। उसने अपनी दिव्य बुद्धि से मुझसे जो कुछ कहा—उसे तुम किसी प्रकार के सङ्कल्प विकल्प की ऊहापोह किये बिना, सुनो।

ब्राह्मण बोला—हे कृष्ण! आपने मोक्षधर्म के आश्रित हो, जीवों पर दया करने के लिये, जो प्रश्न किया है, वह मोह का दूर करने वाला है। हे मधुसूदन! उस प्रश्न का उत्तर मैं ठीक ठीक देता हूँ। आप सुनें। तपस्वी एवं धर्मज्ञ काश्यप नामक किसी एक ब्राह्मण को, एक बार एक दूसरा धर्मवेत्ता ब्राह्मण मिला। मेधावी विप्रश्रेष्ठ काश्यप उस अद्भुतकर्मा ब्राह्मण को देख विस्मित हुए और उसकी सेवा शुश्रूषा कर, उसे सन्तुष्ट किया। क्योंकि वह ब्राह्मण गतागत विषयों में अधिक ज्ञान-विज्ञान-पारग, लोक-तत्वार्थ-निपुण, पाप-पुण्य-कोविद, ऊँच नीच का भेद जानने वाला, कर्मविद् देहधारियों की गति को जानने वाला, मुमुक्षुओं की तरह विचरने वाला, सिद्ध, प्रशान्त, संयतेन्द्रिय, ब्रह्मवर्चस्वी, सर्वत्र-गामी और अन्तर्ध्यानगतिज्ञ था। उस चक्रधारी, सिद्धों के साथ जाने वाले, सिद्धों से एकान्त में वार्तालाप करने वाले, वायु समान इच्छाचारी उस ब्राह्मण को, काश्यप ने दैवयोग से पाया था। इसीसे भक्तिसम्पन्न, धर्मजिज्ञासु, काश्यप ने उस ब्राह्मणश्रेष्ठ के चरण पकड़ लिये।

हे परन्तप! शास्त्रोक्तविधि से किये गये काश्यप के उपचार को ग्रहण कर, उस अद्भुत ब्राह्मण ने काश्यप के प्रति गुरु जैसा व्यवहार कर, उसे सन्तुष्ट किया। हे कृष्ण! सन्तुष्ट और प्रसन्न हो उस सिद्ध पुरुष ने मेधावी काश्यप को जो उपदेश दिया था—वह तुम मुझसे सुनो।

सिद्ध पुरुष बोला—हे तात! जीव विविधकर्मों के द्वारा इस लोक में आते हैं और केवल पुण्य फल के द्वारा देवलोक में निवास पाते हैं। किन्तु

इससे उन लोगों को न तो अत्यानन्द ही प्राप्त होता है और न वे स्थायी रूप से वहाँ रह ही सकते हैं। प्रत्युत वे अत्युच्च स्थान से बारंबार नीचे गिर दुःखी हुआ करते हैं।

हे अनघ! मैंने विषयतृष्णा से मोहित तथा ईर्ष्या द्वेष में पड़, अनेक पापकर्म किये और विविध कष्टप्रद अशुभगतियाँ पायीं; बारंबार जन्म मरण की पीड़ा सही, विविध प्रकार के भोजन किये, अनेक बार अनेक प्रकार के स्तनपान किये, अनेक माताओं और अनेक पिताओं के दर्शन किये और नाना प्रकार के सुख और दुःख भोगे। मुझे अपने अनेक प्रियजनों के विछोह का तथा अप्रियजनों के साथ रहने का दुःख सहना पड़ा। अनेक कष्ट सह कर पैदा किये हुए धन के नष्ट होने का कष्ट सहना पड़ा। राजाओं और स्वजनों द्वारा किये गये आत्म असम्मान सहने पड़े। शारीरिक और मानसिक दारुण वेदनाएं सहनी पड़ीं। दूसरों द्वारा पकड़ा जाना और वध किया जाना भी मैं सहन किये बैठा हूँ। मैं नरकों में जा, यमयंत्रणा का भी अनुभव कर चुका हूँ। मैंने इस लोक में रह कर जरा, रोग, विविध सङ्कट, अनेक प्रकार के द्वन्द्वज दुःखों को भी सहा है। तदनन्तर मैं दुखार्त्त और विरक्त हो, असंप्रज्ञात समाधि को प्राप्त कर, भगवान् के शरण हुआ हूँ और इस लोकतंत्र को त्यागा भी है। इस लोक के समस्त विषयों का उपभोग कर, अन्त में योगाभ्यास द्वारा मैंने मन को अपने वश में कर, अन्तर्द्धानादि योग की सिद्धियाँ भी प्राप्त की हैं। अतः अब मैं इस मर्त्यलोक में न आऊँगा और समस्त लोकों का अवलोकन करूँगा।

हे द्विजश्रेष्ठ! समस्त योनियों में घूम फिर कर, मैं मोक्षपर्यन्त आत्मा की शुभगति को प्राप्त कर, अब मुझे ऐसी सिद्धि प्राप्त हो गयी है कि, अब मैं परमपद को जाऊँगा। इसमें तुम किसी प्रकार का संशय मत करना। अब मैं जन्मग्रहण कर पुनः इस मर्त्यलोक का दर्शन न करूँगा। हे महा-प्राज्ञ! मैं तुम्हारे ऊपर अत्यन्त प्रसन्न हुआ हूँ। अतः बतलाओ मैं तुम्हारे लिये क्या प्रिय कार्य करूँ? जो तुम चाहोगे, वही पावोगे। यही समय है।

तुम जिस लिये मेरे पास आये हो, वह मैं जानता हूँ। मैं कुछ ही समय बाद चला जाऊँगा। इसीसे तुमसे कहता हूँ, हे विचक्षण! मैं तुम्हारे स्वभाव से अत्यन्त सन्तुष्ट हूँ। इसीसे मैं यह तुमसे कहता हूँ कि, जिस में तुम अपना कल्याण समझो वही तुम मुझसे पूँछो। हे काश्यप! तुमने मेरा स्वरूप पहचान लिया है। अतः मैं तुम्हारी बुद्धि की प्रशंसा करता हूँ और समझता हूँ कि, तुम बड़े मेधावी हो।

सत्तरहवाँ अध्याय

ब्राह्मण गीता

श्रीकृष्ण जी बोले—तदनन्तर काश्यप ने उस सिद्ध ब्राह्मण के चरण स्पर्श कर उससे बड़े बड़े कठिन प्रश्न किये और उत्तर में उस धर्मात्मा-श्रेष्ठ ने धर्म का वर्णन किया।

काश्यप ने कहा—आत्मा किस प्रकार शरीर छोड़ता है, किस प्रकार शरीर पाता है और इस कष्टमय संसार में आ कर, किस प्रकार इससे मुक्त होता है, प्रकृति को परित्याग कर किस प्रकार उस शरीर को छोड़ता है और शरीर को छोड़ कर, किस प्रकार दूसरे शरीर में जाता है। यह मनुष्य किस प्रकार शुभाशुभ कर्मों को भोगता है और जब मनुष्य शरीर रहित होता है; तब उसके कर्म कहाँ रहते हैं?

ब्राह्मण ने कहा—हे वार्ष्णेय! सिद्ध ने काश्यप के पूँछने पर इन प्रश्नों के जो उत्तर दिये थे, उन्हें विस्तार पूर्वक मैं कहता हूँ, सुनो।

सिद्ध बोला—जीव अपने वर्त्तमान शरीर से आयु और कीर्तिकर जो कार्य करता है, अन्य शरीर में पहुँचने पर, उन कार्यों के क्षीण होने पर वह विपरीत कार्य करता है। जब उसके उस शरीर के नाश होने का समय आता है, तब उसकी बुद्धि विपरीत हो जाती है। उस समय वह अपना सत्व,

बल तथा काल को न जान कर, आत्मज्ञान से रहित हो, अपने ही विरुद्ध कर्मों को करता है। जब जीव को अनेक प्रकार के क्लेश आ कर घेर लेते हैं, तब उसे वे सब क्लेश भुगतने ही पड़ते हैं। कभी कभी भोगने नहीं भी पड़ते। दुष्ट और कच्चा अन्न एवं माँस तथा अन्यान्य अगुणकारी गुरुतर वस्तुओं को अधिक परिमाण में वह खाता है। वह अधिक कसरत और परिश्रम करता है। शरीर के वेगों को रोकता है। एक बार खाया हुआ अन्न पचने नहीं पाता, तब तक वह दूसरी बार अन्न खा लेता है और दिन में सो कर, स्वयं समस्त दोषों को प्रकुपित करता है। इस प्रकार निज दोषों को प्रकुपित कर, वह ऐसे रोगों का शिकार स्वयं बन जाता है, जो उसे अन्त में मार डालते हैं। इन कारणों के अतिरिक्त कभी कभी कोई प्राणधारी गले में फाँसी आदि लगा कर भी अपनी जान देने का निश्चय करता है। इन सब कारणों से जीव के शरीर का नाश होता है। इसी विषय को मैं और भी विस्तार से कहता हूँ। सुनो।

दारुण वायु से चलायमान और अत्यन्त वृद्धि को प्राप्त ऊष्मा, शरीर में व्याप्त हो, सब इन्द्रियों का रोध करती है। वही ऊष्मा अत्यन्त प्रकुपित और अत्यन्त बलवान हो, जीवस्थान के समस्त मर्मों को भेदती है। उस समय जीव पीड़ायुक्त हो, शीघ्र ही शरीर से पृथक् हो जाता है।

हे द्विजसत्तम! जन्म मरण से सदा विकल हो जीव शरीर को त्यागते हैं। फिर गर्भ में जा, पूर्व जन्मकृत कर्मानुसार जीव उसी प्रकार की पीड़ा पाता है। जोड़ों और हड्डियों के टूटने पर, वह शरीरस्थ जल के सहारे पीड़ित होता है। इस लिये उस समय पञ्चभूतों का मेल ठीक ठीक होने नहीं पाता। तब शैत्याधिक्य से शरीरस्थ वायु प्रकुपित होता है। पञ्चभूतात्मक शरीर में जो वायु, प्राण और अपान वायु के साथ रहता है, वह बड़े कष्ट से शरीर को छोड़ने के लिये ऊर्द्धगामी होता है। तब जीव शरीर को परित्याग कर, उच्छ्वास, ऊष्मा, श्री और चेतनारहित हो कर, लोगों को दिखलायी पड़ता है। जब जीव अपने शरीर से अलग हो जाता है; तब लोग

उसे मृतक कहते हैं। मनुष्य शरीर धारण करने पर, जिन शरीर के छिद्रों से इन्द्रियों के विषयों को जानता है, उन्हींके द्वारा आहारसम्भूत प्राण उसे मालूम होते हैं। जो जीव उस शरीर में प्राण की रक्षा कर सके, उसी को सनातन जानना चाहिये। शरीर में किसी किसी स्थान पर दो नाड़ियों के मिलने से जो जोड़ हो जाते हैं, वे मर्मस्थल कहलाते हैं। उन मर्मस्थलों के भिन्न होने पर, प्राण शब्द करता हुआ, जीव के हृदय में प्रवेश कर, शीघ्र ही चित्त को रोकता है। इसीसे वह चैतन्य जीव कुछ भी नहीं जान पाता। धर्मों के रुक जाने पर मोह को प्राप्त ज्ञान और आधार-स्थान से रहित वह जीव, वायु से भरित हो चलायमान होता है। तदनन्तर, वह वायु, लंबी साँसे लेने वाले, जीव को कठिनाई से लेने योग्य स्वाँसे लिवा कर, शरीर से निकलाता हुआ, शरीर को कँपा डालता है। शरीर से प्रथम और अपने कर्मों से युक्त वह जीव अपने चारों ओर किये हुए पापों और पुण्यों को देखता है। भलीभाँति शास्त्र के सिद्धान्तों को समझने वाले ब्राह्मण उस जीव के किये हुए पापों और पुण्यों को लक्षणों से जान लिया करते हैं। ज्ञान नेत्रों से सम्पन्न सिद्धगण दिव्य नेत्रों द्वारा अन्धकार में विलीन जुगुनुओं की तरह, शरीर से पृथक और गर्भ में आये हुए और जन्म ग्रहण करने वाले जीव को जान लेते हैं। शास्त्रानुसार इस लोक में जीव त्रिविध स्थानों में देख पड़ते हैं। यह पृथिवी कर्मभूमि है, जहाँ जीव नियत होते हैं। जीवगण इसी कर्मभूमि में निज कर्म वश, शुभाशुभ कर्मों के खरे खोटे भोगों को भोगते हैं। अशुभकर्मा मनुष्यों को अपने उन खोटे कर्मों ही से इस लोक में नरक प्राप्त होता है। जिस जगह वे क्लेश भोगते हैं, वह अधोगति ही उनके लिये कष्टकारिणी होती है। इसीसे मोक्ष का मिलना बड़ा कठिन है। अतः आत्मा की खोटे कामों से सर्वदा रक्षा करनी चाहिये। इस लोक से जीवगण ऊर्द्ध्वगामी हो कर जिन स्थानों में निवास करते हैं, उन स्थानों का वर्णन अब सुनो।

जिस स्थान में चन्द्रमण्डल और तारामण्डल है और जिस स्थान में सूर्यमण्डल निज तेज से प्रकाशित होता है, उन स्थानों का वर्णन मुझसे

सुन कर, तुम नैष्ठिकी बुद्धि द्वारा, कर्मों का निश्चय करो। उन सब स्थानों में पुण्यात्मा जन अपने पुण्य कर्मों के बल जाया करते हैं। फिर जब उनका कर्मफल क्षीण होता है, तब वे पुनः नीचे आते हैं। स्वर्ग में भी उच्च, नीच, मध्यम—इस प्रकार की विशेषताएँ हैं। वहाँ पर भी दूसरों की बढ़ती अथवा दूसरों को ऐश्वर्यवान देख, इतर जीवों को सन्तोष नहीं होता। जीव की इन गतियों का मैंने तुमसे अलग अलग वर्णन किया। हे विप्र! अब मैं तुम्हें गर्भ की उत्पत्ति का विवरण सुनाता हूँ। (उसे) भी तुम सावधान हो कर सुनो।

अठारहवाँ अध्याय

ब्राह्मण गीता

दूसरे प्रश्न के उत्तर में उस ब्राह्मण ने कहा—इस लोक में शुभ और अशुभ कर्मों का नाश नहीं होता। इसीसे जीव निज कर्मानुसार, क्षेत्र को प्राप्त कर, सुख और दुःख भोगा करते हैं। जैसे फलवान् वृक्ष बहुत से फल देता है, वैसे ही शुद्ध मन से किया हुआ, पुण्यकर्म, विपुल पुण्यफल देता है। इसी प्रकार पापचित्त से किया हुआ बहुत सा पाप, पाप फल देता है। क्योंकि आत्मा मन को आगे कर, कर्म में प्रवृत्त होता है। कामनाओं और अज्ञान से पूर्ण एवं कर्मबन्धन में बँधा हुआ जीवात्मा जिस प्रकार गर्भ में आता है, वह भी सुनो। रुधिर से संयुक्त और स्त्री के गर्भ में वर्त्तमान वीर्य, कर्मजन्य शरीर को उत्पन्न करता है। किन्तु जीव ब्रह्मवित् होने पर, उस शरीर से शाश्वत ब्रह्म को जान, अभिलषित सिद्धि प्राप्त कर, सूक्ष्म एवं अव्यक्तभाववश असङ्ग अर्थात् किसी विषय में संसक्त नहीं होता। वह शाश्वत ब्रह्म समस्त प्राणियों का बीज स्वरूप है। अतः जीवगण उसके द्वारा जीवन धारण किया करता है। वह ब्रह्म, जीव रूप से गर्भ के समस्त अवयवों में विभाग पूर्वक सञ्चार करता है और चित्त की उपाधि ग्रहण कर, प्राण-

स्थान में स्थित हो, अभिमान धारण करता है। तब उस गर्भ में जान पड़ती है और उसके अंग फड़कने लगते हैं। जैसे सोने का थोड़ा सा भी पानी ताँबे की मूर्ति को स्वर्णमयी बना देता है, वैसे ही सूक्ष्म जीव का उस गर्भ में जाना—समझ लो। फिर जैसे अदृष्ट अग्नि लोहे के गोले में घुस, उसे भली भाँति तपाता है, वैसे ही अदृष्ट जीव का गर्भ में प्रवेश जानो। जिस प्रकार एक स्थान में जलता हुआ दीपक उस सारे स्थान को प्रकाशित करता है, उसी प्रकार, जीव एक स्थान में रह कर, समस्त स्थूल शरीर को चैतन्यमय कर देता है। इस शरीर से जीव, जो शुभाशुभ कर्म किया करता है, अन्य शरीर ग्रहण करने पर भी, उसे पूर्व-देह-कृत समस्त कर्मों के फल भोगने पड़ते हैं। किन्तु उपभोग से उन कर्मों का नाश होने पर, जब तक जीव, मोक्ष-भोग का अभ्यास नहीं करता, तब तक वह दूसरे कर्मों का फल सञ्चित कर लेता है।

हे सत्तम! अब तुम्हारे तीसरे प्रश्न के उत्तर में, मैं अब यहाँ उन कर्मों का वर्णन करता हूँ, जिनसे विपरीत योनियों में भ्रमण करने वाला वह जीव, सुखी होता है। दान देना, व्रत धारण करना, ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना, वेदपाठ करना, गुरूपदिष्ट मंत्र का जप करना, जितेन्द्रिय होना, शान्ति धारण करना, जीवों पर दया करना, चित्त को एकाग्र करना, दूसरे के धन पर नियत न डिगाना, किसी भी प्राणी का मन से भी अनिष्ट न सोचना, माता पिता की सेवा करना, देवता तथा अतिथि का पूजन करना, गुरु की सेवा करना, कृपालु होना, भीतर बाहिर पवित्र रहना, इन्द्रियों को सदा अपने वश में रखना और शुभ कर्मों के अनुष्ठान में लगना—ये सब सत्पुरुषों के व्रत हैं। इनके करने से प्राचीन सृष्टि की रक्षा करने वाला धर्म प्रकट होता है। जिस समय साधु पुरुषों में इन कर्मों का अनुष्ठान होता है, उसी समय वे लोग नित्य स्थिति प्राप्त करते हैं। शान्त स्वभाव के साधु पुरुष जिस धर्म का आचरण करते हैं—वही सदाचार कहलाता है। सदाचार सदा साधुपुरुषों ही में पाया जाता है। जो पुरुष सनातन धर्म का प्रति-

पालन करता है, उसकी दुर्गति नहीं होती। अतः समस्त लोगों को धर्म मार्ग पर चलने के लिये प्रयत्नशील होना चाहिये। क्योंकि योग मार्ग का अवलम्बन करने वाले लोग ही मुक्ति पाते हैं। धर्म मार्ग पर चलने वाला मनुष्य, जिस शरीर से, शुभ कर्म करता है उसको कभी न कभी मुक्ति मिल ही जाती है। जीव इस प्रकार सदा पूर्वकृत कर्मों के फल भोगता है। आत्मा निज कर्मों द्वारा ही विकृत हो, जीवत्व प्राप्त करता है।

अब यह प्रश्न उठता है कि, आत्मा के शरीर ग्रहण की कल्पना सर्वप्रथम किसने की? लोगों में इस प्रकार के सन्देह उठ खड़े होते हैं—अतः इस विषय का स्पष्टीकरण भी मैं अब करता हूँ। सर्वलोकपितामह ब्रह्मा ने सर्वप्रथम आत्मा के लिये शरीर की कल्पना कर, स्थावर-जङ्गम-युक्त सृष्टि की रचना की। तदनन्तर उन्होंने देहधारियों के अभिव्यक्त स्थान देहादि की आकार स्वरूप उस प्रकृति को उन्होंने उत्पन्न किया, जिसके द्वारा यह सारा जगत व्याप्त हो रहा है और जिसे लोग श्रेष्ठ समझते हैं। उस जड़ स्वभाव वाली प्रकृति को लोग 'क्षर' कहते हैं; किन्तु शुद्ध ब्रह्म, उसमें चैतन्य रूप से प्रतिबिम्बित हो, जीव और ईश भाव से व्याप्त होने से "अमृत अक्षर" कह कर, वर्णित होता है। वह क्षर अक्षर तथा शुद्ध अर्थात् शरीर, प्राण और ब्रह्म के बीच क्षर अक्षर प्रत्येक पुरुष में मिथुनभाव से (युक्त में) वास करते हैं। इस प्रकार पुरानी जनश्रुति है कि, प्रजापति ने स्थावर और जङ्गम सृष्टि के सहित, समस्त प्राणियों के विषयादि भूतों को उत्पन्न किया है। तदनन्तर प्रजापति पितामह ने शरीर ग्रहण का समय और परिमाण निर्दिष्ट कर, प्राणधारियों के बीच, सुर, नर और तिर्यगादि रूप से प्राणियों की पुनरावृत्ति तथा परिवृत्ति बनायी। जैसे कोई कोई मेधावी पुरुष इस जन्म में, परमात्मा का दर्शन पा कर, पूर्वजन्म का वृत्तान्त और संसार की अन्तवत्ता का विषय कहा करता है। वैसे ही मैं भी जातिस्मर हो कर, जो कहूँगा, उसे तुम यथार्थ ही जानना।

जो लोग सुख और दुःख को पूर्णरीत्या अनित्य जान, बुद्धि पुरस्सर

किये हुए कर्मों सहित, शरीर को नश्वर जानते हैं और नाममात्र के सुख को दुःख ही समझते हैं, वे ही लोग इस घोर दुस्तर संसार के पार हो सकते हैं।

हे सत्तम ! प्रधान पुरुष (परमात्मा) को जानने वाला जरा, मरण और रोगों से परिपूर्ण जो मनुष्य, समस्त जीवधारियों में परमात्मा की सत्ता को एक दृष्टि से देखता है और वैराग्यवान् होता है, उसके विषय में मैं उपदेशपूर्ण वचन कहता हूँ। हे विप्र ! शाश्वत, अव्यय ब्रह्म के विषय में जो उत्तम ज्ञान है, उसे भी मैं तुमसे विस्तारपूर्वक कहता हूँ। सुनो।

उन्नीसवाँ अध्याय

ब्राह्मणगीता

ब्राह्मणदेव ने कहा—जो मनुष्य पूर्व के स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीरों को परित्याग कर, सब के एकमात्र अधिष्ठानभुत ब्रह्म में अपना मन लीन कर देता है और अन्य किसी विषय की चिन्ता न कर, चुपचाप (मौनभाव से) रहता है, वही इस संसार के बंधनों से छूटता है। सब का मित्र, सब सहने वाला, इन्द्रियों को अपने वश में रखने वाला पुरुष जब तक योगसिद्ध न हो, तब तक उस विषय में दैन्य अथवा द्वेष रहित और जितचित्त होने से मुक्त होता है। जो मनुष्य संयत, पवित्र, अहङ्कार तथा अभिमान से रहित हो समस्त प्राणियों में आत्मवत् आचरण करता है, वह सब प्रकार से मुक्त होता है। जो लोग जीना, मरना, सुख, दुःख, लाभ, हानि, प्रिय और अप्रिय को समान समझते हैं वे मुक्त होते हैं। जो मनुष्य निर्द्वन्द्व और निस्पृह हो, न तो किसी के धन पर मन चलाता तथा न किसी की अवज्ञा ही करता है, वह मुक्त होता है। शत्रुहीन, बन्धु-विहीन, पत्नीरहित, त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ, काम) शून्य और आकाँक्षा से

रहित मनुष्य मुक्त हो सकता है। धर्माधर्म से रहित, पूर्वोपचित कर्म का त्यागने वाला, तत्त्वों के नाश में शान्त चित्त और निर्द्वन्द्व होने से मनुष्य मुक्त होता है। किसी वस्तु की आकाँक्षा न रखने वाला संन्यासी इस जगत को अनित्य और पीपल के वृक्ष की तरह जन्म मृत्यु और जरावस्था से युक्त देखता है। जिसके मन में वैराग्य उदय हो चुका है, वह सदा अपने दोषों पर दृष्टि रख कर, शीघ्र ही आत्मा को बन्धन से मुक्त किया करता है। जो मनुष्य, गन्ध, स्पर्श, रूप, रस, शब्द और परिग्रह रहित अनभिज्ञ आत्मा का दर्शन करने वाला है, वही मुक्त होता है। पाञ्चभौतिक सूक्ष्म और कारण शरीरों से रहित, निर्गुण, तथा सत्व, रज, तम से विषयों के भोक्ता परमात्मा का दर्शन करने वाला पुरुष मुक्त होता है। ज्ञानद्वारा शारीरिक और मानसिक सङ्कल्पों का त्याग करने से मनुष्य अग्नि की तरह धीरे धीरे निर्वाण प्राप्त करता है। जो मनुष्य, सब संस्कारों से पृथक्, सुख दुःखादि भोगों से अलग, स्त्री आदि परिग्रहों से रहित हो, तप द्वारा इन्द्रियों को निग्रह करता है, वही मुक्त होता है।

हे सत्तम! अब मैं उस योगशास्त्र का वर्णन करता हूँ जो सर्वोत्तम है और जिसके द्वारा योगी जन ध्यान द्वारा शुद्ध और आनन्दरूप ब्रह्म को देखते हैं। मैं अब उस योग का वर्णन यथार्थ रीत्या करता हूँ, जिसके द्वारा मनुष्य, अपने चित्त को शरीर में अन्तर्मुख कर, उस आदि अन्त-शून्य परमात्मा को देखता है। उसे तुम अब मन लगा कर सुनो। मनुष्य को उचित है कि, वह इन्द्रियों को निज निज विषयों से हटा कर, मन को क्षेत्रज्ञ जीवात्मा की ओर ले जाय। तदनन्तर उग्र तप कर, मोक्ष योग का अभ्यास करे। मनीषी, तपस्वी, तप में सदा निष्ठा रखने वाला, और योगाभ्यासी मन के सहारे अपने शरीर में स्थित आत्मा को देखे। जब ऐसे लोग चित्त को एकाग्र कर, आत्मा का स्वशरीर में दर्शन करते हैं, तभी वे आत्मा का दर्शन कर पाते हैं। संयत, योगरत, जितचित्त, जितेन्द्रिय पुरुष जब पूर्णरीत्या प्रयत्न करता है, तभी उसे मन के सहारे आत्मा

का दर्शन होता है। जैसे कोई मनुष्य, स्वप्नावस्था में अपरिचित किसी पुरुष को देख, जागने पीछे पुनः उसे देख कर कह उठता है—यह वही पुरुष है, वैसे ही समाधिस्थ पुरुष आत्मा को देख, व्युत्थित होने पर, उसका विश्वात्मरूप से दर्शन किया करता है। जैसे मनुष्य मूँज से सींक निकाल कर दिखावे, वैसे ही योगी पुरुष, शरीर से आत्मा को निकाल, देखा करता है। पण्डितों ने शरीर को मूँज और आत्मनिष्ठ तथा जगदाकार से भासमान माया को सींक कहा है। विद्वान योगी यह दृष्टान्त दिया करते हैं। जो पुरुष मानव शरीर धारण कर, शरीर के भीतर आत्मा को भलीभाँति देखा करता है, वह इस संसार में किसी के अधीन नहीं होता, इतना हो नहीं प्रत्युत त्रिलोकीनाथ भी उसके ऊपर आधिपत्य नहीं जमा सकते। ऐसा पुरुष यदि चाहे तो वह गन्धर्वादि का शरीर धारण कर सकता है। ऐसा पुरुष जरा मृत्यु से आक्रान्त होने पर भी हर्षित या शोकान्वित नहीं होता। अपने मन को अपने वश में करने वाला मनुष्य योग युक्त हो कर, देवताओं का देवत्व पा सकता है और इस नाशवान शरीर को त्याग कर, नित्य ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है। उसे प्राणियों का नाश भयभीत नहीं कर सकता, न दूसरों द्वारा प्राणियों का सताया जाना, उसे दुःखी कर सकता है। निस्पृह, प्रशान्तचित्त एवं योगयुक्त पुरुष सङ्ग और स्नेह से उत्पन्न घोर भय, शोक तथा दुःख से विचलित नहीं होता। कोई भी शस्त्र ऐसे मनुष्य को नष्ट नहीं कर सकते। इसी लिये इस संसार में योग साधन से बढ़ कर, सुखप्रद अन्य कोई साधन नहीं है। क्योंकि योग के सामने मृत्यु को भी पराजित होना पड़ता है। क्योंकि योगाभ्यासी जन अपने मन को आत्मा में पूर्णरीत्या नियुक्त कर के रहते हैं और जरा, दुःख तथा सुख से अलग रह, मज़े में सोया करते हैं। वे जब चाहे, तब एक शरीर को छोड़ दूसरा शरीर धारण कर सकते हैं। किन्तु यदि वे योगबल से ऐश्वर्य भोगी हो जाते हैं, तो फिर ऐश्वर्यों को छोड़ना उनके लिये असम्भव हो जाता है। जब वे अपने मन को आत्मा में पूर्णरीत्या लगा कर, अपने

शरीर के भीतर परमात्मा का दर्शन करते हैं, तब वे इन्द्र के ऐश्वर्य को तृणवत् भी नहीं समझते ।

हे सत्तम ! इस प्रकार आत्मलाभ करने वाला, योगी पुरुष जिस प्रकार योगी होता है तथा वेदान्त शास्त्र के अनुशीलन से मन की वृत्ति को अन्तर्मुखीन करता है वह भी मैं बतलाता हूँ । सुनो । मन को सदा शरीर के भीतर लगाये रहे, बाहिर न लगावे । स्वयं उसके भीतर रह कर, मूलधारादि किसी भी चक्र में वास कर, मन को वहीं रखे । जिस समय वह चक्र में रह, सर्वात्मक ब्रह्म का ध्यान करेगा, उस समय उसका मन कदापि बाहिर की ओर न दौड़ेगा । निर्ज्जन, शङ्का रहित, वन में बैठ, इन्द्रियों का निग्रह करे । फिर शरीर के भीतर और बाहिर व्याप्त ब्रह्म का ध्यान करे । योगाभ्यास के साधन रूप दाँत, तालू, जिह्वा, गला, हृदय या हृदय से सम्बन्ध युक्त नाड़ियों की ओर ध्यान दे । अर्थात् दाँतों से भोज्य पदार्थ को भली भाँति चबाय, फिर जिह्वा को तालू से संयोग कर, गले तथा ग्रीवा को भूखप्यास से निवृत्त करे । हृदय तथा हृदय की नाड़ियों को (योग की क्रियाओं से नित्य धोती आदि से) साफ रखे ।

हे मधुसूधन ! मेरे इस कथन को सुन, उस शिष्यरूप ब्राह्मण ने, मुझसे सुदुर्वच मोक्षधर्म पूँछा ।

शिष्य ने कहा — हे अनघ ! उदर में खाया हुआ भोजन किस प्रकार पचता है ? उसका रस और रक्त किस प्रकार बनता है ? फिर वह शरीर के माँस, मेदा, स्नायु और हड्डियों को किस प्रकार पुष्ट करता है ? शरीर का बल कैसे बढ़ता है ? शरीर की वृद्धि किस प्रकार होती है ? निर्बल पुरुषों के मल अलग अलग किस प्रकार शरीर के बाहिर आते हैं ? शरीर में साँसे किस प्रकार आया जाया करती हैं ? शरीर के भीतर आत्मा के रहने का स्थान कौन सा है ? नाड़ी के अन्दर जीव कौन से सूक्ष्म शरीर को वहन करता है ? नाड़ी मार्ग का वर्ण कैसा है ? उससे फिर किस प्रकार शरीर प्राप्त होता है ? भगवन् । इन सब प्रश्नों के उत्तर आप कृपया मुझे बतावें ।

हे माधव! उस ब्राह्मण के इन प्रश्नों को सुन, मैंने जैसा सुन रखा था—वैसा उसे बतलाया।

जैसे घर का स्वामी, अपने धनागार में अपने बर्तनों को रख, फिर जब जाता है, तब उन्हें सम्हाल लिया करता है, वैसी ही योगी अचलेन्द्रियों के द्वारा मन को शरीर के भीतर रोक कर, वहाँ आत्मा को ढूँढ़े और सब प्रकार के मोहों को त्याग दे। इस प्रकार सदा उद्योगी बन और हर्षित मन से, खोज करने से मनुष्य प्रधानवित् होता है और थोड़े ही समय में वह उस ब्रह्म को पा लेता है। कोई भी पुरुष इन चर्मचक्षुओं से उस परमात्मा को नहीं देख सकता। क्योंकि परमात्मा इन्द्रियग्राह्य विषय नहीं है। मनुष्य केवल मन रूपी दीपक द्वारा ही उसे देख सकता है। वह सर्वग्राही, सर्वत्रगामी, सर्वदर्शी, सर्वशिरा, सर्वानन और सर्वश्रोता है। अतः वह सारे जगत् को परिपूर्ण कर, निवास करता है। जब वह शरीर से निकले, तब जीव उसका दर्शन कर सकता है। जीव सब लक्षणों से युक्त समस्त वस्तुओं को परित्याग कर और मन को अपने रूप में धारण कर, मन ही मन मानों हँसते हुए निर्गुण परब्रह्म के दर्शन करता है। जीव इस प्रकार, परमात्मा का आश्रय ग्रहण करता है।

हे द्विजोत्तम! मैंने तुम्हें यह रहस्य बतला दिया। अब मैं यहाँ से विदा हुआ चाहता हूँ। मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ कि, तुम सुखपूर्वक गमन करो। मैं तुम्हें (योग का) साधन कराऊँगा। हे कृष्ण! मेरे शिष्य उस महातपस्वी संशितव्रती विप्र ने मेरे इन वचनों को सुन इच्छानुसार गमन किया।

श्रीकृष्ण बोले—हे पार्थ! मोक्षधर्म के पूर्ण ज्ञाता वे द्विजवर, यह विषय पूर्णरीत्या कह कर, अन्तर्धान हो गये। हे पार्थ! तुम तो एकाग्र मन से मुझसे यह विषय सुन चुके हो। क्या वह सब तुम भूल गये? हे अर्जुन! इससे तो मुझे यह जान पड़ता है कि, जो मनुष्य व्यग्रचित्त और अकृतात्मा होता है, उसे यह विद्या नहीं आती। हे अर्जुन! मैंने तुमसे अभी जो कहा

है, उसे देवता भी नहीं जानते। इस लोक में इसे किसी ने नहीं सुना। तुम्हें छोड़ और कोई इसे सुनने का पात्र भी नहीं है। अत्यन्त व्यग्र आत्मा वाला पुरुष इस विषय को भली भाँति नहीं जान सकता। हे कुन्तीनन्दन! देखो क्रियावान् लोगों (यज्ञानुष्ठान करने वाले) से देवलोक परिपूर्ण हो रहा है। इस मनुष्य शरीर से छूटना देवताओं को अच्छा नहीं लगता। हे अर्जुन! वह गति सब से परे है, जिसके द्वारा मनुष्य देह त्याग कर, जीव अमरत्व प्राप्त कर, सदा सुखभोग किया करता है। वह परमगति सनातन परब्रह्म ही है।

हे पार्थ! स्वधर्मरत, ब्रह्मलोकपरायण ब्राह्मण और बहुश्रुत क्षत्रियों की तो बात ही क्या, पापयोनि में उत्पन्न स्त्री, वैश्य और शूद्र भी इस मोक्ष धर्म के सहारे परमगति प्राप्त कर सकते हैं। मैंने यह सहेतुक ज्ञान तथा उस के साधन के उपायों का तथा उन साधनों से प्राप्त परम सिद्धि मोक्ष का, जिससे समस्त दुःख दूर होते हैं; वर्णन किया। हे अर्जुन! मोक्ष से बढ़ कर और कोई सुख नहीं है। जो लोग बुद्धिमान्, श्रद्धावान् और पुरुषार्थी हैं वे इन उपायों के द्वारा, इस लोक के सारभूत धनादि को तृणवत् त्याग कर, शीघ्र ही परमगति पाते हैं। हे पार्थ! मैं इतना ही कह सकता हूँ कि, इसके अनन्तर और कुछ भी ज्ञातव्य विषय नहीं है। जो मनुष्य योगाभ्यास में संलग्न रहता है, उसे, छः मास में सिद्धि प्राप्त हो जाती है।

बीसवाँ अध्याय

ब्राह्मण गीता

श्रीकृष्ण जी बोले—अब रहा यह प्रश्न कि, उदरस्थ वैश्वानर खाये हुए पदार्थों को किस प्रकार पचाता है; इस प्रश्न के उत्तर में मैं तुम्हें एक प्राचीन इतिहास सुनाता हूँ। इस इतिहास में स्त्री-पुरुष के प्रश्नोत्तर हैं। एक

ब्राह्मणी थी। उसने एकान्त में बैठे हुए ज्ञान-वैराग्य-पारग अपने पति से पूँछा—

हे स्वामी! आप अग्निहोत्रादि कर्मों को त्यागे बैठे हैं। मेरी जैसी अपनी पत्नी के प्रति आप निर्मोही हैं और मेरे अनन्यगतित्व भाव से आप अनभिज्ञ हैं। अतः आप यह तो बतलावें कि, मैं आप जैसे पति का आश्रय ग्रहण कर, किस लोक में जाऊँगी? क्योंकि मैंने सुना है कि, पति जिस लोक में जाता है, उसी लोक में उसकी पत्नी भी जाती है।

प्रशान्तचित्त विप्र ने अपनी पत्नी के इस प्रश्न को सुन और हँस कर कहा, हे सुभगे! हे पुण्यशीले! मैं तेरे इन वचनों की निन्दा नहीं करता। दीक्षा, व्रतादि दृश्य तथा सत्य आदि यावत् कर्मों ही को, कर्म करने वाले लोग कर्त्तव्य समझा करते हैं। किन्तु अज्ञानी जन शरीर द्वारा अनुष्ठेय कर्मों के द्वारा, केवल मोह का निग्रह करते हैं। क्योंकि कर्म किये बिना कोई एक घड़ी भर भी नहीं रह सकता। कर्म, मन और वचन से सञ्चित शुभाशुभ जन्म, स्थिति और नाश से सम्बन्ध रखने वाले तथा अनेक योनियों में भ्रमण कराने वाले कर्म—प्राणीमात्र किया करते हैं। अनेक प्रकार के उपस्करों द्वारा पूर्ण होने वाले सोमयागादि कर्म, राक्षसों द्वारा नष्ट भ्रष्ट किये जाने पर, मेरी रुचि उनकी ओर से हट गयी है। मैं निज शरीरस्थ, भौं और नासिका के बीच वाले अव्यक्त स्थान को देखा करता हूँ। यह वह स्थान है, जहाँ अनुपम ब्रह्म का निवास है। यहीं पर ईड़ा तथा पिङ्गला नाड़ियाँ हैं। यहाँ पर बुद्धि प्रेरक वायु सदा सञ्चार किया करता है। ब्रह्मादि योगीगण, एवं सुव्रत, प्रशान्तचित्त, जितेन्द्रिय, विद्वान् मनीषी लोग, जिस ब्रह्म की उपासना करते हैं, वह अक्षर ब्रह्म न तो नासिका से सूँघा जाता, न जिह्वा से चाटा जाता और न त्वचा से स्पर्श किया जाता है। वह तो केवल मन द्वारा जाना जाता है। वह नेत्रों तथा कानों की पहुँच के परे हैं। गन्ध, रस, स्पर्श, शब्द, रूप और लक्षण विहीन है। प्राण, अपान, समान, व्यान और उदान प्रभृति सृष्टि का व्यापार, जिनसे प्रवृत्त होता, और जिसमें प्रतिष्ठित

होता है, वे प्राणादि वायु उसीसे प्रवर्तित हो, उसीमें समा जाया करते हैं। वह प्राण, अपान, समान और व्यान के बीच बिचरण किया करता है। जब अपान सहित प्राण के प्रसुप्त (अर्थात् भौं और नासिका के बीच निरुद्ध) होने पर समान और व्यान विलीन होते हैं, तब वह उदान, अपान और प्राण में निवास कर, दोनों में व्याप्त रहता है। यही कारण है कि, सुप्त पुरुष को प्राण और अपान त्याग नहीं कर सकते। प्राणादि का अधिकार सामर्थ्य तथा चेष्टाजनकत्व निबन्धन से पण्डित लोग उसे उदान कहा करते हैं। एकमात्र उदान ही में प्राणादि का अन्तर्भाव होता है। इसीसे ब्रह्मवादी पुरुष प्राणों को विजय करने वाले तप को किया करते हैं। परस्पर भक्षक एवं शरीर के भीतर रहने वाले प्राणादि वायु के बीच, समान वायु के निवासस्थल नाभिदेश में वैश्वानर नामक अग्नि रहता है। यह अग्नि सात भागों में विभक्त हो, वहाँ प्रकाशित हुआ करता है। नासिका, जिह्वा, नेत्र, कान, त्वचा, मन और बुद्धि—ये सात उस वैश्वानर अग्नि की जिह्वाएँ हैं। सूँघना, देखना, पीना, सुनना, मनन और बोध करना—ये उस वैश्वानर अग्नि की समिधाएँ हैं। सूँघने वाला, खाने वाला, देखने वाला, स्पर्श करने वाला, सुनने वाला, मनन करने वाला और बोद्धा—ये सात ऋत्विज हैं। हे सुभगे! घ्रेय, पेय, दृश्य, स्पृश्य, श्रव्य, मन्तव्य और बोद्धव्य—ये सात हवि हैं। पूर्व कथित सात प्रकार के विद्वान् ऋत्विज, सात प्रकार के ब्रह्माग्नि में, सात प्रकार की हवियाँ डाल कर, पृथिव्यादि उत्पन्न करते हैं। पृथिवी, वायु, आकाश, जल, अग्नि, मन और बुद्धि—ये सात योनियाँ कहलाती हैं। घ्राणेन्द्रिय आदि के अभिमानी देवता रूपी सात अग्नियों में, गन्धादि सातों विषयों को होमने वाले पुरुष अभिमानी होते हैं, किन्तु ज्ञानी पुरुष उन अभिमानों को अपने पास नहीं फटकने देते। हव्य रूप से सब विषय उस गन्धादि की ज्ञान रखने वाली वृत्ति में, प्रवेश करते हैं। वे सब सृष्टि के स्वामी एवं सब के आवागमन के आश्रय रूप ही में लय होते हैं। फिर उस अन्तर्वास से गन्ध, गन्ध से रस, रस से रूप, रूप से स्पर्श, स्पर्श से शब्द, शब्द से मन और

मन से बुद्धि की उत्पत्ति होती है। पण्डित जन इस भाँति सात प्रकार की उत्पत्ति को जानते हैं। इसी मार्ग से प्राचीन ऋषियों ने घ्राणादि इन्द्रियों का रूप, वेद द्वारा जाना था। प्रमाण, प्रमेय और प्रमाता से पूर्ण, ब्रह्म के आह्वान के द्वारा परिपूर्ण हो कर, तीनों लोक, अपने ज्योति रूप आत्मा से पूर्ण होते हैं।

इक्कीसवाँ अध्याय

ब्राह्मण गीता

ब्राह्मण बोला—हे भामिनी! इस प्रसङ्ग में पण्डित लोग, दस विध होता-विधान युक्त एक प्राचीन इतिहास कहा करते हैं, उसे तुम सुनो। कान, चर्म, नेत्र, जिह्वा, नासिका, वाक्, हाथ, पाँव, उपस्थ, ये दस हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, वाक्य, क्रिया, गति, रेत, मूत्र, मल का त्याग—ये दस हवि हैं। दिशा, वायु, सूर्य, चन्द्र, पृथिवी, अग्नि, विष्णु, इन्द्र, प्रजापति और मित्र—ये दस अग्नि हैं।

हे भामिनी! पूर्वकथित, श्रोतादि दशेन्द्रिय रूप होतागण, इन्द्रियों के अधिष्ठातृ देवता, दिगादि रूप दस प्रकार के अग्नि में हवनीय शब्दादि दस प्रकार के विषय रूप समिधाओं की आहुति प्रदान किया करते हैं। इस यज्ञ में चित्त रूप श्रुवा के सहारे, घृतरूप इन्द्रियार्थों की आहुति दे कर, दक्षिणार्थ अग्नि में चित्तरूप श्रुवा से पाप पुण्य को डालने पर, केवल पवित्र तथा उत्तम ज्ञान शेष रह जाता है। सुनते हैं, यह जगत् उस ज्ञान से पृथक हो, स्थित है। समस्त ज्ञेय पदार्थ ही चित्त हैं, ज्ञान उस चित्त को केवल प्रकाशित करता है; उसमें मिलता नहीं। वीर्य से उत्पन्न होने वाले स्थूल शरीर का अभिमानी जीवात्मा—सूक्ष्म शरीरों को पाने का भी अभिलाषी होता है। क्योंकि अभिमान उससे पृथक् वस्तु नहीं है। शरीर का अभिमानी जीवात्मा है और जीवात्मा का निवास-स्थल हृदय है।

हृदय ही से दूसरा मन प्रकट होता है। वही मन मुख है, जिसमें हव्य अर्थात् जल, अन्न डाले जाते हैं। उससे वेद, वेद के बाद पृथिवी सम्बन्धी चित्त उत्पन्न हुआ है। अतः चित्तरूप सूत्रात्मा, वेद के वचनों को विचारता है। तब प्राण नाम वायु प्रकट होता है। यह प्राणवायु न तो पीला है और न नीला। वह मन का अभाव, मन प्राण का कर्त्ता आगे पीछे प्रकट होता है। अर्थात् प्राणवायु उत्पन्न हो मन का अनुगामी होता है।

ब्राह्मणी बोली—जब वचन मन के द्वारा सोच समझ कर बोला जाता है, तब प्रथम वचन और पीछे मन क्यों प्रकट होता है? किस प्रमाण के अनुसार प्राण मन का अनुगामी होता है? सुषुप्ति अवस्था में उदित हो कर, विषय भोग से रहित हो कर भी, उसकी ज्ञानशक्ति को कौन हर लिया करता है?

ब्राह्मण बोला—अपान, प्राण का प्रभु बन प्राण को मन का अनुगामी बनाता है। इसीसे पण्डित लोग प्राण की उस अपानगति को मन की गति बतलाते हैं। तुमने मुझसे मन तथा वचन के विषय में प्रश्न किया है। अतः मैं तुम्हें वाणी और मन का संवाद सुनाता हूँ। सुनो।

एक दिन वाणी और मन जीवात्मा के निकट गये और पूँछा—हम दोनों में श्रेष्ठ कौन है? हमारे इस प्रश्न का उत्तर दे कर हमारा सन्देह दूर कीजिये। मनीराम वाग्देवी सरस्वती से बोले—मैं ही श्रेष्ठ हूँ। तदनन्तर वाग्देवी ने मनीराम से कहा—मैं श्रेष्ठ हूँ। क्योंकि तुम जो सोचते हो, उसे मैं प्रकाश करती हूँ। अतः मैं तुम्हारी कामधेनु हूँ। अतः मैं तुमसे श्रेष्ठ हूँ। वाणी और मन का जब इस प्रकार आपस में झगड़ा उठ खड़ा हुआ, तब मन ब्राह्मणी का रूप धारण कर, दोनों के विषय-विभाग द्वारा समता सम्पादन करता हुआ बोला—

ब्राह्मणी रूपी मन कहने लगा— स्थावर एवं बाह्य इन्द्रियों के विषय तथा जङ्गम अतीन्द्रिय स्वर्गादि विषय दोनों ही को मेरा मन जानो। परन्तु

स्थावर मेरे पास और जङ्गम तुम्हारे पास रहते हैं। इसके अतिरिक्त मंत्र, वर्ण और स्वर के द्वारा प्रकाशित वह जङ्गम स्वर्गादि विषय, मन को प्राप्त कर, जङ्गम हुआ करते हैं। अतः तुम मन से श्रेष्ठ हो। हे शोभने! जब वाग् देवी स्वयं कामधेनु हो कर, मन के निकट जाती है, तब मन उच्छ्वास को प्राप्त हो कर, वचन कहता है। हे महाभागे! वाग्देवी प्राण द्वारा प्रेरित हो, मनोवृत्ति विशेष प्राण और अपान के भीतर सदा रहा करती है; किन्तु जब वह प्राण की सहायता के बिना अत्यन्त नीच होती है, तब वह प्रजापति के पास जा कहा करती है—भगवन्! मुझ पर प्रसन्न हूजिये। तदन्तर वाक्य को आप्यापित कर प्राण प्रकट होता है। तब वाग्देवी प्राण से उच्छ्वास प्राप्त कर, मौनावलम्बन किया करती है। वचनरूपिणी वाणी दो नामों से प्रसिद्ध है। प्रथम घोषिणी अर्थात् शब्दायमान, दूसरी अघोषा अर्थात् शब्द रहित, इन दोनों में अघोषा श्रेष्ठ है। क्योंकि घोषिणी प्राणों की वृद्धि चाहती है और हंस मन्त्रस्वरूपिणी अघोषा सब दशाओं में वर्तमान रहने के कारण श्रेष्ठ मानी गयी है। जैसे गौ उत्तम रस (दूध) देती है, वैसे ही उत्तम अक्षरों वाली ब्रह्मवादिनी घोषिणी वाग्देवी सदैव मोक्ष और समस्त अर्थों को प्रकट किया करती है। हे शुचिस्मते! दिव्य वचन रूप वह गौ दो प्रभावों से युक्त है। दिव्य अर्थात् देवताओं का आह्वान—अदिव्य अर्थात् व्यवहारादिक उन दोनों से चलायमान और सूक्ष्म वचन और चित्त के अन्तर को देखो।

ब्राह्मणी बोली—वाक्य उत्पन्न न होने पर, विवक्षा से प्रेरित वाङ्मयी सरस्वती देवी उस समय कैसी अवस्था में रहती है?

ब्राह्मण ने उत्तर दिया—जो वचन शरीर में प्राण से प्रकट होते हैं, वे प्राण से चलायमान हो कर, नाभि देश पर अपान से मिल जाते हैं। फिर उदान के स्थान पर जा कर, उससे भी मिल कर एकता कर, शरीर को त्याग कर, व्यानरूप से समस्त आकाश में व्याप्त हो जाते हैं। तदनन्तर पूर्व की तरह, समान में जा स्थित होते हैं। इस प्रकार, वचनों ने अपने प्रथम

प्रकट होने की रीति को बतलाया। इस लिये चित्त स्थावर रूप होने के कारण श्रेष्ठ है। इसी लिये जङ्गमरूप होने के कारण वचन भी श्रेष्ठ है।

बाईसवाँ अध्याय

ब्राह्मण गीता

ब्राह्मण बोला—हे सुभद्रे! मन और वाणी के विषय में एक और इतिहास सुनाता हूँ। उसमें सात होताओं का विधान वर्णन किया गया है। उसे सुनो। नाक, आँख, जिह्वा, चर्म, कान, मन और बुद्धि—ये ही सात होता हैं। ये सातों अलग अलग स्थानों पर रहा करते हैं। हे शोभने! ये सातों होता सूक्ष्म अवकाश में निवास कर, एक दूसरे का दर्शन नहीं करते। तुम इन स्वभावसिद्ध सातों होताओं का ज्ञान विशेष रूप से सम्पादन करो।

ब्राह्मणी बोली—भगवन्! ये सातों होता थोड़ी सी जगह में बस कर भी आपस में एक दूसरे के दर्शन क्यों नहीं करते? उनका स्वभाव कैसा है? यह बात आप मुझे विस्तार पूर्वक सुनाइये।

ब्राह्मण बोला—इन सातों होताओं को अपने अपने गुणों को ग्रहण करने की अनभिज्ञता है। अतः वे एक दूसरे के गुणों को आपस में नहीं जान पाते। जिह्वा, नेत्र, कान, त्वचा, मन और बुद्धि ये गन्ध को ग्रहण नहीं करते—केवल नाक ही गन्ध को ग्रहण करती है। नासिका, नेत्र, कान, त्वचा, मन और बुद्धि ये रस को ग्रहण नहीं करते—केवल जिह्वा ही से रस का बोध होता है। नासिका, जिह्वा, कान, त्वचा, मन और बुद्धि—ये रूप को ग्रहण नहीं करते—केवल नेत्रों द्वारा ही रूप का ज्ञान होता है। नासिका, जिह्वा, नेत्र, कान, मन और बुद्धि—इनमें स्पर्श गुण ग्रहण करने की शक्ति नहीं है—यह शक्ति केवल त्वचा ही में है। नासिका, जिह्वा, नेत्र, त्वचा, मन और बुद्धि में शब्द गुण को ग्रहण करने की शक्ति नहीं है—यह

शक्ति केवल कानों ही में है। नासिका, जिह्वा, नेत्र, त्वचा, कान और बुद्धि—ये संशय गुण को ग्रहण नहीं कर सकते; केवल मन ही उसे ग्रहण कर सकता है। नासिका, जिह्वा, नेत्र, त्वचा, कान और मन में निष्ठा-गुण को ग्रहण करने की शक्ति नहीं है—केवल बुद्धि ही निष्ठा-गुण को ग्रहण कर सकती है। हे भामिनी! इस विषय में पण्डित लोग, मन और इन्द्रियों के संवाद का एक प्राचीन इतिहास कहा करते हैं—उसे तुम सुनो।

मन बोला—मेरे बिना नाक गन्ध को, नेत्र रूप को, जिह्वा रस को, त्वचा स्पर्श को और कान शब्द को ग्रहण नहीं कर सकते। अतः सब में मैं ही प्रधान तथा नित्य हूँ। मेरे बिना इन्द्रियाँ शून्यग्रह अथवा बुझी हुई निस्तेज अग्नि जैसी हो जाती हैं। प्राणी मात्र मेरे बिना, इन्द्रियों के रहते हुए भी सूखी या गीली लकड़ी की तरह हो जाते हैं।

इन्द्रियाँ बोलीं—आप जैसा कहते हैं, यदि सचमुच कहीं वैसा ही होता और आप हम लोगों के बिना, हम लोगों के विषयों को भोग कर सकें अथवा हम लोगों के प्रलीन होने पर तथा विषयों के विद्यमान रहने पर, यदि आप सचमुच सङ्कल्प मात्र से, विषयों को भोग कर और इस सम्बन्ध में अपनी अभिलाषा पूरी कर सके तो आप, नासिका से रूप, नेत्र से रस, कान से गन्ध, जिह्वा से स्पर्श, त्वचा से रस तथा बुद्धि से स्पर्श गुण को ग्रहण कीजिये न? नियम तो निर्बलों के लिये हुआ करते हैं, सबलों के लिये नहीं। आप उच्छिष्ट भोजन करने योग्य नहीं हैं, अतः आप ये सब अपूर्ण भोग ग्रहण करें।

जैसे वेद का अर्थ सम्पादन करने के लिये, शिष्य गुरु के निकट जा कर, वेदार्थ जान लेता है, वैसे ही स्वप्न और जाग्रत अवस्था में अतीत और अनागत विषय हम लोगों के द्वारा दर्शित और जाने जाने पर, आप उनका अनुभव किया करते हैं। ऐसा देखा गया है कि, हम लोगों के निज निज शब्दादि विषय ग्रहण करने पर, छोटे मन वाले जीवों के वेमन होने में, प्राण की स्थिति दिखलायी पड़ती है। अनेक सङ्कल्प मन से

कर के और स्वप्न को देख कर, तृषार्त्त मनुष्य, विषयों की ओर दौड़ते हैं। बाह्येन्द्रिय रूप द्वारों से रहित घर की तरह प्राणिगण विषयों से निबद्ध हो और सङ्कल्प समूह में प्रवेश कर, जैसे लकड़ी के जल जाने पर आग बुझ जाती है वैसे ही, प्राणक्षय होने पर, शान्त हो जाते हैं। इच्छानुसार हम लोगों को निज निज गुणों में आसक्ति होती है। किन्तु पारस्परिक गुणों की उपलब्धि नहीं होती और आपके अतिरिक्त अन्य किसी पदार्थ से हम लोगों को हर्ष उत्पन्न नहीं होता।

तेईसवाँ अध्याय

पञ्च होता (१)

ब्राह्मण बोला—हे सुभगे! इस प्रसङ्ग में पण्डित लोग पञ्च होता के संवाद से युक्त यह प्राचीन इतिहास कहा करते हैं। बुद्धिमान् लोग प्राण, अपान, उदान, समान और व्यान—इन पाँच प्रकार के वायु को पञ्च-होतृ बतलाते हैं और वे इनके परम तत्त्व को जानते हैं।

ब्राह्मणी ने कहा—अभी मैं आपसे स्वभावसिद्ध सप्त होताओं का वृत्तान्त सुन चुकी हूँ। अब आप पञ्च होताओं और उनके परमतत्त्व को विस्तार-पूर्वक कहें।

ब्राह्मण बोला—वायु प्राण से उत्पन्न होने पर अपान रूप से परिणत होता है। अनन्तर अपान से प्रकट हो व्यान और व्यान से प्रकट हो उदान तथा उदान से उत्पन्न हो समान के रूप में परिणत हो जाता है।

एक समय प्राणादि पञ्चवायु ने मिल कर, सर्वलोकपितामह ब्रह्मा जी से पूँछा—हे ब्रह्मन्! आप बतलावें, हम लोगों में श्रेष्ठ कौन है? आप जिसे बतलावेंगे, वही हममें श्रेष्ठ माना जायगा।

ब्रह्मा जी बोले—शरीरधारियों के शरीरों में जिस प्राण के न रहने से सब प्राणी नष्ट हो जाते हैं और जिस प्राण के सञ्चार होने से वे पुनः प्रकट

हो जाते हैं, वही तुम लोगों में श्रेष्ठ है। अब तुम जहाँ जाना चाहते हो वहाँ जाओ।

प्राण बोला—प्राणियों के शरीर में मेरे प्रलीन होने से सब प्राण ही प्रलीन होते हैं और मेरे सञ्चारित होने से सभी प्रकट होते हैं। अतः सब में श्रेष्ठ मैं ही हूँ। तुम सब लोग देख लो।

ब्राह्मण बोला—हे शुभे! प्राण के प्रलीन होने पर एवं पुनर्वार सञ्चारित होने पर, समान और उदान ने कहा—हे प्राण! तुम इस शरीर में हमारी तरह सर्वत्र व्याप्त रह नहीं सकते, अतः तुम हमसे श्रेष्ठ नहीं हो सकते। अपान तुम्हारे वश में है। अतः तुम अपान के प्रभु हो सकते हो। यह सुन प्राण जब पुनः सञ्चारित हुआ, तब अपान ने उससे कहा—

अपान बोला—प्राणियों के शरीरों में मेरे प्रलीन होने से प्राण रह ही नहीं सकता और मेरे सञ्चारित होने से सब प्रकट होते हैं। अतः सर्वश्रेष्ठ तो मैं ही हूँ। लो देखो, मैं अब प्रलीन होता हूँ।

ब्राह्मण बोला—तदनन्तर व्यान और उदान ने अपान से कहा—हे अपान! तुम हम लोगों से श्रेष्ठतम हो सकते हो। तदनन्तर अपान के प्रकट होने पर, व्यान ने उससे पुनः कहा—मैं जिस कारण से सर्वश्रेष्ठ हूँ, उसे सुनिये। प्राणियों के शरीरों में मेरे प्रलीन होने से सब प्राणधारी नष्ट हो जाते हैं और शरीरों में मेरे प्रचारित होते ही—सब जी जाते हैं। अतः सर्वश्रेष्ठ तो मैं हूँ। तुम सब देख लो।

ब्राह्मण ने कहा—तदनन्तर व्यान प्रलीन हो पुनः प्रकाशित हुआ। तब प्राण, अपान, उदान और समान ने उससे कहा—हे व्यान! तुम हमारे प्रभु नहीं हो सकते। किन्तु समान तुम्हारे वश में है। अतः तुम उसके प्रभु हो सकते हो। यह सुन जब व्यान पुनः प्रकट हुआ, तब समान ने उससे कहा—जिस कारण मैं सर्वश्रेष्ठ हूँ सो सुनो।

प्राणियों के शरीरों में जब मेरे प्रलीन होने से सभी प्रलय को प्राप्त हो जाते हैं और मेरे प्रकट होने पर जब सभी प्रादुर्भूत होते हैं; तब मैं ही

सर्वश्रेष्ठ हुआ। तदनन्तर समान के प्रकट होने पर, उदान ने उससे कहा— जिस कारण मैं सर्वश्रेष्ठ हूँ, उसे सुनो। प्राणियों के शरीरों में मेरे प्रलीन होने से सब प्रलय को प्राप्त होते हैं और मेरे प्रकट होने पर, पुनः सब का प्रादुर्भाव होता है। अतः मैं प्रलीन होता हूँ। तुम सब देखो। तदनन्तर उदान के प्रलीन हो कर पुनः प्रकट होने पर, अपान, समान और व्यान ने उससे कहा—हे उदान ! व्यान तुम्हारे आश्रित है। अतः तुम व्यान के प्रभु हो सकते हो—हम लोगों के नहीं।

ब्राह्मण बोला—तदनन्तर प्रजापति ब्रह्मा जी ने प्राणादि वायुओं से कहा—तुम अपने अपने ढंग से सब ही श्रेष्ठ हो और अन्योन्य आश्रित हो। किसी से न तो कोई श्रेष्ठ है और न कोई अपकृष्ट। जैसे एक प्राणवायु, स्थिर और अस्थिर हो कर, आत्मा पर अधिकार जमा, उपाधिभेद से पञ्च-वायु रूप में परिणत होता है, वैसे ही एक आत्मा उपाधिभेद से बहुरूप वाला हुआ करता है। आपस में एक दूसरे के साथ मेल रखने ही से तुम्हारी सब की भलाई है। अतः तुम सब आपस का विरोध त्याग कर, यहाँ से विदा हो। तुम्हारा मङ्गल हो।

चौबीसवाँ अध्याय

पञ्च होता (२)

ब्राम्हण बोला—इस सम्बन्ध में पण्डित लोग एक और प्राचीन इतिहास कहा करते हैं। जिसमें देवमत नामक ऋषि के साथ देवर्षि नारद का कथोपकथन वर्णित है। उसे सुनो।

देवमत ने कहा—हे नारद ! जब गर्भस्थ बालक के शरीर में सजीवता आती है, तब प्राण, अपान समान, व्यान और उदान नामक पाँच वायुओं में से सर्वप्रथम किस वायु का सञ्चार शरीर में होता है ?

नारद जी ने कहाँ—आप प्रथम यह जान लें कि, जिस कारणवश यह जीव उत्पन्न किया जाता है, उसी कारण से दूसरा जीव भी आदि कारण रूप से उसको प्राप्त होता है। प्राण को द्वन्द्व जानना चाहिये। तिर्यक् योनि, मनुष्यादि योनि, उन्नत देवयोनि और निकृष्ट पशुयोनि हैं—इन सब का भी यथार्थ रूप जान लेना आवश्यक है।

देवमत ने पूँछा—यह जीव किससे उत्पन्न होता है और कौन दूसरा उसको कारण रूप से प्राप्त करता है? द्वन्द्व-प्राण किसे कहते हैं? ऊँच नीच योनियों से क्या तात्पर्य है? ये सब बातें समझा कर, मुझसे आप कहें।

नारद जी कहने लगे—जिस आनन्दरूप ब्रह्म से समस्त जीव उत्पन्न होते हैं, उसीके आनन्द का अंश, सङ्कल्प द्वारा जीवरूप से प्रकट होता है। वेदमन्त्र रूप शब्द से भी तत्वों की वह सृष्टि, जो कि, प्रलयाग्नि से भस्म हो गयी थी, पुनः वैसे ही उत्पन्न होती है; जैसे तक्षक का डसा हुआ वट वृक्ष, कश्यप ब्राह्मण के मंत्र से पुनः हरा भरा हो गया था। रस रूपी विषयवासना से भी उत्पत्ति होती है। शुक्र अर्थात् अदृष्ट प्रारब्ध और शोणित अर्थात् रागादि—इन दोनों के संयोग से प्रथम लिङ्ग शरीर रूप प्राण, उत्पत्ति करने के लिये कर्म करता है। तब प्राण से जन्मादिक द्वारा विपरीत दशाओं से युक्त और वासना रूपी कार्य से बने हुए शरीर में अपान नामक वायु का सञ्चार होता है। फिर उस जन्म में प्राप्त होने वाले प्रारब्ध और वासना भी उसके उत्पत्ति का कारण है। यह उदान का रूप है। क्योंकि वह आनन्दस्वरूप है और कारण रूप ब्रह्म के बीच में आनन्द को व्याप्त कर, ठहरा हुआ है। अज्ञान की उत्पत्ति इच्छा से है। इच्छा ही से रजो-गुण की उत्पत्ति होती है। प्रारब्ध और रागादि, समान और व्यान से, अर्थात् सम्बन्ध युक्त विद्युत और श्रोत्रेन्द्रिय से उत्पन्न हुआ है।

प्राण और अपान अर्थात् इच्छा और प्रीति—यह द्वन्द्व है। जीवात्मा की उपाधि प्राण और अपान हैं। वे अवाक् हैं और ऊर्द्ध्वगति वाले हैं।

व्यान और समान और इष्ट और श्रुत—ये दोनों ऊर्ध्वगति से रहित हैं और द्वन्द्वरूपी कहलाते हैं। इन दोनों से ब्रह्म की प्राप्ति नहीं होती। अग्नि अर्थात् परमात्मा ही सर्वदेवतारूप है। यह वेद का मत है। ब्रह्मज्ञानियों का परम ज्ञान उसी वृत्ति से युक्त हो कर, वेद ही से उत्पन्न होता है। जिस प्रकार धुआ और भस्म अग्नि के रूप से भिन्न हैं, वैसे ही लयक्षेप के कारण रजोगुण, तमोगुण भी चैतन्यरूप से बाहिर है।

जिस अग्नि में हव्य डाला जाता है, उसी अग्नि से सब कुछ उत्पन्न होता है। जीव और ब्रह्म को मिलाने वाला जो योग है, उसके ज्ञाता लोग यह जानेते हैं कि, समान और व्यान अर्थात् इष्ट और श्रुत समस्त पदार्थ बुद्धिसत्व से पैदा होते हैं। प्राण और अपान यह आज्यभाग रूपी हैं। इन दोनों को होमने से उनके बीच उदान नाम परब्रह्म प्रकाशित होता है। वही इन समस्त होमे हुए दृश्य पदार्थों को खाता है। उदान के परमरूप को ब्रह्मज्ञानी जानते हैं।

अब द्वन्द्व से जो पृथक है, उसे तुम मुझसे सुनो। विद्या और अविविद्यारूपी यह अहोरात्र ही द्वन्द्व है। स्वप्नावस्था और जाग्रतावस्था अथवा उत्पत्ति और नाश ही द्वन्द्व हैं। इनके बीच, कार्य कारण को अपने में लय करने वाला शुद्ध ब्रह्म है। उस अधिकतर चेष्टावान् ब्रह्म को आनन्दरूप ब्रह्मज्ञानियों ने जान लिया है। उनसे बढ़ कर, ब्रह्मसङ्कल्प द्वारा समान, व्यान अथवा कार्य कारण रूप होता है। इसी कारण यह कर्म बढ़ाया जाता है।

तृतीय सुषुप्तिरूप समान और व्यान के द्वारा पुनः निश्चित होता है। शान्ति के निमित्त समान, व्यान, सनातन ब्रह्म ये तीनों एकमात्र शान्ति शब्द से वर्णित किये जाते हैं। ब्राह्मण लोग उदान के इस आनन्द रूप को परब्रह्म कहा करते हैं।

पचीसवाँ अध्याय

चतुर्होत्र विधान

ब्राह्मण बोला—हे भद्रे ! इस विषय में पण्डितगण चातुर्होत्र विधान की विधि से युक्त एक पुराना इतिहास कहा करते हैं । उसे मैं कहता हूँ । इस अद्भुत रहस्य को तुम सुनो ।

हे भामिनी ! कर्ता, कर्म, करण और मोक्ष ये तो चार होता हैं । इन्हींके द्वारा यह सारा जगत् घिरा हुआ है । यद्यपि पहले प्राणादि दस और सात होताओं में वर्णित किये जा चुके हैं, तथापि उनमें कौन किसके हेतु है, यह वर्णन नहीं किया गया । अतः अब मैं युक्त द्वारा हेतुओं के साधनों को विशेषरीत्या कहता हूँ । सुनो । नासिका, जिह्वा, नेत्र, कान, त्वचा, मन और बुद्धि सातों अविद्या से उत्पन्न हैं । गन्ध, रस, रूप, शब्द, स्पर्श, मन्तव्य और बोद्धव्य—इन सातों की उत्पत्ति कर्म से है । सूँघने वाला, खाने वाला, देखने वाला, बोलने वाला, सुनने वाला, मनन करने वाला और बोद्धा—ये सातों कर्त्तापने के हेतु हैं । ये घ्राणादिक जो कि सूँघने आदि के विषय रखने वाले और उन्हींके साधक हैं—अपने शुभाशुभ गन्धादिक गुणों को भोगते हैं । यह घ्राणादिक सातों मोक्ष के हेतु हैं । बुद्धिमान् तत्वज्ञानियों की नासिका आदि इन्द्रियाँ नियमानुसार सदा ध्रेयादि विषयों को उपभोग किया करती हैं । जिस तरह मनुष्य अपने लिये अन्न पाक बनवा कर, ममता से नष्ट होता है, उसी तरह अज्ञजन ध्रेय आदि विषयों में लिप्त हो ममता से विनष्ट हुआ करते हैं । अभक्ष्यभक्षण, मदिरापान उसको नाश कर डालते हैं । वह अकेला अन्न भक्षण करता हुआ, अन्न को नाश करता है और अन्न उसका नाश करता है । वह अन्न को नष्ट कर, स्वयं भी मारा जाता है । जो ब्रह्मज्ञानी इस समस्त प्रपञ्च रूपी अन्न को अपने में लय करता है और पुनः उसे उत्पन्न करता है, उसे उस भोजन से कुछ भी पाप नहीं लगता ।

अब अन्न शब्द का अर्थ वर्णन किया जाता है। जो मन से जाना जाता है, जो वाणी से बोला जाता है, जो नाक से सूँघा जाता है, वह हवन योग्य पदार्थ है। जब मन सहित छः इन्द्रियाँ अपने वश में कर ली जाती हैं, तब होम का अधिष्ठान मेरा कारण ब्रह्मरूप गुणवान अग्नि, जीवात्मा के भीतर क्रीडा करता है। योग मेरा यज्ञ है। ज्ञान अग्नि है। प्राण स्रोत्र है, अपान शस्त्र है और सर्वस्वत्याग ही दक्षिणा है। योगियों का कर्त्ता (अहङ्कार), अनुमन्ता (मन) और आत्मा (बुद्धि) ये तीनों ब्रह्म हो कर, क्रमशः होता, अध्वर्यु और उद्गाता होते हैं। सत्यवाक्य ही उनका शास्त्र है और कैवल्य दक्षिणा है। नारायणवित् पुरुष इस यज्ञ में ऋक् पढ़ते हैं और नारायण देव के उद्देश्य से श्रेयादि अन्न तथा समस्त विषयों को पशुरूप से प्रदान किया करते हैं। हे भीरु! इस यज्ञ में योगी लोग जिसके लिये सामगान करते हैं और दृष्टान्त स्वरूप से जिसका यश कीर्त्तन करते हैं, उस सर्वात्मा नारायणदेव को भी तुम जान लो।

छब्बीसवाँ अध्याय

नारायण देव

ब्राह्मण ने कहा—हे सुभगे! जो प्राणिमात्र के हृदय में अन्तर्यामी हो कर निवास करते हैं, वे नारायणदेव ही एक मात्र शास्ता हैं। उनको छोड़ और कोई शास्ता नहीं है। जैसे जल नीचे की ओर स्वभावतः जाता है, वैसे ही मैं उन नारायण देव के द्वारा जिस प्रकार प्रेरित और नियुक्त किया जाता हूँ; उसी प्रकार करता हूँ। जो जीवमात्र के हृदय में वास करते हैं—वे ही एकमात्र गुरु हैं। उनके अतिरिक्त और कोई गुरु है ही नहीं। मैं अब उन्हींके विषय में तुमसे कहता हूँ। उन्हीं परमगुरु से सब लोग शिक्षित हों। जो लोग लोकद्वेषी हैं, वे सर्प सदृश हैं। जो प्राणिमात्र के

हृदय में निवास करते हैं, वे नारायण देव ही एकमात्र बन्धु हैं। जिनको छोड़ कोई बन्धु नहीं है, उन्हींके विषय में मैं अब तुमसे कहता हूँ।

हे पार्थ! सप्तर्षि आदि सब लोग उन्हींसे शिक्षित हो, अपनी अपनी कर्मभूमि में प्रकट हुआ करते हैं। जो समस्त प्राणियों के हृदय कमल में निवास करते हैं, वे नारायण देव ही एकमात्र श्रोता हैं। उनको छोड़ और कोई श्रोता नहीं है। मैं उन्हींके विषय में तुमसे कहता हूँ। इन्द्र ने उन्हीं परम गुरुदेव के निकट रह कर, अमरत्व प्राप्त किया है। जो सब प्राणियों के भीतर रहते हैं, वे नारायण ही एकमात्र द्रष्टा हैं। उनको छोड़ और कोई द्रष्टा नहीं है। मैं उन्हींके विषय में तुमसे कहता हूँ। उन्हीं गुरुदेव के द्वारा सब शिक्षित हों। इस संसार में दोषों से युक्त पुरुष सर्प तुल्य कहलाते हैं।

पन्नगों और देवर्षियों ने प्रजापति से जो कहा था, उसी संवाद वाले इस प्राचीन इतिहास को मैं कहता हूँ। एक बार देवता, ऋषि, नाग और असुर, प्रजापति के पास जा उनसे बोले—हे भगवन्! आप हमें ऐसा उपदेश दें, जिससे हमारा कल्याण हो।

प्रजापति ने उनसे कहा—"ओंकार" स्वरूप एकाक्षर ब्रह्म ही एकमात्र कल्याणकारी है। यह सुन, वे सब इधर उधर भाग खड़े हुए। ओंकारात्मक एकाक्षर ब्रह्म का यथार्थ अर्थ ग्रहण करने में असमर्थ हो, भागने वाले उन लोगों में से प्रथम सर्पों का मन काटने में प्रवृत्त हुआ। क्योंकि ओंकार का उच्चारण करते समय उनका मुख खुलता और बंद होता था। अतः अपने स्वभावज मुखोन्मीलन साध्य सर्पों ने दंशन ही को कल्याणकारी समझा। तदनन्तर दानवों ने ओंकार के उच्चारण में ओंठो को हिलते देख, दम्भ ही को कल्याणकारी समझ दम्भ को धारण किया। देवताओं ने ओंकार का अर्थ, प्रार्थित वस्तु का स्वीकार करना जान दान को कल्याणकारी समझ, दानधर्म का अवलम्ब न किया। महर्षियों ने ओंकार के, उच्चारण में ओष्ठ आदि का उपसंहार देखकर, सब प्रवृत्तियों के उपसंहार के लिये दम को

अपने लिये कल्याणकारी जान, दम ही को अवलम्बन किया। देवता, ऋषि, दानव, सर्प रूप एकमात्र गुरु प्राप्त कर और एक अक्षर से उपदिष्ट हो, भिन्न भिन्न व्यवसायों में प्रवृत्त हुए। शिष्य लोग इस गुरु से जो पूँछते हैं—उस का उत्तर वे उससे पाते हैं। यह गुरु उन्हें इनके पूँछे हुए विषय को भली भाँति समझा कर उनके मन में बिठा देते हैं। इसी लिये इनके अतिरिक्त अन्य गुरु कोई नहीं है। अतएव इन्हीं गुरु की आज्ञा से सब कर्म प्रवृत्त होते तथा सम्पादित होते हैं। यह गुरुदेव ही बोद्धा, श्रोता और द्रष्टा है। यही सब के हृदय में निवास किया करते हैं। इस संसार में मनुष्य पापपथ से चलने पर पापाचारी, शुभमार्ग पर चलने से शुभाचारी, इन्द्रियसुख में रत हो कर, कामपथ से विचरने पर कामाचारी और इन्द्रिय निग्रहपूर्वक ब्रह्म-पथ पर चलने से ब्रह्मचारी होता है। इस लोक में जो लोग, व्रतादि कर्मों को परित्याग कर के केवल ब्रह्मपथ पर विचरते हैं, वे ब्रह्म को प्राप्त होते हैं। उनके लिये ब्रह्म ही समिधा है, ब्रह्म ही अग्नि है, ब्रह्म ही जल है और ब्रह्म ही गुरु हैं। क्योंकि वह तो ब्रह्म ही में समाधि करने वाले हैं। ब्रह्मज्ञा-नियों ने ऐसे सूक्ष्म ज्ञान को ब्रह्मचर्य जाना है। वे तत्त्वदर्शी गुरु के द्वारा इस प्रकार शिक्षित हो कर, ब्रह्मज्ञान पा कर, ब्रह्म को पाते हैं।

सत्ताइसवाँ अध्याय

ब्रह्म रूपी महावन का वर्णन

ब्राह्मण ने कहा—जिस संसार मार्ग में सङ्कल्प ही डाँस और मच्छर हैं, सुख और दुःख सर्दी गर्मी हैं, अपराध और भूल अन्धकार हैं, लोभ और रोग सर्प और बिच्छु हैं, विषयवासना जिसमें एक मात्र नाशक है, जिसमें काम क्रोध प्रतिबन्धक हैं; मैंने उस संसारमार्ग को लाँघ कर, महादुर्गम ब्रह्म रूपी महावन में प्रवेश किया है।

ब्राह्मणी बोली—हे महाप्राज्ञ ! वह वन है कहाँ ? उस वन के वृक्षों, नदियों, पहाड़ों और रास्तों को तो बतलाइये ।

ब्राह्मण बोला—वह वन स्वतन्त्र अथवा परतन्त्र रूप से कहीं भी नहीं है । उससे बढ़ कर अन्य कोई सुख भी नहीं है । उससे बढ़ कर दुःख से छुड़ाने वाला कोई कर्म भी नहीं है । उससे सूक्ष्म, महत् या सूक्ष्मातिसूक्ष्म कोई पदार्थ नहीं है । उसके समान कोई सुख नहीं है । द्विजगण उस वन में घुस कर, न तो शोकार्त्त होते, न नष्ट होते और न भयभीत होते हैं । उस वन के भीतर महत्, अहङ्कार और पञ्चतन्मात्रा सात बड़े बड़े वृक्ष हैं । यागादि सात अपूर्व फल हैं । यज्ञकर्म के देवता सात अतिथि हैं । यागक्रिया का कर्त्ता सप्ताश्रम है । रागादि सात समाधियाँ और धर्मान्तर परिग्रह लक्षणादि सप्त दीक्षाएँ हैं । वे अरण्य रूप से विद्यमान हैं । उस वन में जीव तथा वृत्तिभेद से विविध प्रकार के मल रूपी प्रीति आदि वृक्ष, शब्दादि पञ्च रूपों से युक्त सुन्दर फूलों तथा शब्दादि अनुभव रूपी पाँच प्रकार के फलों को उत्पन्न किया करते हैं । मन एवं बुद्धि रूपी दो बड़े पेड़ उन अनेक फूलों फलों को, जिनका स्वरूप प्रत्यक्ष नहीं है और जो ज्ञानियों के मनोरथ मात्र हैं, उत्पन्न किया करते हैं । इस महावन में एक आत्मा ही अग्नि है । मन और बुद्धि स्रुक, स्रुव के स्थानापन्न हैं । पाँचों इन्द्रियाँ समिधाएँ हैं । इन्हींके होम करने से मोक्ष प्रकट होती है । मुक्त पुरुषों के उपदेश, दीक्षा गुणभूत अपूर्व रूप वाले फल उत्पन्न करते हैं और देवता रूपी अतिथि इन फलों को खाते हैं । इन्द्रियों के अधिष्ठातृ देवता रूप महर्षि वृन्द, उस वन में आतिथ्य ग्रहण किया करते हैं और उन लोगों के आतिथ्य से सत्कार प्राप्त किया करते हैं । तब वह अद्वैत रूप प्रतिमा समान हुआ करता है ।

जो साधु लोग प्रज्ञा रूपी वृक्ष, मोक्ष रूपी फल, शान्ति रूपी छाया, ज्ञान रूपी आश्रय, तृप्त रूपी जल और अन्तः क्षेत्र रूपी सूर्य से युक्त वन को जान कर, प्रज्ञा रूपी वृक्ष पर चढ़ता है; उसे भय नहीं लगता । क्योंकि

उस प्रज्ञा रूपी वृक्ष का, ऊपर नीचे, अगल बगल कहीं भी अन्त तो है ही नहीं। इस वृक्ष पर मन, बुद्धि और अन्य इन्द्रियों की वृत्ति रूपिणी सात स्त्रियाँ रहती हैं। वे सङ्कल्पसिद्ध हैं। ज्ञानी को अपना आज्ञानुवर्ती न बना सकने के कारण वे लज्जित रहती हैं। किन्तु वे प्रजा समूह के लिये अनित्य की अपेक्षा उत्कृष्ट नित्य की तरह, विषय-ज्ञान-जनित आनन्द रूप अत्यन्त उत्कृष्ट समस्त रसों का उपभोग किया करती हैं। यहाँ पर सत्य और मिथ्या का जो अन्तर है वही ज्ञानी और अज्ञानी का अन्तर कहा जाता है। उस यज्ञ करने वाले में वषट् आदिक इन्द्रिय रूप सप्त ऋषि लय होते हैं और फिर उसीसे प्रकट होते हैं। यश, तेज, ऐश्वर्य, विजय, सिद्धि, कान्ति, ज्ञान—ये सातों नक्षत्र क्षेत्रज्ञसूर्य के सहवर्ती और आज्ञावर्ती है। उस यती में पहाड़, सरिता तथा वे नदियाँ भी जो ब्रह्म से प्रकट जल को बहाया करती हैं; सूक्ष्म रूप से नियत हैं। जिसमें योग रूपी यज्ञ का विस्तार है, उस अत्यन्त अज्ञान हृदयाकाश में नदियों का सङ्गम है। उस मार्ग से आत्म-तृप्त योगी, ब्रह्मा जी के निकट जाता है। सुव्रत, लोकविजयी, तप द्वारा पापों को भस्म करने वाला ज्ञानी, आत्मा को आत्मा में प्रवेश कर, ब्रह्म की उपासना किया करता है। विद्यारण्यवित् ब्रह्मज्ञानी पुरुष धीर पुरुष की तरह बाह्येन्द्रियों को जीतने ही की प्रशंसा करते हैं। क्योंकि वे स्वयं उसके आकाँक्षी बन कर, भिन्न बुद्धि चिदात्मा की तरह ऐश्वर्यशाली होते हैं। ब्राह्मण लोग ऐसे वन को पुण्य रूप समझते हैं और क्षेत्रज्ञ द्वारा शिक्षित हो, उस स्थान में निवास किया करते हैं।

अट्ठाइसवाँ अध्याय

अधर्म और मति का संवाद युक्त इतिहास

ब्राह्मण ने कहा—मैं न तो गन्ध को सूँघता हूँ, न रस को चखता हूँ, न रूप को देखता हूँ, न मुझे गर्मी या सर्दी स्पर्श करती है, न मुझे किसी

प्रकार का शब्द सुन पड़ता है और न मेरे मन में किसी प्रकार के सङ्कल्प विकल्प ही उठा करते हैं। जिस प्रकार प्राण और अपान वायु, इच्छा और अनिच्छा के वशवर्त्ती न रह कर, जीवों के शरीरों में स्वभावतः प्रकट हो, अपने अपने कार्य (अन्न पाकादि) किया करते हैं, वैसे ही मेरी इष्ट वस्तु में इच्छा और अनिष्ट वस्तु में अनिच्छा न रहने पर भी, बुद्धि अपने आप, इष्ट वस्तु में इच्छा और अनिष्ट वस्तु में अनिच्छा किया करती है। जो योगी जन हैं, वे वाह्य से भिन्न, स्वप्नजनित वासनामय घ्राणादि विषयों में नित्य अनुगत विषयों अर्थात् घ्राणादि विषयों से अतिरिक्त, जिस भूतात्मा को निज शरीर में देखते रहते हैं; मेरे उसी भूतात्मा में निवास करने से काम, क्रोध, जरा और मृत्यु किसी प्रकार भी आक्रमण नहीं कर सकते। अतएव मैं सब से अलग रहता हूँ। मैं न तो किसी काम्य वस्तु में राग रखता और न दूषित वस्तु से विराग। मैं तो कमलपत्र पर पड़े हुए निर्लिप्त जलविन्दु की तरह काम और द्वेष से स्वभावतः निर्लिप्त रहता हूँ। नित्य परिदृश्यमान निर्लिप्त की समस्त कामनाएँ नित्य हैं। जिस प्रकार सूर्य की किरण आकाश में लिप्त नहीं होतीं, उसी प्रकार पुरुष के किये हुए कर्मों के भोग उस पुरुष में संसक्त नहीं हो सकते।

हे यशस्विन्! परम पुरुष परमात्मा के विषय में, पण्डित जन, अध्वर्यु और यति के संवाद से युक्त जिस पुरातन इतिहास का वर्णन करते हैं, उसे तुम मन को एकाग्र कर, सुनो।

यज्ञमण्डप में बैठे हुए किसी यति ने अध्वर्यु को यज्ञीय पशु का प्रोक्षण करते देख, उसकी निन्दा की और कहा—आप ऐसा हिंसाकार्य करते हैं। यह वचन सुन अध्वर्यु उससे बोला—जो जीव यज्ञ में मारे जाते हैं, उनका कल्याण होता है। अतः यज्ञ में की गयी पशुहिंसा, हिंसा नहीं है। यज्ञपशु बकरे की यज्ञ में हिंसा होने पर, उसका पार्थिव भाग पृथिवी में मिल जायगा, उसके शरीर का जलअंश जल में चला जायगा, नेत्र का तेजस अंश सूर्य में, शब्द भाग दिशाओं में

और प्राणवायु आकाश में प्रवृष्ट होगा। अतः इस हिंसा से मुझे कुछ दोष नहीं लगेगा।

यति ने कहा—यदि यज्ञ-कर्म में यज्ञीय पशु को मार डालने से मारे गये पशु का तुम कल्याण समझते हो, तब तो वह यज्ञ उस बलिपशु के निमित्त ही करते हो—उससे यज्ञकर्त्ता का क्या प्रयोजन निकल सकता है? यह यज्ञीय बलिपशु बकरा आपको पिता, भ्राता तथा सखा समझे और आप भी इस पराधीन बकरे को ऊर्ध्वगामी बनाने का प्रयत्न करिये। जब जन्तु गण आपको पित्रादि रूप से बोध करेंगे; तभी आप उनकी रक्षा करने में समर्थ होंगे और उनका मत सुन कर, उस पर विचार कर सकेंगे। परन्तु मुझे तो यह जान पड़ता है कि, यह बकरा यज्ञ में मारे जाने के कारण इस का प्राण छागयोनि में प्रविष्ट होगा और इस का अचेतन शरीर मात्र रह जायगा। जो लोग चैतन्यहीन, काष्ठ जैसे शरीर से हिंसामय यज्ञ किया करते हैं, पशु ही उनके यज्ञीय काष्ठ हुआ करते हैं। वृद्धों की ऐसी आज्ञा है कि, सब धर्मों में अहिंसा धर्म ही सर्वोत्तम है। किन्तु हम लोग ऐसा विवेचन किया करते हैं कि, कर्त्तव्य कर्म हिंसा युक्त हो, तो भी वह कर्त्तव्य है। तदनन्तर यदि कहना पड़े; तो भी मैं कदापि हिंसा करने की सम्मति नहीं दे सकता। क्योंकि हमारा धर्म अहिंसात्मक है। यदि मैं हिंसा करने को कहूँ, तो आप तरह तरह के दूषित कर्म करने लगेंगे। समस्त प्राणियों की अहिंसा ही मुझे इष्ट है। क्योंकि इसका फल प्रत्यक्ष है। अप्रत्यक्ष फल वाले कर्म का अनुष्ठान मैं नहीं करना चाहता हूँ।

अध्वर्यु ने कहा—हे द्विज! आप भूमि के गन्धगुण को खाते, जल के रसगुण को पीते, अग्नि के रूपगुण को देखते, वायु के स्पर्श गुण को स्पर्श करते और आकाश के शब्दगुण को सुनते हैं तथा मन द्वारा मनन करते हैं। साथ ही आप यह भी मानते हैं कि, ये सब प्राणों की प्रत्यक्षता है। अतः आप हिंसात्यागी हो कर भी, हिंसात्मक कर्म किया

करते हैं। क्योंकि बिना हिंसा के चेष्टा नहीं हो सकती। अतएव आप इसे अहिंसा किस प्रकार समझते हैं?

यती ने कहा—आत्मा की दो अवस्थाएँ हैं—क्षर और अक्षर। इन दो में सद्भाव अक्षर और स्वभाव क्षर कहलाता है। मायायुक्त प्राण, जिह्वा, मन और सत्त्व—ये सद्भाव कहलाते हैं। आत्मा इन समस्त सद्भावों से विमुक्त होने पर, निर्द्वन्द्व और आशावर्जित है। जो मनुष्य भूतों में समभाव रखता है, निर्मम और जितात्मा रहता तथा सब प्रकार से मुक्त है, वह कहीं भी भयभीत नहीं होता।

अध्वर्यु ने कहा—हे द्विजवर! आपका मत सुन कर, मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि, इस संसार में साधुओं के साथ रहना चाहिये। भगवन्! आपका सिद्धान्त सुन, मेरी बुद्धि ठिकाने आयी है। मैं भागवत बुद्धि से युक्त हो कहता हूँ कि, वेदोक्त कर्म करने वाले मुझको कोई दोष नहीं लग सकता।

ब्राह्मण ने कहा—तदनन्तर वह यती चुप हो गया और अध्वर्यु मोह रहित हो, यज्ञकर्म में प्रवृत्त हुआ। ब्रह्मज्ञानी पुरुष इस प्रकार सूक्ष्मातिसूक्ष्म सिद्धान्तों को जान कर, अर्थदर्शी क्षेत्रज्ञ के साथ निवास करते हैं।

उनतीसवाँ अध्याय

कार्त्तवीर्य अर्जुन और समुद्र का संवाद

ब्राह्मण ने कहा—हे सुन्दरी! इस विषय में पण्डित लोग एक प्राचीन इतिहास कहते हैं। उस इतिहास में कार्त्तवीर्य अर्जुन के साथ समुद्र के संवाद का वर्णन है। प्रसिद्ध राजा कार्त्तवीर्यार्जुन ने अपने धनुष के बल आसमुद्रान्त भूमण्डल को अपने अधीन किया था।

सुनते हैं, एक दिन समुद्र तट पर घूमते समय कार्त्तवीर्यार्जुन ने सौ बाण छोड़ समुद्र को पाट दिया। तब समुद्र ने हाथ जोड़ कर, कार्त्तवीर्या-

र्जुन से कहा—हे वीर! आप मेरे ऊपर बाण न छोड़ें। यदि आप मुझसे कोई कार्य करवाना चाहते हों तो वह कार्य बतलावें। हे राजेन्द्र! आपके बाणों से मेरे आश्रित रहने वाले जलजन्तुओं का संहार होता है। हे राजन्! आप उन्हें प्राणदान दें।

कार्त्तवीर्यार्जुन ने कहा—यदि युद्ध में मेरी टक्कर का कोई अन्य पुरुष हो, तो मुझे उसका नाम पता आदि बतलाइये।

समुद्र ने कहा—राजन्! यदि आप महर्षि जमदग्नि को जानते हों, तो आप उनके पुत्र के पास जाँय। वे यथाविधि आपका आतिथ्य कर सकते हैं।

यह सुन और क्रोध में भरा हुआ कार्त्तवीर्यार्जुन, जमदग्नि जी के आश्रम में जा, परशुराम के निकट उपस्थित हुआ। उसने ऐसे कार्य किये, जो बान्धवों सहित परशुराम को अप्रिय जान पड़े। इससे परशुराम भी कुपित हो गये। उस समय शत्रु सैन्य को भस्म करता हुआ, अमित-पराक्रमी परशुराम का क्रोधाग्नि प्रज्वलित हो उठा। परशुराम ने अपना फरसा उठा, अनेक शाखा युक्त वृक्ष की तरह कार्त्तवीर्यार्जुन को काट डाला। तब कार्त्तवीर्यार्जुन के भाई बन्धु उसको मरा हुआ देख, खड्ग शक्ति आदि अस्त्र शस्त्र ले, भृगुनन्दन परशुराम की ओर दौड़े। उधर परशुराम ने रथ पर बैठ और धनुष उठा, राजा की सेना को व्यथित कर डाला। जमदग्नि-नन्दन परशुराम की मार से घबड़ा, कितने ही क्षत्रिय, सिंहार्दित मृगों की तरह भाग कर, गिरिकन्दराओं में जा छिपे और परशुराम जी के भय के मारे निज वर्णोचित कर्मों का अनुष्ठान न कर पाने के कारण, उनके सन्तान वेदज्ञान से शून्य हो गये और उन्हें शूद्रत्व प्राप्त हुआ। इसी प्रकार, क्षात्रधर्मावलम्बी शबर, द्रविड़, आभीर और पुण्ड्रदेशवासी क्षत्रिय भी धर्मानुष्ठान न कर सकने के कारण शूद्रत्व को प्राप्त हो गये।

तदनन्तर उन मारे गये क्षत्रियों की विधवा स्त्रियों से ब्राह्मणों के वीर्य से जो सन्तान उत्पन्न हुए—परशुराम उनका भी वध करने लगे। परशुराम

ने इक्कीस बार ऐसा युद्ध रूपी यज्ञ किया। तब मधुर आकाशवाणी हुई, जिसे सब लोगों ने सुना। वह देववाणी यह थी--हे राम ! तुम इस प्रकार बारंबार क्षत्रबन्धुओं का संहार करने में कौनसी भलाई समझते हो? हे तात ! तुम अब इस निष्ठुर कार्य को बंद कर दो। हे सुन्दरी ! ऋचीक आदि पूर्वजों ने भी परशुराम को ऐसा निठुर काम करने से रोका। किन्तु अपने पिता के वध से कुपित परशुराम शान्त न हुए। उन्होंने उन ऋषियों से कहा—हे पितामहो ! मेरे इस कार्य में आपको रोक टोक करना उचित नहीं।

इस पर पितरों ने उनसे कहा—हे विजयप्रवर ! वे समस्त क्षत्रबन्धु मार डालने योग्य नहीं हैं। फिर तुम ब्राह्मण हो। ब्राह्मण हो कर क्षत्रियों का वध करना, तुम्हें नहीं सोहता।

तीसवाँ अध्याय

राजर्षि अलर्क का उपाख्यान

पितृगण बोले—हे द्विजोत्तम ! अहिंसाव्रत की उत्कृष्टता के सम्बन्ध में पण्डितजन जो पुरातन उपाख्यान कहते हैं, उसे तुम सुनो और सुन कर तदनुसार कार्य करो।

पूर्वकाल में महातपस्वी, धर्मज्ञ, सत्यवादी और दृढ़व्रत अलर्क नामक एक राजर्षि हो गये हैं। उन्होंने अपने धनुष बाण के बल, समुद्र सहित भूमण्डल को विजय करते हुए, बड़ा भारी दुष्कृत कर्म कर के, अपना मन सूक्ष्म विचार में लगाया। वे अन्य उत्तम महत्कर्मों का करना छोड़, एक वृक्ष के नीचे जा बैठे और सूक्ष्म परब्रह्म के विषय में विचार करने लगे। अलर्क ने सोच विचार कर कहा—मेरा मन बहुत बलवान् हो गया है। अतः मन को जीतने पर ही मुझे चिरस्थायी विजय प्राप्त होगा। क्योंकि इस समय तो मैं इन्द्रिय रूपी शत्रुओं द्वारा चारों ओर से घिर गया हूँ। मैं इन वाह्य

इन्द्रिय रूपी शत्रुओं पर हठयोग रूपी बाण चलाऊँगा। क्योंकि मन की चञ्चलता ही के कारण ये कर्म मनुष्य को गिराने की इच्छा किया करते हैं। अतः मैं हठयोग रूपी बाण मन ही पर छोड़ूँगा।

मन ने कहा—अलर्क! तुम्हारे ये बाण मेरा बाल भी बाँका नहीं कर सकते। ये तो तुम्हारे मर्मों ही को घायल करेंगे। उस समय मर्मस्थलों के आहत होने पर तुम स्वयं दुःखी होगे। अतः तुम उस बाण को खोजो, जिससे तुम मुझे घायल कर सको।

तब अलर्क ने सोच विचार कर कहा—नासिका अनेक प्रकार की गन्ध सूँघ कर, सदा सुगन्धि सूँघने ही की अभिलाषा किया करती है। अतः मैं उन पैने बाणों को नासिका के ऊपर छोड़ूँगा।

नासिका ने कहा—अलर्क! ये बाण मेरा कुछ भी न कर सकेंगे। प्रत्युत वे तुम्हें ही घायल करेंगे। तब तुम मर्मस्थलों में आघात लगने से मृत्यु के मुख में जा पड़ोगे। अतः उस बाण को खोजो, जो मुझे घायल कर सके।

यह सुन अलर्क ने क्षण भर सोच विचार कर कहा - यह जिह्वा अच्छे अच्छे स्वादिष्ट पदार्थों को खा कर सदा वैसे ही पदार्थ खाने को लालायित रहा करती है। अतः मैं इस जिह्वा पर ही पैने बाण छोड़ूँगा।

जिह्वा ने कहा—अलर्क! तुम्हारे बाण मुझे छू भी नहीं पावेंगे, वरन् तुम्हारे ही मर्मों को घायल कर तुम्हें नष्ट कर डालेंगे। अतः उस बाण को खोजो, जो मुझे घायल कर सके।

अलर्क यह सुन, एक क्षण तक सोच विचार कर बोले—यह त्वचा विविध सुखप्रद स्पर्शों को स्पर्श करते करते सदा सुखदायी स्पर्शों के लिये लालायित रहती है, अतः मैं इसे कङ्कपत्रयुक्त पैने बाणों से नष्ट कर डालूँगा।

त्वचा ने कहा - हे अलर्क! तुम्हारे वे बाण मेरा कुछ भी नहीं कर सकते। वे तो तुम्हारे ही मर्मस्थलों को छेद छेद कर, तुम्हें नष्ट कर डालेंगे। अतः तुम उन बाणों को ढूँढ़ो, जो मुझे नष्ट कर सकें।

यह सुन क्षण भर सोच विचार कर अलर्क कहने लगे—ये कान विविध मनोहर शब्दों को सुनते सुनते, उन्हें सुनने को सदा लालायित रहा करते हैं—अतः मैं ये पैने बाण कान पर चलाऊँगा।

कानों ने कहा—हे अलर्क! तुम्हारे ये बाण हमारा कुछ भी बिगाड़ नहीं कर सकते; प्रत्युत वे तुम्हारे ही मर्मस्थलों को घायल कर, तुम्हें मार डालेंगे। अतः इनको छोड़ अन्य वे बाण ढूढ़ों जो हमें नष्ट कर सकें।

यह सुन क्षण भर सोच विचार कर, अलर्क ने कहा—ये दोनों नेत्र, विविध प्रकार के सुस्वरूपों को देख, सुस्वरूप देखने को सदा लालायित रहते हैं। अतः मैं इन पैनाये हुए तीरों से नेत्रों को नष्ट कर डालूँगा।

नेत्र बोले—अलर्क! तुम अपने इन बाणों से हमें कदापि नष्ट न कर पावोगे। बल्कि ये तो तुम्हारे ही मर्मों को वेध कर, तुम्हें ही नष्ट करेंगे। अतः इनके अतिरिक्त वे बाण खोजो जो हमें विनष्ट कर सकें।

तदनन्तर क्षण भर सोच विचार कर अलर्क कहने लगे—यह बुद्धि, प्रज्ञा के सहारे विविध प्रकार की निष्ठाएँ निर्धारित किया करती है—अतः मैं पैने बाण बुद्धि पर चलाऊँगा।

बुद्धि ने कहा—हे अलर्क! तुम मुझे इन बाणों से कदापि नहीं नष्ट कर सकते, बल्कि स्वयं ही इनसे विनष्ट हो जाओगे। यदि तुम मुझे विनष्ट करना ही चाहते हो तो तुम उनको छोड़ और बाण तलाश करो।

ब्राह्मण बोला—तदनन्तर राजा अलर्क घोर तप करके भी पूर्वोक्त सातों इन्द्रियों को बाण चला घायल न कर सके। हे द्विजसत्तम! तदनन्तर प्राज्ञ-प्रवर अलर्क चित्त को सावधान कर, बहुत समय तक सोच विचार कर के भी, जब कृतकार्य न हुए तब उन्होंने निश्चलभाव से मन को एकाग्र कर और योगाभ्यास द्वारा, एक ही बाण से उन समस्त इन्द्रियों को विनष्ट कर डाला। उन्होंने अपना मन परमात्मा में लगा—परमसिद्धि प्राप्त की।

तब अलर्क ने विस्मित हो कर यह गाथा गायी—ओहो! यह कैसा कष्ट है। मैं पहले भोग की तृष्णा में फँस, राज्यादि भोगों की उपासना ही

में लगा रहा। किन्तु अब मैंने जाना कि, योग से बढ़ कर, सुखदायी भी और कुछ नहीं है।

हे परशुराम! अतः तुम इस उपाख्यान का रहस्य विशेष रूप से जान कर, क्षत्रिय वध रूपी युद्ध से निवृत्त हो जाओ और तप करो; जिससे तुम्हारा कल्याण हो। यह सुन परशुराम ने कठोर तप किया और तप द्वारा दुष्प्राप्य सिद्धि प्राप्त की।

इकतीसवाँ अध्याय

रजोगुणादि का वर्णन

ब्राह्मण बोला—सतोगुण से उत्पन्न प्रहर्ष, प्रीति और आनन्द संसार में ये तीनों ही शत्रुरूपी माने गये हैं। ये वृत्तिभेद से नौ प्रकार के हैं। तृष्णा, क्रोध, संरम्भ—ये तीन रजोगुण से, श्रम, तन्द्रा और मोह—ये तीन तमोगुण से उत्पन्न होते हैं। धृतिमान्, जितेन्द्रिय, प्रशान्तचित्त पुरुष, इन सब को छेदन कर के तथा तन्द्रा त्याग इनको तीरों से छेदन करे। पूर्वकाल में प्रशान्त चित्त राजा अम्बरीष ने, जो गाथा गायी थी; पुराण जानने वाले पण्डित इस प्रसङ्ग में वही गाथा कहा करते हैं। शम गुण के अभाव में और रजो गुण के पूर्णरीत्या उत्पन्न होने पर, महायशस्वी राजा अम्बरीष ने सहसा राज्यशासन का भार ग्रहण किया। अनन्तर आत्मा के रजोगुण को निग्रह कर के शम गुण की सम्भावना कर के और महती श्रीलाभ कर, वे यह गाथा गाने लगे। मैंने शत्रुओं को जीता है और दोषों को विनष्ट किया है; किन्तु एक बड़ा दोष है, जो अवश्य वध्य है, उसे मैं नष्ट नहीं कर सका। इसीसे इस जन्म में मैं वैतृष्ण्य लाभ नहीं कर पाया। मैं तृष्णार्त्त हो कर, मूर्ख की भाँति नीच कर्मों की ओर दौड़ रहा हूँ। मनुष्य इस लोक में इसी के द्वारा अकार्यों की सेवा किया करता है। अतः इसे नष्ट करना चाहिये।

लोभ से तृष्णा उत्पन्न होती है और तृष्णा से चिन्ता की उत्पत्ति होती है। तृष्णा से घिरे हुए मनुष्य में राजस गुण प्रचुर परिमाण में बढ़ता है। जब राजस गुण प्राप्त नहीं होता, तब तमोगुण बढ़ता है। देहबन्धन के कारण, इस जीव को बार बार जन्मग्रहण करना पड़ता है और वह कर्म की आकांक्षा किया करता है। फिर जीवन नष्ट होने पर भिन्न तथा विच्छिन्न शरीर हो कर, वह जन्मता और मरता रहता है। अतः भली भाँति पर्यालोचन कर के, शरीर में लोभ को स्थान न दे कर, राज्य प्राप्ति की इच्छा करे। इस लोक में आत्मा ही राजा है और लोभ का रोकना ही राज्य है। इससे उत्तम अन्य राज्य नहीं है। लोभ को निग्रह करने वाले राजा अम्बरीष द्वारा, अधिराज्य के उपलक्ष्य में, यह गाथा गायी गयी थी।

बत्तीसवाँ अध्याय

राजा जनक और एक ब्राह्मण का उपाख्यान

ब्राह्मण ने कहा—हे भवानी! लोभ के निग्रह करने के विषय में एक और उपाख्यान है। इस उपाख्यान में राजा जनक और एक ब्राह्मण का कथोपकथन है। राजा जनक ने एक अपराधी ब्राह्मण को देशनिकाले का दण्ड दिया और कहा तुम मेरे राज्य में वास न करने पावोगे।

ब्राह्मण, राजा का यह वचन सुन बोला—महाराज! आप मुझसे वही विषय कहिये, जो आपके वशवर्त्ती हो। राजन्! मैं चाहता हूँ कि, आपके आदेशानुसार मैं, अन्य राज्य में वास करूँ और आपके आदेश का पालन करूँ।

उस यशस्वी ब्राह्मण का यह वचन सुन, राजा बार बार गर्म उसाँसे लेने लगा; किन्तु बोला कुछ भी नहीं। वे अमित तेजस्वी राजा जनक बैठे बैठे राहुग्रस्त सूर्य की तरह चिन्ता में डूबे हुए मोहग्रस्त हो गये। उनकी

यह दशा कुछ ही देर रही। पीछे वे सम्हले और मोहरहित हो उठे और ब्राह्मण से बोले।

राजा जनक ने कहा—हे द्विजसत्तम! यह पैतृक राज्य और सारे जनपद मेरे वशीभूत होने पर भी मुझे यह विषय प्राप्त न हुआ, तब मैंने इसे मिथिला में खोजा। जब मिथिला में भी मुझे यह न मिला, तब मैंने प्रजा जनों में उसकी खोज की। किन्तु जब वहाँ भी मुझे यह न मिला, तब मैं मुग्ध हो गया। तदनन्तर मोह दूर होने पर, मुझे ऐसा जान पड़ा कि, कोई विषय मेरा नहीं है और समस्त विषय मेरे ही हैं। आत्मा मेरा नहीं है, किन्तु सारी पृथिवी मेरी है। ये समस्त विषय जिस प्रकार मेरे हैं, वैसे ही दूसरों के भी हैं। हे द्विजवर! आप जहाँ चाहे, वहाँ वास करें और जो चाहे सो भोग करें।

ब्राह्मण ने कहा—महाराज! इस पैतृक राज्य और जनपदों के अधिकार में रहते हुए भी क्या समझ कर आपने उनकी ममता त्यागी है? आपने क्या समझ कर ऐसी विवेचना की है कि, समस्त विषय मेरे नहीं हैं?

राजा जनक बोले—इस संसार में आढ्यता और दारिद्र्य आदि सभी अवस्थाएँ नाशवान् हैं। इसीसे मुझे किसी भी कर्म में ममता नहीं है और ममता के अभाव ही से मैं यह समझता हूँ कि, यह वस्तु मेरी नहीं है। यह राज्य और यह धन किसी का नहीं है। इस वेदवाक्य के अनुसार मैं इसे अपना नहीं समझता। यही समझ कर मैंने ममता का परित्याग किया है। किन्तु जिस बुद्धि के सहारे मैं इस समस्त राज्य को अपना कहा करता हूँ—सो भी सुनो। मैं अपने लिये निज नासिका में गयी हुई सुगन्धि को भी नहीं सूँघता। इसीसे मेरी जीती हुई पृथिवी सदा मेरे अधीन रहती है। अर्थात् मैं उसके अधीन नहीं हूँ। मैं मुख में वर्त्तमान रसों को भी अपने लिये नहीं चाहता। इसीसे मेरे द्वारा विजय किया हुआ जल मेरे अधीन है। मैं रूप और नेत्र की ज्योति को अपने लिये नहीं चाहता। इसीसे मेरे द्वारा

जीती गयी ज्योति सदा मेरे अधीन रहती है। स्पर्श करने वाली त्वगिन्द्रिय को मैं अपने लिये नहीं चाहता—अतः मेरे द्वारा निर्जित वायु सदा मेरे अधीन रहता है। मैं श्रोत्र इन्द्रिय में वर्त्तमान शब्दादिकों को अपने लिये नहीं चाहता, इसीसे मेरे निर्जित किये हुए शब्द मेरे अधीन रहते हैं। मैं मन में उठे हुए सङ्कल्प को अपने लिये नहीं चाहता—अतः निर्जित मन, सदा मेरे अधीन रहता है। मैं समस्त द्रव्यों का संग्रह देवताओं, पितरों, अतिथियों तथा अन्य समस्त प्राणियों के लिये किया करता हूँ।

यह सुन उस ब्राह्मण ने हँस कर राजा जनक से कहा—मैं साक्षात् धर्म हूँ। मैं तुम्हारी परीक्षा लेने के लिये आया था? एक मात्र तुम्हीं इस चक्र अर्थात् ममता से रहित ज्ञान रूपी प्रवृत्ति का अस्तित्व बनाये रखने वाले हो। यह ज्ञान ब्रह्म में लय होने का कारण न रखने वाली सीमा के अन्त पर पहुँचाने वाला है। इस ज्ञान रूपी चक्र की नेमि सतोगुण है।

तेतीसवाँ अध्याय

ब्राह्मण गीता

ब्राह्मण ने कहा—हे भीरु! तुम अपनी बुद्धि से मुझे जैसा निन्द्य समझे बैठी हो—मैं वैसा नहीं हूँ। मैं वेदपाठी हूँ, मुक्त हूँ, और वनचारी हूँ। हे सुन्दरी! तुम मुझे जैसा देखती हो, मैं वैसा नहीं हूँ। इस ब्रह्माण्ड में तुम्हें जो कुछ देख पड़ता है, उन सब में, मैं व्यक्त हूँ। इस जगत् में जो स्थावर जङ्गम जीव हैं; उन सब का लय करने वाला मैं वैसा ही हूँ, जैसे काठ-को लय करने वाला अग्नि। सारी पृथिवी और स्वर्ग का जैसा राज्य है—वह इस बुद्धि द्वारा विदित ही है। किन्तु मेरा राज्य धन तो बुद्धि ही है। ब्राह्मणों के लिये ज्ञान ही एकमात्र पथ है। ब्राह्मणों के लिये ज्ञान ही एक मात्र मार्ग है। ब्रह्मवित ब्राह्मण लोग उसी मार्ग से गृहस्थ, वनवास, ब्रह्मचर्य और संन्यासाश्रमों में गमन किया करते हैं। वे लोग दृढ़ चिन्हों को धारण

कर, एक मात्र बुद्धि की उपासना किया करते हैं। अनेक चिन्हों तथा अनेक आश्रम वालों की बुद्धि, समगुणावलम्बिनी होने के कारण—एक ही समुद्र में गिरने वाली अनेक नदियों की तरह—वे सब लोग एक ही भाव को प्राप्त होते हैं। इस पथ की प्राप्ति का साधन बुद्धि है—शरीर नहीं। क्योंकि समस्त कर्मादि विषय अन्तवान् हैं और यह शरीर उन्हीं कर्मों के बन्धनों में बँधा हुआ है। हे सुभगे! इसी लिये तुम्हें परलोक का भय नहीं है। मेरे भाव में रत रहने से, तुम मेरा ही शरीर प्राप्त करोगी।

चौतीसवाँ अध्याय

ब्राह्मणी और ब्राह्मण की बातचीत

ब्राह्मणी ने कहा—इस विषय को अल्पात्मा और अकृतात्मा पुरुष नहीं जान सकता। मेरा मन संक्षिप्त और चञ्चल है। अतः जिस साधन से यह बुद्धि हो सकती है, आप मुझे वह बतलावें। किन्तु चाहे जिसके द्वारा यह बुद्धि क्यों न प्रवृत्त हो, मैं तो आप ही को उसका हेतु मानती हूँ।

ब्राह्मण ने कहा—हे ब्राह्मणी! तुम ब्रह्मनिष्ठावाली बुद्धि को नीचे का अरणी काष्ठ और ब्रह्मज्ञान रूपी गुरु को ऊपर का अरणी काष्ठ जानो। मनन निदिध्यासन और वेदान्ताध्ययन करने पर मथित होने से उन अरणियों से ज्ञानाग्नि की उत्पत्ति होती है।

ब्राह्मणी बोली—क्षेत्रज्ञ नामक यह ब्रह्मलिङ्ग, जिसके द्वारा जाना जाता है, उसका लक्षण क्या है?

ब्राह्मण बोला—ब्रह्म निर्गुण है और उसका कोई लिङ्ग नहीं है। इसी से इसका कारण भी नहीं मालुम पड़ता। जिसके द्वारा वह ग्रहीत होता या नहीं होता—मैं अब उसीका उपाय बतलाता हूँ। जिस प्रकार ऊपर उड़ने वाले भौंरों से सुरभि गन्ध का बोध होता है, वैसे ही श्रवणादि उपाय पूर्णरीत्या अवगत होते हैं। जिसकी बुद्धि कर्मों द्वारा परिशोधित नहीं है, वह

पुरुष, अबुद्धि से असङ्ग ब्रह्म को भी बुद्धि के आश्रित सलङ्ग कहा करता है। मोक्ष प्राप्ति के लिये यह कर्त्तव्य है और यह अकर्त्तव्य है —इस प्रकार का उपदेश कोई भी नहीं कर सकता। क्योंकि देखने वाले और सुनने वाले आत्मा की बुद्धि अपने आप मोक्ष के विषय में उत्पन्न होती है। इस संसार में मोक्ष का अंश—अनेक अर्थ युक्त, समस्त पद रूपी, प्रत्यक्ष आदि प्रमाण रूपी, अव्यक्त माया अविद्या रूपी और व्यक्त शब्दादि रूप से सैकड़ों तरह का है। इतना ही क्यों ? प्रत्युत जितने प्रकार के अंशों की कल्पनाएँ हो सकती हों, उतने प्रकार के अंशों की कल्पना करे। किन्तु शम आदि का पूरा पूरा अभ्यास होने पर, वह वस्तु प्राप्त होती है, जिसके परे फिर कुछ भी नहीं रह जाता।

श्रीभगवान् बोले—हे अर्जुन ! तदनन्तर क्षेत्र जीव के परमात्मा में लय होने पर, उस ब्राह्मण की बुद्धि क्षेत्रज्ञान के बाद. क्षेत्रज्ञस्वरूप में प्रवृत्त हुई।

अर्जुन ने कहा—हे कृष्ण ! जिनको, यह सिद्धि प्राप्त हो चुकी है, वे ब्राह्मण और ब्राह्मणी कहाँ हैं ?

श्रीभगवान् बोले—हे धनञ्जय ! मेरे मन को ब्राह्मण और मेरी बुद्धि को तुम ब्राह्मणी जानो और क्षेत्र इस रूप से जिसका वर्णन किया गया है, वह मैं हूँ।

पैंतीसवाँ अध्याय

अर्जुन की श्रीकृष्ण से ब्रह्मज्ञान की जिज्ञासा

अर्जुन ने कहा—अब आप मुझे ज्ञेय परब्रह्म की व्याख्या सुनावें। क्योंकि आप ही की कृपा से मेरी बुद्धि सूक्ष्म विषयों में रमण करती है।

श्रीकृष्ण जी बोले—पण्डित लोग इस सम्बन्ध में मोक्षविषयक गुरु-शिष्य संवाद युक्त एक प्राचीन उपाख्यान कहा करते हैं। हे परन्तप ! एक बार

एक मेधावी शिष्य ने अपने संशितव्रती एवं ब्रह्मनिष्ठ आचार्य से पूँछा—हे प्रभो ! इस संसार में कल्याणप्रद कौन सा पदार्थ है ? आप यह मुझे बतलावें। क्योंकि मैं मोक्षपरायण हो, आपके शरणागत हुआ हूँ। मैं सीस नवा आपसे यही प्रार्थना करता हूँ कि, आप मेरे प्रश्न का यथार्थ उत्तर दें।

श्रीकृष्ण जी बोले—हे अर्जुन ! अपने शिष्य के प्रश्न का उत्तर देते हुए गुरु ने कहा—हे वत्स ! जिस विषय में तुम्हें सन्देह उत्पन्न हुआ है—वह मैं तुम्हें सुनाता हूँ। गुरुवत्सल शिष्य ने गुरु के इन वचनों को सुन और हाथ जोड़ कर उनसे जो पूँछा था, वह तुम सुनो।

शिष्य ने पूँछा—हे विप्र ! मैं कहाँ से उत्पन्न हुआ हूँ ? आपकी उत्पत्ति किससे हुई है ? चराचर प्राणी किसके द्वारा जीवित रहते हैं ? उनकी परमायु कितनी है ? सत्य क्या है ? तप क्या है ? पण्डित किन गुणों का वर्णन किया करते हैं ? इन सब प्रश्नों के उत्तर आप मुझे बतलावें। हे सुव्रत ! आप मुझे यह भी बतलावें कि, कौन सा मार्ग शुभ है ? सुख क्या है ? पाप क्या है ? हे विप्रर्षे ! आपको छोड़ और कोई भी इन प्रश्नों का यथार्थ उत्तर नहीं दे सकता। क्योंकि आप मोक्ष-धर्मार्थ-कुशल कह कर, संसार में प्रसिद्ध हैं। आपको छोड़ और कोई भी समस्त संशयों को नष्ट नहीं कर सकता। हम लोग संसार से डरे हुए और मोक्षाभिलाषी हैं।

श्रीकृष्ण जी ने कहा—हे अरिंदमन कुरुश्रेष्ठ पार्थ ! उस जिज्ञासु, सद्गुण सम्पन्न, प्रतिपन्न, शान्त, दान्त, प्रियवर्ती, यति-छाया-स्वरूप एवं ब्रह्मचारी शिष्य के प्रश्नों के उत्तर मेधावी एवं धृतव्रत गुरु ने इस प्रकार दिये।

गुरु ने कहा—तुमने वेदानुकूल जो प्रश्न किये हैं, इनके विषय में एक बार ब्रह्मा जी ने ऋषियों द्वारा पूँछे गये इन्हीं प्रश्नों के उत्तर में यह कहा था—परब्रह्म सम्बन्धी ज्ञान श्रेष्ठ है, संन्यास नामक तप उत्तम है। जो मनुष्य अपने दृढ़ निश्चय द्वारा, पीड़ा आदि से रहित उस ज्ञान को जानता है और जो संपरिज्ञात अवस्था में समस्त जीवों में स्थित आत्मा को जानता

है, उसके समस्त मनोरथ सिद्ध होते हैं। जो विद्वान् मनुष्य संपरिज्ञात अवस्था में चिन्मय परमात्मा का सहवास, पृथक्वास, एकत्व और अनेकत्व जान लेता है, वह घोर कष्टों से छूट जाता है। जिसे किसी बात का अभिमान नहीं है, वह इस संसार में रह कर, सशरीर अर्थात् जीवनमुक्त होता है। जो मनुष्य निर्भय और अहङ्कार रहित हो कर, प्रधान माया, सत्वादि गुण और सब प्राणियों की उत्पत्ति के कारण को जान सकता है—उसे ही निस्सन्देह मोक्ष मिलता है।

अव्यक्त अज्ञान जिसकी जड़ है, बुद्धि जिसके स्कन्ध, अहङ्कार पल्लव, इन्द्रियाँ कोटरस्थ पत्राङ्कुर, विषयादि पञ्चमहाभूत पुष्पकोरक और स्थूल कार्य जिसकी डालियाँ हैं, पुरुष जिसकी सदा गिरने वाली पत्तियाँ हैं, जिसके कर्म रूपी पुष्प हैं, और जो सुख दुःखरूपी फलों से युक्त है, जो समस्त जीवों का उपजीव्य, संसार वृक्ष का बीजभूत है; उस सनातन ब्रह्म को विशेष रीत्या, जो जान जाता है और जान लेने बाद ज्ञानरूपी तलवार से उस वृक्ष की अव्यक्तादिरूपी जड़ और उसकी डालियों को काट डालता है, वही मनुष्य जन्म मृत्यु से छुटकारा पा कर, मुक्त होता है।

हे महाप्राज्ञ! पूर्वकाल के मनीषी महर्षि लोग, एकत्र हो कर, अपनी अपनी बुद्धि के अनुसार, जिस विषय को आपस में जान कर, सशरीर मुक्त हुए थे; उन सिद्ध पुरुषों से ज्ञात, वर्त्तमान, भूत, भविष्यत् धर्म और अर्थ से निश्चय किया हुआ सर्वश्रेष्ठ मोक्षपद का वर्णन, आज मैं तुम्हें सुनाता हूँ। पहले भरद्वाज, गौतम, भृगुनन्दन, जमदग्नि, वसिष्ठ, काश्यप, विश्वामित्र और अत्रि आदि ऋषि गण घूमते घामते और श्रान्त हो तथा अङ्गिरानन्दन बृहस्पति को आगे कर, ब्रह्मा जी के दर्शन करने ब्रह्मभवन में पहुँचे और उनके दर्शन किये। तदनन्तर सुख से बैठे हुए ब्रह्मा जी को प्रणाम कर, उन लोगों ने उनसे मुक्ति के विषय में इस प्रकार प्रश्न किया। हे ब्रह्मन्! साधु लोग किस प्रकार के कर्म कर, किस प्रकार पापों से छूट सकते हैं? हम लोगों के लिये कौन सा मार्ग सुखप्रद है? सत्य क्या है? पाप क्या है?

कर्मों के दहिने बाएं मार्ग कौन से हैं? प्रलय किसे कहते हैं? अपवर्ग क्या है? जीवों की उत्पत्ति और विनाश किसे कहते हैं? हे शिष्य! ब्रह्मा जी ने इन प्रश्नों के उत्तर में उन मुनियों से जो कहा था, मैं तुमसे वही कहता हूँ।

ब्रह्मा जी बोले—हे सुव्रत द्विजवर्य! तुम लोग यह निश्चय जान लो कि, अनादि अनन्त ब्रह्म से अव्यक्तादि चराचर समस्त प्राणी उत्पन्न होते हैं और तपरूपी कर्म द्वारा जीवित रहते हैं। किन्तु जब वे लोग निज योनि-भूत ब्रह्मपथ को उल्लङ्घन करते हैं, तब ध्यान से च्युत हो कर, उन्हें केवल अपने किये कर्मों के फलों पर ही निर्भर रहना पड़ता है। व्यावहारिक गुण युक्त सत्य पाँच हैं, किन्तु एकमात्र ईश्वर सत्य है। तप अर्थात् धर्म सत्य है, प्रजापति जीव सत्य है। सत्य से उत्पन्न समस्त प्राणी सत्य हैं। और सत्यभूत प्राणियों से यह जगत पूर्ण है। क्रोध और सन्ताप से रहित, सत्याश्रित, जितेन्द्रिय, और भोगपरायण विप्रगण धर्मसेतु कहे जाते हैं। जो लोग आपस के डर से धर्म को नहीं त्यागते, उन विद्वान् धर्मसेतु प्रवर्त्तक और शाश्वत लोकचिन्तक ब्राह्मणों के विषय में मैं तुमसे कहता हूँ।

हे द्विजगण! मनीषीवृन्द, जिस एकमात्र चतुष्पाद धर्म को नित्य बतलाते हैं, उस धर्म का; धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष देने वाली चारों विद्याओं का; ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—चारों वर्णों का और ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, बाणप्रस्थ और संन्यस्त—चारों आश्रमों का, वर्णन अलग अलग मैं तुमको सुनाता हूँ। हे देवगण! प्राचीन काल में मनीषी वृन्द जिस मार्ग से ब्रह्मप्राप्ति के लिये इस लोक में आते रहे हैं, उस मोक्षप्रद तथा सर्वमङ्गलमय, किन्तु दुर्विज्ञेय परम पथ का वर्णन भी मैं तुमको सुनाता हूँ। तुम लोग सुनो।

मनीषियों ने ब्रह्मचर्य आश्रम को प्रथम, गार्हस्थ्य आश्रम को द्वितीय, बाणप्रस्थ आश्रम को तृतीय और परमात्म-प्रापक एवं सर्वविज्ञेय संन्यासाश्रम को चतुर्थ पद कहा है। जीव जब तक आध्यात्मिक संन्यासाश्रम ग्रहण कर,

परमात्मा के साथ साक्षात्कार नहीं करता; तब तक उसे अग्नि, आकाश, वायु, इन्द्र और प्रजापति तभी तक दृष्टिगोचर होते हैं, जब तक कि, जीव संन्यासाश्रम में ब्रह्मज्ञान को प्राप्त नहीं करता। वन में रहने वाले और फल, मूल खाने वाले तथा वायु पी कर रहने वाले मुनियों के आध्यात्म दर्शन का उपाय मैं पहले कहता हूँ। सुनो।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, और वैश्य—इन तीनों द्विजातियों के लिये ही वाण-प्रस्थ आश्रम विहित है। अन्य वर्ण वालों को केवल गार्हस्थ्य आश्रम ही अवलंबन करना चाहिये। पण्डित लोग श्रद्धा ही को धर्म प्रवृत्ति का द्योतक बतलाते हैं। यह तुम लोगों के देवयान मार्ग की प्राप्ति का यत्न है। साधु जन निज कर्मों द्वारा धर्म के सेतुरूप पथ से गमन करते हैं। जो संशतव्रती पुरुष होते हैं, उनमें जो मनुष्य केवल इनमें से एक भी धर्म को अवलम्बन करता है, वह मन की पवित्रता से जीवधारियों की उत्पत्ति और नाश का रहस्य जान लेता है।

तदनन्तर मैं अब युक्ति के अनुसार और बुद्धिपुरस्सर, तत्वों के विभाग क्रम से बतलाता हूँ। सुनिये। महान् आत्मा, अव्यक्त प्रकृति, अहंकार, श्रोत्रादि दसों इन्द्रियाँ; मन, विषयादि, पञ्चमहाभूत और शब्दादि पञ्च विशेषगुण—ये सनातनी सृष्टि हैं। इसी प्रकार पच्चीस तत्वों की संख्या है। जो मनुष्य इन पच्चीस तत्वों की उत्पत्ति और नाश को भली भाँति जान लेता है, उस धीर मनुष्य को प्राणियों से मोह प्राप्त नहीं होता। जो मनुष्य पचीसों तत्वों, सत्वादि गुणों तथा देवताओं को विशेष रूप से जान लेता है, वह निष्पाप मनुष्य, साँसारिक समस्त बन्धनों से मुक्त हो कर, निर्मल लोक पाता है।

छत्तीसवाँ अध्याय

तत्वों की व्याख्या

ब्रह्मा जी बोले—तीनों गुणों का समूह गुप्त, अव्यक्त, सर्वव्यापक, अविनाशी और निश्चल है। उसीको शरीर रूपी पुर जानना चाहिये। उस पुर में नौ दरवाज़े हैं। उसमें पाचों इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, प्राण, अहङ्कार और पाँच तत्व हैं। उसमें विषय भोग की वासना से जीव को विचलित करने वाली ग्यारह इन्द्रियाँ हैं। मन से प्रकट होने वाले विषय उसमें विद्यमान हैं। बुद्धि उसकी स्वामिनी है, वह शरीर रूपिणी पुरी ब्रह्मरूप है। ग्यारहवाँ मन सब का रूप है। उसमें तीन नदियाँ हैं। प्रथम हिंसा रहित धर्मप्राबल्य शुक्ल, दूसरी हिंसा प्राबल्य कृष्ण, तीसरी शुक्ल—कृष्ण हिंसायुक्त प्रवृत्तिधर्म। ये तीनों नदियाँ बारंबार वृद्धि को प्राप्त हुआ करती हैं। त्रिगुणात्मक संस्कार रूप तीन नाड़ियाँ हैं। ये नदियाँ उन्हींसे निकलती हैं। अव्यक्त के अंगरूप सत्व, रज और तम हैं। ये ही गुण कहलाते हैं। ये आपस में मिले जुले हैं। अर्थात् स्त्री पुरुष की तरह सृष्टि उत्पन्न करने वाले हैं और बीज अङ्कुर की तरह परस्पर जीवित रहने वाले हैं। स्वामी सेवक की तरह अन्योन्याश्रित हो बर्त्ताव करने वाले हैं। पञ्चतत्व तीनों गुणों के रूप हैं। सतोगुण, तमोगुण को जीतने वाला है। इसी प्रकार रजोगुण भी तमोगुण को जीतने वाला है। सतोगुण, रजोगुण को जीत लेता है। इसी प्रकार तमोगुण, सतोगुण को जीतने वाला है। अर्थात् तमोगुण के उदय होने पर सतोगुण छिप जाता है, सतोगुण के उदय होने पर, रजोगुण दब जाता है, और तमोगुण के उदय होने पर सतोगुण अन्तर्हित हो जाता है। जहाँ पर तमोगुण नहीं होता, वहाँ रजोगुण विद्यमान रहता है और जहाँ पर रजोगुण नहीं होता, वहाँ सतोगुण विद्यमान रहता है। पाप कर्मों में अनुराग उत्पन्न करने वाले, अधर्म की वृद्धि करने वाले और मोह में डालने वाले तमोगुण को रात्रिरूप जानना चाहिये। यह

त्रिगुणात्मक हैं। पण्डित लोग सब प्राणियों में प्रवृत्त, दृष्टि आने वाले, उत्पत्ति लक्षणाक्रान्त वैपरीतकारक रजोगुण को प्रकृत्यात्मक कहा करते हैं। सब प्राणियों में प्रकाशमान, धर्म–ज्ञानादि रूपी श्रद्धायुक्त सात्विक-गुण साधुसम्मत है। इन गुणों से सृष्टि में जो लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं, वे व्योरेवार और सहेतुक वर्णन किये जाते हैं। उनको समूल जानो। पूर्ण मोह, अज्ञान, त्याज्य को न त्यागना, खोटे खरे कर्मों का विचार न करना, बहुत सोना, अहङ्कार, भय, लोभ, शोक, अपने में दोष लगाना, भूल जाना, संशय, नास्तिकता, दुराचार, योग्यायोग्य में विवेक का अभाव, इन्द्रियों की परवशता, दुर्गुण, हिंसा, अपवित्रता, अधूरे काम को पूरा मानना, अज्ञान को ज्ञान मानना, मैत्री का त्याग, धर्म में अरुचि, अश्रद्धा, अज्ञानता, कुटिलता, अचेतता, पापकर्म, आलस्य, देवताओं में भक्ति का अभाव, अजितेन्द्रियत्व, तुच्छ कर्मों में अनुराग, ये सब तामसी चलन और लक्षण हैं। इस संसार में भाव संज्ञा वाले जो भाव हैं, तामसगुण उन्हीं भावों में नियम के अनुसार उपस्थित हुआ करता है।

देवताओं और ब्राह्मणों की सदा निन्दा करना, त्यागने योग्य दुर्गुणों को न त्यागना, मोह, क्रोध और अशान्ति, ईर्ष्या—ये सब तामसी चलन हैं। पापी, मर्यादा रहित जो पुरुष हैं, वे सब तामसी समझने चाहिये। अब मैं पापी तामसी लोगों की उन योनियों का विशेष विवरण बतलाऊँगा, जो उनके लिये नियत हैं। ऐसे लोग अधःपतन के लिये, तिर्यक योनि में जाते हैं। पापी तामसी पुरुष, तमसाच्छन्न हो कर, क्रमशः स्थावर, पशु, वाहन, क्रव्याद, दन्दशुक, कृमि, कीट, विहङ्ग, अण्डज, चौपाये, उन्मत्त, बहरे, गूंगे, पापी रोगी, किये हुए कर्मों के लक्षणों से सम्पन्न, दुर्वृत्त, अधोगामी—ये सब तामस-योनि-सम्भूत कहलाते हैं। अब मैं उन लोगों के उत्कर्ष, उद्रेक को कह, उन पापियों की पुण्यलोक प्राप्ति का उपाय बतलाता हूँ! वेद में कहा है कि, अपने अपने कर्मों में रत, शुभाकाँक्षी ब्राह्मणों के बीच जो लोग अग्निहोत्रादि कर्मों के लिये मारे जाते हैं, वे उस योनि से

छूट कर, सालोकता अर्थात् ब्रह्मणत्व जाति पाते हैं, तदनन्तर वे ऊर्ध्व लोकों में गमन करते हैं। तिर्यक स्थत्त्वरादि योनियों में उत्पन्न तामसी पुरुष, निजकर्मों से छूट पुनः मनुष्य योनि में जन्म लेते हैं। ऐसे लोगों का जन्म मनुष्ययोनि में होता है सही, किन्तु वे होते हैं चाण्डाल के घर में—सो भी गूंगे। फिर क्रमशः इनका जन्म उच्च जातियों में होता है। ये शूद्रयोनि से निकल, तमोगुण के स्रोत में बहते हुए तमोगुण ही में पड़े रहते हैं। स्त्री आदि अभीष्ट वस्तुओं में जो आसक्ति है, वही महामोह है। सुख के अभिलाषी ऋषि, मुनि और देवता इस महामोह से मुग्ध हुआ करते हैं। क्रोध नामक मोह महामोह, तामिस्र, मरण, अन्धतामिश्र और क्रोध ये सब तम रूप से वर्णित हैं। हे विप्रगण! वर्ण, गुण, योनि और तत्वानुसार सब प्रकार के तम का तुम्हारे समक्ष वर्णन किया गया। किन्तु कौन पुरुष इसे उत्तम मानेगा, कौन इसे उत्तम रीति से देखेगा—यह भी जान लो। जो पुरुष अतत्व में तत्वदर्शी होता है, उसीमें तमोगुण के वास्तविक लक्षण पाये जाते हैं। मैंने अनेक प्रकार के तमोगुण का वर्णन किया। जो मनुष्य इसे यथार्थ रीति से जान लेता है, वह समस्त तामसी गुणों से छूट जाता है।

सैंतीसवाँ अध्याय

रजोगुण का वर्णन

ब्रह्मा जी बोले—हे ऋषियो! अब मैं तुम्हें रजोगुण और रजोगुण-मयी वृत्ति का वर्णन सुनाता हूँ। सुनो।

सन्ताप, परिश्रम, सुख, दुःख, शीत, उष्ण, ऐश्वर्य, विग्रह, सन्धि, हेतुवाद, रति, क्षमा, बल, शूरता, मद, रोष, व्यायाम, कलह, ईर्ष्या, ईप्सा, पिशुनता, युद्ध, ममता, शरीरादिक का पालन, मरण और बंधन का दुःख, क्रय विक्रय, काटना, छेदना, घायल करना, मर्मस्थलों का वेधना, कठोर

वचन कहना, भर्त्सना, गालीगलौज, परछिद्रान्वेषण, लोकचिन्ता की चिन्ता, मत्सरता, परिपालन, मृषावाद, मृषादान, विकल्प, निन्दायुक्त दुर्वाद, प्रशंसा, प्रताप, परविजय, परिचर्या, अनुशुश्रूषा, सेवा, तृष्णा, व्यवहार में सावधानता, नीतिशास्त्र, प्रमाद, परिवाद, परिग्रह, लोक के बीच नर नारी, भूतद्रव्य और सब आश्रमों में समस्त संस्कार, सन्ताप, अविश्वास, व्रत, वापी कूप तड़ागादि का निर्माण, स्वाहाकार, नमस्कार, स्वधाकार, वषट्कार, भजन, अध्यापन, यज्ञ करना और कराना, वेद का पढ़ना पढ़ाना, दान देना, दान लेना, प्रायश्चित, मङ्गलकर्म, यह मेरा है, यह मेरे करने ही से गुण उत्पन्न हुआ है, शत्रुता, माया (कपट) धोखा, अहंकार, चोरी, हिंसा, निन्दा, अपने मित्रों के विकल देख मन में दाह, जागरण, पाषण्ड, गर्व, प्रीति, भक्ति, स्नेह, प्रमोद, द्यूत, जनवाद, स्त्री सम्बन्धी नातेदारी, नृत्य, वाद्य, गीत—ये सब रजोगुण की वृत्तियाँ हैं।

जो गुणी होते हैं वे पृथ्वी पर विद्यमान, भूत, भविष्यत् विषयों की चिन्ता किया करते हैं। धर्म, अर्थ और काम में सदा तत्पर रहते हैं। ये लोग कामवृत्ति ग्रहण कर, सब प्रकार से काम तथा समृद्धि के साथ प्रमुदित हो, ऊर्ध्व लोकों में जाते हैं। वे लोग इस मर्त्यलोक में बारंबार जन्म ले कर, ऐहिक और जन्मान्तरीय कुशल की आकाँक्षा करते हुए अत्यन्त प्रमुदित होते हैं और हर्षित हो दान, परिग्रह, तर्पण तथा होम किया करते हैं। हे द्विजगण! अनेक प्रकार के रजोगुण और रजोगुण की वृत्तियों का यह वर्णन मैंने तुम्हें सुनाया। किन्तु जो मनुष्य भली भाँति इन गुणों को यथार्थरीत्या जान सकता है; वह सब प्रकार से रजोगुण से छूट जाता है।

अड़तीसवाँ अध्याय

सतोगुण का वर्णन

ब्रह्मा जी बोले—अब मैं सर्वोत्तम तीसरे गुण अर्थात् सतोगुण का वर्णन करता हूँ। यह गुण प्राणिमात्र के लिये हितकर एवं निर्दोष है और सत्पुरुषों में पाया जाता है। आनन्द, प्रीति, उद्रेक, (अर्थात् प्रताप का उदय) प्राणिमात्र का हितचिन्तन, सुख, उदारता, निर्भयता, सन्तोष, श्रद्धा क्षमा, धैर्य, अहिंसा, सब में समभाव, सत्यता, सत्यभाषण, क्रोध का न होना, किसी पर दोष न लगाना, भीतर बाहिर की पवित्रता, सावधानी, पराक्रम, ये सतोगुण के गुण कहलाते हैं। सतोगुणी पुरुष राजसी और तामसी कर्मों को त्याग कर और निःशोक हो, स्वर्ग में जाते हैं तथा योग-बल से अनेक प्रकार के शरीरों को उत्पन्न करते हैं। ऐसे लोग स्वर्गस्थित देवताओं की तरह अणिमादि ऐश्वर्य को प्राप्त करते हैं। ऊर्द्धगामी देवता वैकारिक नाम से प्रसिद्ध हैं। वे प्रकृति अर्थात् भोगज संस्कार के द्वारा, पुनः भोग करने के लिये; चित्त को विकृत कर, स्वर्ग में जा, जो इच्छा करते हैं, उन्हें उनके इच्छित पदार्थ, इच्छा करते ही प्राप्त होते हैं। ऐसे लोग दूसरे लोगों के अभीष्ट भी पूरे कर सकते हैं।

हे द्विजेन्द्रगण! मैंने तुम्हें यह जो सात्विकी वृत्ति का वर्णन सुनाया है, इसे जो लोग भली भाँति जान लेते हैं, उन्हें उनके अभिलषित पदार्थ मिल जाते हैं। मैंने सात्विक गुण तथा विशेषतः सतोगुण की वृत्ति तुम लोगों को सुना दी है। जिस मनुष्य को ये गुण और इन गुणों की वृत्तियाँ मालूम हो जाती हैं, वे सदा सतोगुण के सुखों को भोगते हुए, सतोगुण में अनुरागवान् बने रहते हैं।

उनतालीसवाँ अध्याय

मिश्रित तीनों गुणों का वर्णन

ब्रह्मा जी बोले यह बात असम्भव है कि, सब गुण अलग अलग वर्णन किये जा सकें। क्योंकि रज, सत्व और तम ये तीनों गुण मिले हुए देख पड़ते हैं। ये तीनों आपस में एक दूसरे के आश्रित हैं, और आपस में एक दूसरे के अनुवर्ती हो कर, परस्पर में एक दूसरे के अनुरागभाजन बने हुए हैं। जहाँ सतोगुण है, वहाँ ही रजोगुण भी रहता है और जहाँ जितना तमोगुण और सतोगुण रहता है, वहाँ उतना ही रजोगुण होता है। यह एकत्र रहने वाले तीनों गुण मिल कर, लोक-व्यवहार सम्पादन किया करते हैं। परस्पर आश्रित इन तीनों गुणों की पारस्परिक उद्बोधक सामग्री न रहने से, जिस प्रकार उनकी अन्यूनता तथा अनधिकता है—अब उसे कहेंगे। जिस जगह में तमोगुण अधिक और तिर्यक् भाव से रहित होता है, उस जगह रजोगुण और सतोगुण नाम मात्र के हुआ करते हैं। जिस जीव में रजोगुण अधिक होता है वहाँ तमोगुण और सतोगुण बहुत ही कम हुआ करते हैं। सत्त्व इन्द्रियों की अहङ्कार सम्बन्धिनी योनि है, सत्त्व ही इन्द्रियों के द्वारा शब्दादि को प्रकट करता है। अतः सत्त्व से बढ़ कर श्रेष्ठ अन्य धर्म और कोई नहीं है। सत्वगुणावलम्बी पुरुष ऊर्द्ध्वगामी, रजोगुणावलम्बी पुरुष मध्यगामी और तमोगुणी पुरुष अधोगामी हुआ करते हैं। तमोगुण शूद्रों में, रजोगुण क्षत्रियों में और सतोगुण ब्राह्मणों में विशेष हुआ करता है। इसी प्रकार तीनों गुण तीनों वर्णों में विद्यमान हुआ करते हैं। यद्यपि सत्त्व, रज और तम—तीन गुण पृथक् पृथक् हैं, तथापि ये दूर से मिले जुले जान पड़ते हैं। सूर्य के उदय होने पर कुकर्मरत पुरुष भयभीत होते हैं और दुःखभागी पथिक लोगों को सूर्यताप से सन्तप्त होना पड़ता है। सूर्य की तरह प्रकाशित सतोगुण कुकर्मियों को भयप्रद होता है। रजोगुण पथिकों को परितप्त करने वाला है। प्रकाशात्मक आदित्य

को सत्त्व, सन्ताप को रज और पर्व सम्बन्धी उपप्लव को तम समझो। इसी प्रकार समस्त ज्योति वाले पदार्थों में सत्त्वादि तीनों गुण पर्याय क्रम से प्रवृत्त और निवृत्त हुआ करते हैं। किन्तु स्थावरों में तम अधिक परिणाम में पाया जाता है। रजोगुण से रमणीयतादि रूप बदल जाते हैं और सत्त्व स्नेह भाव से अर्थात् प्रकाश रूप से स्थित होता है। दिन, रात, मास, पक्ष, वर्ष, ऋतु, सन्ध्या, दान, यज्ञ, लोक, देवता, विद्या, गति, वर्त्तमानादि तीनों काल, धर्मादि वर्ग और प्राणादि वायु—ये सब त्रिगुणात्मक हैं। इस लोक में यावत् पदार्थ त्रिगुणात्मक हैं। पर्याय क्रम से तीनों गुण समस्त वस्तुओं में प्रवर्तित हुआ करते हैं। सत्त्व, रज, और तम—ये तीनों गुण अव्यक्त रूप से सदा प्रवर्त्तित होते हैं। इन तीनों गुणों को सनातन जानना चाहिये। तम, अव्यक्त, शिव, धाम रज, सनातन योनि, प्रकृति, विकार, प्रलय-प्रधान, जन्म, मरण, सत्, असत्—अव्यक्त और त्रिगुण-अध्यात्मवादी पुरुष इन्हें अव्यक्त नाम से पुकारते हैं। जो मनुष्य अव्यक्त के नामों और गुणों को तथा उनकी गति को यथार्थ रीत्या जान सकता है, वह विभाग-तत्त्वज्ञ पुरुष मुक्त और निरामय हो कर, सब प्रकार के गुणों से मुक्त हो जाता है।

चालीसवाँ अध्याय

"महत्तत्त्व" का वर्णन

ब्रह्मा जी बोले—अव्यक्त से महतत्त्व की उत्पत्ति हुई—जो यावत् सृष्टि के गुणों का आदि महान् आत्मा है और महामति नाम से प्रसिद्ध है। यह आदि में प्रकट हुआ करता है। महान् आत्मा, मति, विष्णु, पराक्रमी शम्भु, बुद्धि, ज्ञान, प्राप्ति, प्रसिद्धि, धैर्य, संवर्ती—ये सब उस महान् आत्मा के पर्यायवाची शब्द हैं। उसको जान कर, ज्ञानवान् ब्राह्मण मोह को प्राप्त नहीं होता। वह सर्वग्राही, सर्वत्रगामी, सर्वदर्शी, सर्वशिरा, सर्वानन और

सर्वश्रोता है। वही इस सारे जगत में व्याप्त हो कर, निवास कर रहा है। वह महा प्रभाववान् पुरुष सब के हृदय में निश्चित है। वही अणिमा, लघिमा, प्राप्ति, ईशान, अव्यय और प्रकाश स्वरूप है। बुद्धिमान, सद्भावरत, ध्यान-परायण, सदा योगाभ्यासी, सत्यसन्ध, जितेन्द्रिय, ज्ञानवान्, अलुब्ध, जितक्रोध, प्रसन्नचित्त, धीर, निर्मल, और निरहङ्कारी मनुष्य, उसमें रत रहते हैं, तथा जो लोग उस महात्मा महान् की पुण्यमयी गति को जानते हैं, वे सब मुक्त हो कर उस महत्तत्त्व को प्राप्त करते हैं। पृथिवी, वायु, आकाश, जल और अग्नि—इन पाँचों तत्त्वों की उत्पत्ति अहङ्कार से हुई है। सब जीव इन पाँच तत्त्वों से उत्पन्न हो कर, शब्द, स्पर्श, रूप, रस गन्ध—इन क्रियागुणों से संपन्न होते हैं। हे धीरगण ! जब इन पञ्चमहाभूतों का अन्त काल या प्रलय काल उपस्थित होता है, तब प्राणियों को महाभय उत्पन्न होता है; किन्तु वही महावीर महान् पुरुष मोह को प्राप्त नहीं होता। वह स्वयम्भू ही आदि सर्ग का स्वामी है। जो पुरुष उस विश्वरूप, हिरण्य-मय, प्रज्ञावानों की परमगति, पुराण-पुरुषोत्तम को जान लेता है, वही बुद्धि-मान पुरुष, बुद्धि के परे जा, निवास करता है।

एकतालीसवाँ अध्याय

कार्य कारण का ऐक्य

ब्रह्मा जी कार्य कारण का ऐक्य सिद्ध करने के लिये कहने लगे—प्रथम उत्पन्न महत्तत्त्व ही का नाम अहङ्कार है। "अहं" से प्रकट हुआ वह दूसरा अत्यन्त या सर्ग कहा जाता है। यह अङ्कार ही समस्त भूतों का आदि है। विकृत महत् से उत्पन्न तेज, विकार, चेतना, पुरुष और प्रजापति रूप से उत्पन्न होता है। वही इन्द्रिय और मन का उत्पत्ति स्थान और त्रिलोकी का कर्त्ता है। वह सब पदार्थों में "अहं" रूपी अभिमान उत्पन्न करने के कारण अहङ्कार के नाम से विख्यात है। अध्यात्म ज्ञान से तृप्त, पवित्रात्मा, वेदपाठी

और यज्ञ द्वारा शुद्ध हुए मुनियों का यह सनातन लोक है अर्थात् आवागमन का स्थान है। अहङ्कार से शब्दादि गुण भोक्ता पुरुष का वह आदितत्त्व, तामसी अहङ्कार का उत्पन्न करने वाला है। वही इन समस्त इन्द्रियों को उत्पन्न कर उन्हें चेष्टावान् बनाने वाला है। कर्मेन्द्रियों और पञ्च प्राणों को उत्पन्न कर, इनके द्वारा समस्त भोक्ताओं को वह आनन्द देने वाला है।

बयालीसवाँ अध्याय

प्रलय-क्रम

ब्रह्मा जी बोले—पृथिवी, वायु, आकाश, जल और अग्नि इन पाँचों की उत्पत्ति अहङ्कार से हुई है। मनुष्यादि समस्त प्राणधारी निमित्तभूत शब्दादि गुण मिश्रित इन पञ्च महाभूतों से मुग्ध हो जाया करते हैं। इन महाभूतों के नाश तथा प्रलय का समय आने पर, समस्त प्राणधारी भयभीत हो जाया करते हैं। जो तत्व जिस तत्व से उत्पन्न होता है, वह उस समय उसीमें लीन हो जाता है। फिर उत्पत्ति का समय उपस्थित होने पर प्रतिलोम क्रम से लीन हुए वे सब अनुलोम क्रम से उत्तरोत्तर उत्पन्न होते हैं। स्थावर-जङ्गमात्मक सब भूतों के प्रलीन होने पर, धीरवर स्मृतिमान पुरुष लीन नहीं होते। इसीसे जिस पुरुष ने योगबल से स्थूल पञ्चमहाभूतों को सूक्ष्म महाभूतों में लय कर लिया है—वह प्रशंसनीय योगी सूक्ष्म शरीरधारी होने के कारण, अपनी स्मरण शक्ति से नाश को प्राप्त नहीं होता। शब्द, स्पर्श, रूप, रस गंध और इनको प्राप्त करने वाली क्रियाएँ—कारणात्मक मन रूप से नित्य होती हैं। किन्तु स्थूल शब्दादि विषय तथा उन विषयों को ग्रहण करने वाली क्रियाएँ अनित्य हुआ करती हैं। लोभोत्पादक कर्मों से उत्पन्न, निर्विशेष, अकिञ्चन रक्त माँस से युक्त, क्षुधा-पिपासा-शील, कृपण-जीवी स्थूल शरीर अनित्य है। प्राणादि पञ्च वायु, वाक्, मन तथा बुद्धि ये आठो—उपाधि रूपी अन्तरात्मा से सम्बन्ध युक्त हो कर, जगदाकार के रूप

में देख पड़ते हैं। जिसकी त्वचा, नासिका, कर्ण नेत्र, जिह्वा वाणी अपने वश में हैं, जिसका मन विशुद्ध और बुद्धि अव्यभिचारिणी है और ये आठों अग्नि रूप धारण कर जिसके चित्त को सदा दग्ध नहीं किया करते, उसी विद्वान् मनुष्य को सर्वाधिक शुभ ब्रह्म की प्राप्ति हुआ करती है।

हे द्विजगण ! जो अहङ्कार से उत्पन्न हुए हैं और जिन्हें पण्डित लोग एकादश इन्द्रिय के नाम से पुकारते हैं, उनका विशेष विवरण मैं अब तुमको सुनाता हूँ। सुनो। कर्ण, त्वचा, नेत्र, जिह्वा, नासिका, हाथ, पाव, लिङ्ग, गुदा, वाणी और मन—ये ग्यारह इन्द्रियाँ हैं। प्रथम इन इन्द्रिय समूह को जीत लेने से पूर्ण ब्रह्म प्रकाशित होता है। पण्डित जन बुद्धि युक्त श्रोत्रादि पाँच को ज्ञानेन्द्रिय और कर्म करने वाली वागादि इन्द्रियों को कर्मेन्द्रिय कहा करते हैं। किन्तु दोनों प्रकार की इन्द्रियों में अनुगत मन को एकादश और बुद्धि को द्वादश इन्द्रिय मानना चाहिये। एकादश इन्द्रियों को जान कर पण्डित जन कृतकृत्य हुआ करते हैं।

अब मैं तुम्हें इन्द्रियों के आकाशादि विविध भूतों तथा उनके अध्यात्म अधिभूत एवं आधिदैवत का वर्णन सुनाता हूँ। प्रथम भूत आकाश है। उसका श्रोत्र अध्यात्म, शब्द अधिभूत और दिशा अधिदैवत है। दूसरा भूत वायु है। इसमें त्वचा अध्यात्म, स्प्रष्टव्य अधिभूत और विद्युत अधिदैवत है।

तीसरा भूत अग्नि है। इसमें नेत्र अध्यात्म, रूप अधिभूत और सूर्य अधिदैवत हैं।

चौथा भूत जल है। इसमें जिह्वा अध्यात्म, रस अधिभूत और चन्द्रमा अधिदैवत है।

पाँचवा भूत पृथिवी है। इसमें नासिका अध्यात्म, गन्ध अधिभूत और वायु अधिदैवत है।

अब मैं इन पञ्चभूतों के अन्तर्गत अध्यात्म, अधिभूत और अधिदैवत

की विहित विधि का और कर्मेन्द्रियों का वर्णन करता हूँ। सुनो। तत्वदर्शी ब्राह्मणों ने

१ चरण को अध्यात्म, उसके गमन की क्रिया को अधिभूत और विष्णु को उसका अधिदैवत बतलाया है।

२ अवाक्गति गुदा को अध्यात्म, विसर्ग को अधिभूत और मित्र को उसका अधिदैवत माना है।

३ सब प्राणियों को उत्पन्न करने वाले लिङ्ग को अध्यात्म, वीर्य को अधिभूत और प्रजापति को उसका अधिदैवत् माना है।

४ हाथ को अध्यात्म, उसके कर्म को अधिभूत और शुक्र को उसका अधिदैवत माना है।

५ इस लोक में सम्पूर्ण विश्व की दैवी वाणी अध्यात्म करने के योग्य वाणी को अधिभूत और अग्नि उसका अधिदैवत कहा जाता है।

६ पञ्चभूतों से उत्पन्न जीवों को कर्म में प्रवृत्त करने वाला मन अध्यात्म है। सङ्कल्प अधिभूत है और चन्द्रमा उसका अधिदैवत है।

७ समस्त संस्कारों का उत्पन्न करने वाला अहङ्कार अध्यात्म है। अभिमान अधिभूत है और रुद्र उसका अधिदैवत है।

८ षडिन्द्रियचारिणी बुद्धि अध्यात्म है। उसके मन्तव्य अधिभूत हैं और ब्रह्मा उसका अधिदैवत है।

प्राणियों के रहने के जल, स्थल और आकाश—ये तीन स्थान हैं। इनको छोड़ और चौथा स्थान नहीं है। सब प्राणियों के अण्डज, उद्भिज्ज स्वेदज और जरायुज—चार प्रकार के जन्म हैं। छोटे छोटे जीव, आकाशचारी पक्षी और सर्प आदि अण्डज हैं। इसी प्रकार जू, चीलहर, खटमल आदि स्वेदज अथवा जघन्य कहलाते हैं। समय पा कर जो प्रभूत पृथिवी को भेद कर, उत्पन्न होते हैं, वे उद्भिज्ज कहलाते हैं। दो पैर वाले, बहुत पैरों वाले, तिर्य्यक्गति विशिष्ट जीव जरायुज या विकृत कहलाते हैं।

सनातन ब्रह्मोपलब्धि स्थान दो प्रकार के हैं। पण्डितों के मतानुसार पुण्यकर्म ही तप है।

कर्म अनेक प्रकार के हैं। इन कर्मों में यज्ञ और दान मुख्य हैं, वृद्धों का आदेश है कि, ब्राह्मणों के लिये वेदाध्ययन ही पुण्यकर्म है।

जो पुरुष इसे यथाविधि जानता है वह योगी है और वही समस्त पापों से मुक्त होता है।

मैंने यह तुम्हें अध्यात्म विधि सुनायी। हे धर्मज्ञों! इस लोक में ज्ञानवान् पुरुष ही इस अध्यात्म विधि के ज्ञाता हैं। अतः वे लोग इन्द्रिय, इन्द्रियार्थ और पञ्चमहाभूतों का अनुसन्धान करते हुए केवल मन में निवास किया करते हैं। मन के सब प्रकार से क्षीण हो जाने पर, जिस मनुष्य को निर्विकल्प सुख का अनुभव होता है, वह पुत्र, कलत्र, भाई बन्धु सम्बन्धी सांसारिक सुख प्राप्ति की कामना नहीं करता। जिन लोगों ने आत्मानुभव प्राप्त कर लिया है, उनके लिये वही सुख है।

अब मैं तुम्हें मन को सूक्ष्म करने वाली निवृत्ति का वर्णन सुनाता हूँ। ब्राह्मण आदि सब मनुष्यों को मृदु और कठिन योगाभ्यास द्वारा निवृत्ति की साधना में संलग्न होना चाहिये। शौर्यादि गुण युक्त, अभिमान राहित्य, एकान्त-वास, भेद बुद्धि का अभाव, ब्राह्मणों के लिये सुखप्रद है। अपने शरीर को समेटने वाले कछुवे की तरह जो विद्वान् समस्त कामनाओं को समेट कर, रजोविहीन होता है, वह सब प्रकार से मुक्त हो कर, सदा सुख भोग किया करता है। जो एकाग्र मन करने वाला पुरुष मानव शरीर की समस्त कामनाओं को रोक कर, संसार वासनाओं को नष्ट कर डालता है, वह ब्राह्मण मात्र का सुहृद और मित्र हो कर, ब्रह्मत्व लाभ करता है। विषयाभिलाषिणी इन्द्रियों का विरोध और जनपद त्याग करने से मुनियों का अध्यात्म-अग्नि प्रज्वलित होता है। जैसे अग्नि काष्ठ से प्रज्वलित होता है वैसे ही इन्द्रियों का निरोध करने से परमात्मा प्रकाशित होता है। जब

हर्षित हो पुरुष सब प्राणियों को निज हृदय में देखता है। तब उसे अत्यन्त सूक्ष्म वह अनुत्तम ज्योति देख पड़ने लगती है।

जिस कालचक्र का रूप अग्नि है, रुधिरादिक जल है, स्पर्श वायु है, कीचड़ पृथिवी है, श्रोत्र आकाश है, जो रोग शोक से पूर्ण पञ्चेन्द्रिय रूपी नदियों से युक्त रहती है, जिसमें नव द्वार हैं, जिसके जीव, ईश्वर नामक दो देवता हैं, जो रजोगुण से युक्त है, जो अदृश्य तीन गुणों से युक्त है, जो संशयाभिरत है और जो जड़ है; वह शरीर के नाम से प्रसिद्ध है। समस्त लोकों में समाश्रित सत्त्वबुद्धि, व्याधि से आक्रान्त होने पर इस लोक में कालचक्र द्वारा प्रवृत्त हुआ करती है। अगाध महासागर की तरह भयानक मोह, विक्षिप्त हो कर, अमरलोक सहित सारे जगत् को प्रबोधित करता है। काम, क्रोध, मोह, लोभ, भय और असत्य—ये सब दुस्त्यज होने पर भी, इन्द्रिय निरोध द्वारा त्यागे जा सकते हैं। जो कोई इस लोक में त्रिगुणात्मक एवं पञ्च धातु युक्त स्थूल शरीर को, योगाभ्यास से जीत लेता है, उसे अनन्त ब्रह्मपद की प्राप्ति होती है। जिस नदी के पञ्चेन्द्रिय बड़े बड़े तट हैं, मन का महावेग जिस का वेगवान् जलप्रवाह है, मोह जिसका महाह्रद है, उस नदी को पार कर, पुरुष को उचित है कि, काम और क्रोध को जीते। जब वह समस्त दोषों से रहित हो जायगा और हृदयकमल में मन को स्थापित करेगा, तब उसे अपने शरीर में परमात्मा के दर्शन होंगे। सर्वज्ञ एवं सर्वदर्शी पुरुष अपने शरीर में परमात्मा को पाता है। उसे एक रूप के अनेक रूप देख पड़ने लगते हैं। जैसे एक दीपक से सैकड़ों दीपक जल जाते हैं, वैसे ही योगी पुरुष सङ्कल्पमात्र से निज शरीर में सैकड़ों शरीर पैदा कर सकता है। वे ही फिर विष्णु, मित्र, वरुण, अग्नि, प्रजापति, धाता, विधाता, सर्वतोमुख, प्रभु, सब प्राणियों के हृदय और परमात्मा रूप से प्रकाशित हुआ करते हैं। विप्र, सुरासुर, यक्ष, पिशाच, पितर, गरुड़, राक्षस, भूत और महर्षिगण उनकी सदैव स्तुति किया करते हैं।

तेतालीसवाँ अध्याय

विभूति-वर्णन

ब्रह्मा जी बोले--रजोगुण प्रधान राजन्य क्षत्रिय मनुष्यों के राजा हैं। वाहनों का राजा हाथी है। वनवासी जन्तुओं का राजा सिंह है। अन्य जानवरों का राजा मेष (मेढ़ा) है। बिलों में रहने वाले जीवों का राजा सर्प है। गौओं का राजा साँड़ है। स्त्रियों का राजा पुरुष है। वृक्ष जाति के राजा वट, अश्वत्थ, जामुन, शाल्मलि, शिंशपा, मेषशृङ्गी और कोचक नाम बाँस है। पर्वतों के राजा हैं--हिमालय, पारिपात्र, सह्य, त्रिकूटवान्, विन्ध्य, श्वेत, नील, भास, कोष्ठवान्, गुरुस्कन्ध, महेन्द्र और माल्यवान्। ग्रहों का राजा है सूर्य। नक्षत्रों का राजा है चन्द्रमा। पितरों के राजा हैं यमराज। नदियों के राजा हैं समुद्र। जल के राजा हैं वरुण। मरुद्गणों के राजा हैं इन्द्र। उष्ण वस्तुओं के राजा हैं अर्क। ज्योति समूह के राजा हैं इन्दु। सब प्राणियों के राजा हैं अग्निदेव। ब्राह्मणों के राजा हैं बृहस्पति। औषधियों के राजा हैं सोम। बलवानों के राजा हैं विष्णु। रूप समूह के राजा हैं त्वष्टा। पशुओं के प्रभु हैं शिव। दीक्षितों का राजा है यज्ञ। दिशा समूह का राजा है उत्तर दिक्। ब्राह्मणों के राजा हैं चन्द्रमा। रत्नों के राजा हैं कुबेर। देवताओं के राजा हैं इन्द्र। प्रजाओं के राजा हैं प्रजापति। सब भूतों का अधिपति मैं हूँ। मुझसे और विष्णु से बड़ा और कोई नहीं है। ब्रह्म रूप विष्णु सब प्राणियों के राजाधिराज हैं। सृष्टि को उत्पन्न करने वाले स्वयंसिद्ध हरि ही सब के ईश्वर हैं। वे हरि--नर, किन्नर, यक्ष, गन्धर्व, उरग, राक्षस, देव, दानव, और नगरों के भी ईश्वर हैं। पुरुषों को जिस स्त्री जाति की सदा आकाँक्षा बनी रहती है और जिसकी वे सदा याद किया करते हैं, उस स्त्री जाति की स्वामिनी है श्रीमती पार्वती जी। उमा देवी को स्त्रियों में उत्तम और शुभ जानना चाहिये। सब प्रतिकारक और सुखप्रद वस्तुओं में धन सर्वश्रेष्ठ है और स्त्रियों में अप्सराएँ सर्वश्रेष्ठ हैं।

हे द्विजगण ! राजा धर्मकाम हैं और ब्राह्मणधर्म के सेतु हैं। अतः राजाओं को उचित है कि, वे ब्राह्मणों की रक्षा करने में सदा यत्नवान् हों। जिन राजाओं के राज्य में साधु जनों को कष्ट भोगने पड़ते हैं, वे राजा सब गुणों से रहित हो, अन्त में नरकगामी होते हैं। और जिन राजाओं के राज्य में साधुजनों की रक्षा का समुचित प्रबन्ध रहता है, उन राजाओं को इस लोक में सुख मिलता है और परलोक में भी वे परमसुखी रहते हैं। अतः हे द्विजों ! तुम जान रखो कि, महात्मा विद्वान् पुरुष ही इस विश्व के ऐश्वर्यों को प्राप्त करते हैं।

हे द्विजों ! अब मैं तुम्हें धर्मादि के लक्षण सुनाता हूँ। धर्म का लक्षण है अहिंसा और अधर्म का लक्षण है हिंसा। देवताओं का लक्षण है प्रकाश। मनुष्यों का लक्षण है कर्म। आकाश का लक्षण है शब्द। वायु का लक्षण है स्पर्श। अग्नि का लक्षण है रूप। जल का लक्षण है रस। सब का पालन पोषण करने वाली पृथिवी का लक्षण है गन्ध। स्वरों और व्यञ्जनों से संस्कारित सरस्वती का लक्षण है शब्द। मन का लक्षण है चिन्ता। शरीर में मन सब विषयों पर चिन्तवन करता है और बुद्धि उनका निश्चय किया करती है। अतः निश्चय द्वारा बुद्धि मालूम पड़ती है। मन का लक्षण है ध्यान। साधु का लक्षण है अव्यक्त। योग का लक्षण है प्रवृत्ति। ज्ञान का लक्षण है संन्यास। इसीसे बुद्धिमान् लोग ज्ञान को आगे कर, संन्यास ग्रहण किया करते हैं। संन्यासी लोग ज्ञानयुक्त होने पर, द्वन्द्वातीत हो, तथा जरा अतिक्रम कर, परमगति पाते हैं। हे द्विजों ! मैंने तुम लोगों के आगे विधिपूर्वक धर्म तथा उसके लक्षणादि का वर्णन किया—अब मैं तुम्हें इन्द्रियों और उनके द्वारा ग्रहण किये जाने वाले विषयों का वर्णन सुनाता हूँ। सुनो। नासिका, पृथिवी के गुण गन्ध को ग्रहण करती हैं। नासिकास्थित वायु गन्ध ग्रहण में नासिका को सहायता देती है। जल के गुण रस को जिह्वा ग्रहण करती और जिह्वास्थित सोमरस उस रस को ग्रहण करने में जिह्वा को सहायता देता है। अग्नि के गुण रूप को नेत्र

ग्रहण करते हैं, और नेत्र आदित्य रूप ग्रहण करने में नेत्रों को सहायता देते हैं। वायु के गुण स्पर्श को त्वचा ग्रहण करती है और त्वचास्थित वायु उस स्पर्श ज्ञान का साधक होता है। आकाश के गुण शब्द को कान ग्रहण करते हैं और कर्णस्थित दिशाएँ, शब्द गुण को ग्रहण करने में कानों की सहायता किया करती हैं। मन के गुण चिन्ता को प्रज्ञा ग्रहण करती है और मनस्थित सारभूत चेतना, चिन्ता को ग्रहण करने में प्रज्ञा के अनुकूल रहती है। जैसे पञ्च महाभूत और इन्द्रियाँ, कारणान्तर द्वारा गृहीत हुआ करते हैं, वैसे ही बुद्धिरूपी अध्यवसाय के द्वारा और महान् निजस्वरूप के ज्ञान से महान् शुद्ध सतोगुण रूप प्राप्त होता है। यद्यपि निश्चयात्मक रूप से बुद्धि और महत्तत्व का प्राप्त करना प्रकट है; तथापि उसका अव्यक्त रूप विदित नहीं होता। इसी लिये नित्य एवं निर्गुणात्मक क्षेत्रज्ञ किसी प्रकार के चिह्न से गृहीत न होने के कारण, वह चिह्नशून्य है अथवा केवल उपलब्धि स्वरूप है। स्थूल एवं सूक्ष्म शरीरों में स्थित सत्वादि गुणों की उत्पत्ति और विनाश के कारण उस अव्यक्त को, मैं सदा विलीन रूप से देखता ही नहीं; किन्तु जानता और सुनता भी हूँ। उस अव्यक्त सहित क्षेत्र को पुरुष जानता है, इसी लिये पण्डित लोग उसे क्षेत्रज्ञ कहा करते हैं। वही क्षेत्रज्ञ, प्रकाश, प्रवृत्ति और मोहादि तथा चरित्रों को चारों ओर से देखता है। बारंबार विपरीतरूप धारण करने वाले गुण निर्विकार कूटस्थ आत्मा को नहीं जान पाते; किन्तु क्षेत्रज्ञ उसे जान लेता है। अतः धर्मज्ञ मनुष्य इस लोक में गुण और सत्व को त्याग, दोषशून्य अथवा गुणातीत हो कर, क्षेत्रज्ञ में प्रवेश करे। क्योंकि वह क्षेत्रज्ञ ही निर्द्वन्द्व, श्रेष्ठ, नमस्कार एवं स्वाहाकार से रहित, निश्रेष्ठ और स्थान से रहित, श्रेष्ठ-तर और सब का प्रभु है।

चालीसवाँ अध्याय

देवता, नाग, नर, पशु, पक्षी, ग्रह, नक्षत्रादि का वर्णन

ब्रह्मा जी बोले कि अब मैं तुम्हें उनका वर्णन सुनाता हूँ, जो जन्म मरण के बन्धन में बँधे हुए हैं और जो नाम लक्षण से युक्त हैं।

आदि में दिन, अनन्तर रात, तदनन्तर शुक्लादि पक्ष, श्रवणादि नक्षत्र, शिशिरादिक ऋतुएँ उत्पन्न होती हैं। गन्ध को उत्पन्न करने वाली पृथिवी है। रस को उत्पन्न करने वाला जल है। रूप का जन्म ज्योतिर्मय आदित्य से, स्पर्श का वायु से और शब्द का जन्म आकाश से होता है। ये ही पञ्च महाभूत कहलाते हैं। अब मैं जीवों के उत्तमादि रूपों का वर्णन करता हूँ।

समस्त तेजस्वी पदार्थों का आदि सूर्य, चारों प्रकार के जीवों का आदि जठराग्नि कहलाता है। सब विद्याओं की आदि सावित्र से है और देवताओं में सर्वप्रथम उत्पत्ति प्रजापति की है। समस्त वेदों का आद्यक्षर प्रणव है। वचनों का आदि प्राण है। इस संसार में जपने योग्य समस्त मंत्रों में सावित्री ही जप करने योग्य है। सर्व प्रथम छंद गायत्री है। पशुओं में प्रथम अज है। चौपायों में गौ है। मनुष्यों में प्रथम ब्राह्मण हैं। पक्षियों में बाज, यज्ञों में प्रथम हवन है। हे ऋषियों! विषधर बिच्छू आदि जन्तुओं में सर्प सब से बड़ा है। सब गुणों का आदिकाल सतयुग है। सब रत्नों में प्रथम गणनीय सुवर्ण है। अन्नों में यव (जवा) है। भक्ष्य भोज्य समस्त पदार्थों में अन्न उत्तम है। समस्त पेय पदार्थों में जल सर्वश्रेष्ठ है। स्थावर पदार्थों में ब्राह्मण शरीर की तरह सदा पवित्र प्लक्ष अश्वत्थ वृक्ष है। मैं समस्त प्रजापतियों में सर्वज्येष्ठ हूँ। पर्वतों में उत्तम पर्वत महामेरु है। समस्त दिशाओं में प्रथम दिशा पूर्व है। नदियों में त्रिपथगामिनी गङ्गा श्रेष्ठ है। जलाशयों में सर्वश्रेष्ठ समुद्र है। देव, दानव, भूत, पिशाच, उरग, राक्षस, नर, किन्नर और यक्ष जाति के प्रभु ईश्वर हैं। ब्रह्ममय विष्णु

ही संसार के आदि कारण हैं। क्योंकि त्रिलोकी में उनसे बढ़ कर श्रेष्ठ और कोई है ही नहीं। आश्रमों में गृहस्थाश्रम से बढ़ कर अन्य कोई आश्रम नहीं है। निस्सन्देह समस्त लोकों का आदि और अन्त वही अव्यक्त है। दिन का अन्त सूर्यास्त काल और रात्रि का अन्त सूर्योदय काल है। सुख का अन्त दुःख और दुःख का अन्त सुख है। ये सब पदार्थ नाशवान् और क्षयशील हैं। उन्नति के अन्त में अवनति, संयोग के अन्त में वियोग, जन्म के अन्त में मरण है। सब कर्मों के फल नाशवान हैं। इस संसार के यावत् स्थावर जङ्गम पदार्थ अनित्य हैं। यज्ञ, दान, तप, स्वाध्याय,—ये सभी विनाशी हैं। किन्तु ज्ञान अनन्त है, ज्ञान का अन्त नहीं है। इसीसे जो लोग जितेन्द्रिय, प्रशान्त चित्त, निरहङ्कारी, निर्भय हैं—वे केवल ज्ञान के द्वारा सब पापों से छूट जाया करते हैं।

पैंतालीसवाँ अध्याय

ज्ञान और अज्ञान

ब्रह्मा जी बोले—हे ऋषिगण! जिसकी बुद्धि सार स्वरूप, मन स्तम्भ स्वरूप, इन्द्रियाँ ग्राम बन्धन रज्जुरूपी, और जो पञ्चभूत समूहात्मक है, जिसका निवेश परिवेशन है, जो जरा शोक से घिरा हुआ है, जो व्याधियों और विपत्तियों की उत्पत्तिस्थली है; जो देश और काल के साथ बिचरने वाला है, दुर्गमस्थान में गमन जनित श्रम का शब्द जिसको रात दिन घुमाया करता है, जो चारों ओर से गर्मी सर्दी से घिरा हुआ है, सुख और दुःख जिसकी सीमा है, क्लेश जिसका संश्लेष है, भूख और प्यास जिसके अन्तः प्रविष्ट आरे हैं, छाया और धूप जिसके रन्ध्र हैं, जो निमेष तथा उन्मेष से आकुल तथा भयङ्कर मोहरूपी जल से आकीर्ण, सदा गमनशील, अचेतन, जड़स्वरूप, मासादि समय से परिमित, अनेक रूपधारी, ऊपर, नीचे और बीच के लोकों में बिचरने वाला, तमोगुण के कारण

मलिनता से युक्त, रजोगुण से विहित और निषिद्ध कर्मों में प्रवृत्त, महा-अहङ्कार से प्रदीप्त, सत्वादि गुणों में अवस्थित, शोक और दुःख से जीवित, क्रिया और कारण से युक्त है, जिसका आयत (लंबाई चौड़ाई) अनुराग है, जिसका ऊपरी और नीचे का भाग लोभ और तृष्णा है; जो माया से उत्पन्न है, जो भय और मोह से घिरा हुआ है, जो प्राणिमात्र को मोह में पटकने वाला है, जो वाह्य सुख, आनन्द और प्रीति के साथ विचरा करता है, काम और क्रोध जिसका मूल है; महदादि विशेष जिसका अन्त है, वह बिना रोकटोक घूमने वाला, संसार का कारण, अव्यय स्वरूप, मन जैसा वेगवान् और अत्यन्त मनोहर कालचक्र सदा घूमा करता है। मान अपमान एवं द्वन्द्वयुक्त यह अचेतन कालचक्र स्वर्ग सहित समस्त संसार को उत्पन्न करता है, संहार करता है और प्रबोधित करता है। जो कोई मनुष्य इस कालचक्र की प्रवृत्ति और निवृत्ति को भली भाँति जान लेता है, वह मुग्ध नहीं होता। प्रत्युत वह समस्त द्वन्द्वों से रहित; सर्वसंस्कार युक्त तथा समस्त पापों से छूट कर, परमगति प्राप्त करता है।

गृहस्थ, ब्रह्मचारी, बाणप्रस्थ और भिक्षुक—ये चारों आश्रम गार्हस्थ्य-मूलक हैं। इस लोक में विधि-निषेधात्मक जो शास्त्र हैं, उनको मानना और उनके अनुसार चलना कल्याणकारी है। प्रथम संस्कारों से संस्कृत विधि के अनुसार, व्रतों का पूर्ण रीत्या अनुष्ठान कर के, गुरुकुल से लौटे। तदन्तर इस लोक में निज पत्नी में रत रह के, जितेन्द्रिय तथा श्रद्धावान् हो कर, पञ्चमहायज्ञों का अनुष्ठान करता हुआ देव, पितृ और अतिथि का पूजन किया करे। देवताओं और अतिथियों के भुक्तावशिष्ट अन्न को स्वयं खाया करे। देवकर्म में सदा रत रहे और शक्त्यानुसार सुख पूर्वक यज्ञ तथा दानकर्म में नियुक्त होवे। मननशील मनुष्य हाथ, पाँव, नेत्र तथा वाणी से चपल न हो—क्योंकि ऐसा न करना शिष्ट पुरुषों का लक्षण है। सदा यज्ञोपवीत और सफेद वस्त्र पहिने। पवित्र व्रतों का अनुष्ठान करे और यम नियम के पालन में तत्पर रह, दान करे और सदा शिष्ट जनों के साथ रहे।

शिश्न और उदर को अपने वश में करने वाला और शिष्टाचार युक्त हो, ब्रह्मचारी जल से भरा कमण्डलु तथा बाँस की लाठी अपने पास रखे। अध्ययन अध्यापन, यजन याजन, दान और प्रतिग्रह इन छः प्रकार की वृत्ति का ब्राह्मण को अवलम्बन करना चाहिये।

हे द्विजगण ! याजन, अध्यापन और शुद्ध प्रतिग्रह ब्राह्मण इन तीन कर्मों से अपनी जीविका करे। धर्मज्ञ, दान्त, मैत्र, क्षमा युक्त, सब को एक सा देखने वाला और मननशील मनुष्य को दान देने, अध्ययन करने और यज्ञानुष्ठान में कभी प्रमाद न करना चाहिये। पवित्र मन, एवं संशितव्रती गृहस्थ ब्राह्मण अपनी शक्ति के अनुसार, इन सब कर्मों को नियम पूर्वक पूर्ण करने तथा इनमें संलग्न रहने से स्वर्ग को जय करता है।

छियालीसवाँ अध्याय

गुरु-शिष्य संवाद

ब्रह्मा जी बोले—इस प्रकार पूर्व वर्णित विधि के अनुसार ब्रह्मचारी वेदाध्ययन करे। स्वधर्मरत, जितेन्द्रिय, गुरुप्रिय तथा हितकारी, सत्यधर्मपरायण, पवित्र चित्त, हविष्य एवं भिक्षान्नभुक् स्थानासन-विहारवान विद्वान्, मननशील मनुष्य गुरु से अनुमति ले और भोज्य वस्तुओं की निन्दा न करता हुआ भोजन करे। पवित्र तथा समाहित हो कर, बेल व पलास का दण्ड धारण कर के दोनों समय अग्नि में आहुति दे। गेरुआ अथवा लाल रंग का रेशमी अथवा सूती वस्त्र अथवा मृगचर्म धारण करे। मूँज की करधनी और जटा धारण करे। जल सदा पास रखे। वेद का अध्ययन करे। लोभ किसी वस्तु का न करे। यज्ञोपवीत सदा पहिने रहै और अपने आश्रमोचित व्रतों के नियमों का पालन करता रहे। इस प्रकार से रहने वाला ब्रह्मचारी पवित्र जल द्वारा देवताओं का तर्पण करे। क्योंकि जो ब्रह्मचारी संयत हो, प्रीतिपूर्वक इस प्रकार के आचरणों से युक्त होता है—वह

प्रशंसित समझा जाता है। ऊर्द्धरेता ब्रह्मचारी समाहित हो कर, इस प्रकार का आचरणशील होने से स्वर्ग जय करने में समर्थ होता है। वह परमपद प्राप्त करता है और अपनी जाति के संहार का कारण नहीं बनता। ब्रह्मचर्य व्रत-धारी मननशील मनुष्य समस्त संस्कारों से संस्कृत तथा निज ग्राम से बाहिर रह कर, संन्यासी रूप से वन में निवास करे। मृगचर्म और बल्कल वस्त्र पहिन कर, प्रातः सायं स्नान करे और वन में रहे—बस्ती के भीतर (सायं प्रातः) न आवे। फल, पत्र, मूल, श्यामाक से अपना निर्वाह करता हुआ, यथासमय आये हुए अतिथियों का सत्कार कर उन्हें ठहरावे। दीक्षानुसार अतन्द्रित हो कर, उपस्थित, जल, वायु और वन्य फल मूलादि खावे। वन-वासी मुनि को तथा समागत अतिथियों का अतन्द्रित हो सदैव फल मूल की भिक्षा से सत्कार करे और जो कुछ भिक्षा में मिले, उससे कुछ अंश निकाल कर दूसरों को भिक्षा में दे। वाणी को अपने वश में रखने वाला, ईर्ष्या से शून्य मन वाला, देवताओं के आश्रित रहने वाला आशीर्वाद पा कर, देवताओं तथा अतिथियों का पूजन कर चुकने बाद स्वयं भोजन करे।

वाणप्रस्थ मनुष्य सब का मित्र बने, क्षमा युक्त हो, सत्य-धर्म-परायण और स्वाध्यायशील हो। उसे सिर के या दाढ़ी मूछ के बाल बढ़ाने चाहिये। उसे नित्य हवन करना चाहिये और सदा पवित्र रहना चाहिये। ऐसा दक्ष, वननिरत एवं समाहित चित्त एवं जितेन्द्रिय पुरुष स्वर्ग को जय किया करता है। गृहस्थ, ब्रह्मचारी, वाणप्रस्थ, पुरुषों में जो कोई मोक्षमार्ग अवलंबन करने की इच्छा रखने वाला हो, उसे उत्तम वृत्ति का अवलम्बन करना चाहिये। उसे अपने को प्राणी मात्र को सुख देने वाला और सब का मित्र बनाना चाहिये। ऐसा जितेन्द्रिय और मननशील मनुष्य प्राणिमात्र को अभय प्रदान कर, निष्काम कर्म किया करे। मध्यान्ह के समय जब लोगों के घरों में आग बुझ जाय और लोग भोजन कर चुकें, तब भिक्षा माँगने जाय। बिना माँगे जो मिले उससे अपना पेट भर ले। भिक्षान्न किसी देवता के नाम से कल्पित न होना चाहिये। मोक्षवित् मनुष्य टूटे और पड़े हुए मिट्टी

के पात्र में भिक्षा मिलने की इच्छा करे। (सोने चाँदी के बरतनों में नहीं) फिर यदि भिक्षा मिल जाय तो मिलने के लिये प्रसन्न न हो और न मिले तो असन्तुष्ट भी न हो। जीवन निर्वाह करने की इच्छा रखने वाले भिक्षुक, समाहित हो कर और समय की उपेक्षा करते हुए भिक्षा माँगे; किन्तु साधारण लाभ ग्रहण करने की इच्छा न करे। न किसी पुरुष द्वारा समाहत हो, भोजन करे। क्योंकि जो भिक्षुक समादर के सहित भिक्षा पाता है वह निन्दा का पात्र बन जाता है। तीता, कडुआ और कसैला भोजन न करे। मधुररस युक्त भोज्य पदार्थ न खावे। केवल प्राण धारण के लिये भोजन करे। मोक्षवित् पुरुष प्राणियों को रुद्ध न कर के, वृत्तिलाभ की इच्छा करे और भिक्षा से निर्वाह करता हुआ, दूसरे के अन्न की कदापि अभिलाषा न करे। भिक्षुक कदापि ऐसा कोई कार्य न करे, जिससे उसका धर्म नष्ट हो। वह रजोगुण से रहित हो, मोक्षमार्ग में बिचरे। वह ऐसी जगह रहे, जहाँ कोई मनुष्य न हो, निर्जन वन में किसी वृक्ष के नीचे, अथवा किसी नदी के तट पर या किसी पर्वत की कन्दरा में वह रहे। ग्रीष्म काल में वह बस्ती में एक रात रहे, किन्तु वर्षाकाल आने पर वर्षा भर एक जगह रहे। अन्य ऋतुओं में सूर्योदय होते ही कीड़े की तरह अर्थात् धीरे धीरे चले। समस्त प्राणियों के प्रति दया प्रदर्शित करे और नीचे देखता हुआ पृथिवी पर चले। किसी वस्तु को संग्रह न करे और न किसी में अनुरागवान् हो। मोक्षवित् पुरुष को सदा पवित्र जल से स्नानादिक कार्य करने चाहिये। पीने अथवा आचमनादि के लिये कूए से जल खींच कर उसे काम में लावे। ऐसे पुरुष को उचित है कि, वह इन्द्रियों को वश में कर, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, सत्य, सरलता, अक्रोध, अनसूया, दम और अपिशुनता—इन आठ प्रकार के व्रतों में नियुक्त रह कर, ऐसे व्रतों को धारण करे जो शठता, पाप और कुटिलता से शून्य हों। बस्ती में जा कर निस्पृह हो भोज्य वस्तु की याचना करे और केवल प्राण धारण के लिये भोजन करे। धर्म से प्राप्त वस्तु को अपने काम में लावे। स्वेच्छा-

चारी न बने। कभी भी आवश्यकता से अधिक भोजन या वस्त्र न ले। वह न तो किसी से दान ले और न किसी को दान दे। अयाचित भाव दिखला कर परस्व ग्रहण न करे। किसी विषय को एक बार भोग कर चुकने पर, फिर उसमें स्पृहा न करे। मिट्टी, जल, अन्न, पत्र, पुष्प और ऐसे फल लेवे, जिन पर किसी का स्वत्व न हो। शिल्पवृत्ति द्वारा जीविका न करे। सुवर्ण प्राप्ति की कामना न करे। न तो किसी का उपदेष्टा हो और न किसी का द्वेष्टा बने। कभी आभूषणादि धारण न करे। अयाचित वृत्ति अवलंबन कर, समस्त विषयों में अनासक्त हो, केवल श्रद्धापूत वस्तुओं को खावे। शकुनों को न बतावे, न ज्योतिषी बन भूत, भविष्यत् वर्त्तमान बतलावे। न किसी को वरदान दे और न किसी को शाप दे। लोकसंग्रह भी न करे और न अन्य लोगों से अपने लिये लोकसंग्रह करावे। सब भावों को अतिक्रम कर के, दण्ड कमण्डलु आदि भिक्षुकों के लिये उपयोगी थोड़ा सा सामान साथ ले, भ्रमण किया करे। समस्त चराचर प्राणियों के विषय में समदर्शी हो।

जो लोग दूसरों को उद्वेग युक्त न कर और स्वयं भी किसी दूसरे से उद्वेग युक्त न हो कर, सब के विश्वासभाजन बनते हैं, वे ही उत्तम मोक्ष-वित् कहलाते हैं। काल की प्रतीक्षा करने वाला सावधान चित्त संन्यासी अपने अभ्युत्थान का विचार न करे। जो बात बीत गयी उसका सोच न करे और जो सामने हो उसके प्रति अनुरागवान् न बने। नेत्र, मन, या वाणी से कभी किसी को दोष न लगावे। प्रत्यक्ष या परोक्ष में कभी कोई बुरा काम न करे। सर्वतत्त्वज्ञ भिक्षुक, अङ्ग सङ्कोच करने वाले कछुवे की तरह, इन्द्रियों को सङ्कुचित कर, इन्द्रिय, मन तथा बुद्धि को क्षीण कर के निरीह, निर्द्वन्द्व, निर्नमस्कार, निःस्वाहाकार, निर्भय, निरहङ्कार, निर्विकार, निर्योग, क्षेम, निराशी, निर्गुण, निरासक्त, निराश्रय, आत्मवान्, शान्त, आत्मसंगी एवं तत्त्वज्ञ होने से निस्सन्देह मुक्ति लाभ करते हैं। जो पुरुष हाथ, पाँव, पीठ, सिर और पेट से गुण तथा कर्म विहीन, निर्म्मल,

अद्वितीय, अविनश्वर, गन्ध-रस-स्पर्श-रूप-शब्द रहित, अनुगम्य, अनासक्त, निश्चिन्त, अव्यय, दिव्य, सदैव निर्विकार, रूपान्तर दशा रहित, और सब जीवों में व्याप्त उस आत्मा को देखते हैं, वे मरते नहीं—अर्थात् जीवनमुक्त होते हैं। उस आत्मा में बुद्धि, इन्द्रिय, देवता, वेद, यज्ञ, तपस्या, व्रत एवं समस्त लोक प्रवेश नहीं कर सकते। ज्ञानियों को दण्ड कमण्डलु आदि चिन्ह विशेषों को धारण करने की भी आवश्यकता नहीं। वे धर्मज्ञ इन्हें धारण न कर के धर्माचरण करें। धर्माचरण-परायण पुरुष को गुप्त रूप से धर्माचरण करना चाहिये। उसे उचित है कि, वह मूढ़ों की तरह धर्म में दोष न लगावे और किन्तु ज्ञानी हो कर भी अपने को ज्ञानवान् प्रकट न करे। मानी भिक्षुक धर्म की निन्दा करने वाली वृत्ति को अवलम्बन कर के भी, साधुओं के धर्म की निन्दा न कर, धर्माचरण में प्रवृत्त बना रहे। जो लोग इस वृत्ति को धारण करते हैं, वे ही उत्तम मुनि कहलाते हैं। मन, बुद्धि, अहङ्कार, अव्यक्त और पुरुष—इन सब के तत्त्व को निश्चय कर और इन्हें भली भाँति जान लेने पर, जान लेने वाला पुरुष समस्त बंधनों से छूट जाता है और मरने बाद स्वर्ग में जाता है। निर्जन स्थान में जा कर, ध्यान करने से, आकाशचारी पवन की तरह, निरावलम्ब तथा सर्व-सङ्ग मुक्त हो, प्राणी गण मुक्त हो जाते है। वे क्षीण कोष एवं निरातङ्क हो कर, परब्रह्म को पा जाते हैं।

सैंतालीसवाँ अध्याय

ज्ञान और तप का माहात्म्य

ब्रह्मा जी बोले—आस्तिक वृद्ध जन, संन्यास को तप और ब्रह्म-योनिस्थ ब्राह्मण, ज्ञान को परब्रह्म समझते हैं। रजोगुण से रहित निर्मल-चित्त एवं पवित्र-स्वभाव-सम्पन्न धीर जन, ज्ञान एवं तप द्वारा अत्यन्त दुर्गम वेदविद्या के सहारे निर्द्वन्द्व, निर्गुण, नित्य, अचिन्त्य-गुण-सम्पन्न

अनुत्तम परब्रह्म का दर्शन किया करते हैं। संन्यासरत ब्रह्मवित् पुरुष तपस्या से भगवान् के मङ्गलमय पथ में गमन करते हैं। पण्डित लोग, तपस्या को प्रदीप और आचार को धर्म का साधन बतलाया करते हैं; किन्तु संन्यास एक उत्तम तप है और ज्ञान सर्वोत्कृष्ट है। जो पुरुष समस्त तत्वों का निश्चय कर, बाधाशून्य एवं ज्ञान स्वरूप, सर्वभूतस्थ परमात्मा को जान लेता है। वह सर्वत्रगामी हो जाता है। जो विद्वज्जन आत्मा के सहवास, निवास, एकत्व और अनेकत्व को अवलोकन करता है, वह दुःखों से छूट जाता है। जो जीव इस लोक में रह कर, न तो कोई कामना करता और न किसी की अवज्ञा करता है, उसे ब्रह्मत्व प्राप्त होता है। जो मनुष्य विधि, गुण, तत्व तथा समस्त भूतों के प्रधान को जान कर, अहङ्कार एवं ममता विहीन होता है, वह निश्चय ही मुक्ति लाभ करता है। समस्त गुणों और रूपों तथा कर्मों से उत्पन्न शुभाशुभ फलों को त्याग एवं सत्य मिथ्या को छोड़ने वाला पुरुष निस्सन्देह मुक्त होता है। वह बड़ा वृक्ष जिसका अङ्कुर और मूल अव्यक्त है, महतत्व जिसकी डाली है, महा अह-ङ्कार जिसके पत्ते हैं, जिसके छिद्रों में इन्द्रिय रूपी अङ्कुर हैं, पञ्चतत्व जिसके फूल हैं और सूक्ष्म महाभूतों की उत्पत्ति, जिसकी छोटी छोटी डालियाँ है; वह सदा पत्र, पुष्प और शुभाशुभ रूपी फलोदय युक्त सनातन ब्रह्म वृक्ष सब प्राणियों का जीवन मूल है। ज्ञानी लोग तत्वज्ञान रूपी खड्ग से इस वृक्ष को काट कूट कर, जन्म, मृत्यु, जरा एवं सङ्गमय पाशों को काट कर, तथा निर्मम तथा निरहङ्कारी बन, निश्चय ही मुक्त हुआ करते हैं। जीव और ईश्वर ये दोनों पक्षी परस्पर मित्र और प्राचीन रूप में लय होने वाले हैं। ये एक दूसरे की छाया पड़ने पर प्रकट होते हैं। इन दोनों से विशेष जो परब्रह्म है, वही चेतनावान् कह कर वर्णित है। जिन शरीरादिक उपाधियों से जीव पृथक् पृथक् गिने जाते हैं, उनसे छूट कर यह जीवात्मा उस पदार्थ को जो बुद्धि से परे है और क्षेत्रज्ञ हो कर बुद्धि आदि को चैतन्य करता है—प्राप्त किया करता है। वही क्षेत्रज्ञ सब बुद्धिगम्य

पदार्थों का ज्ञाता हो और समस्त गुणों से पृथक् हो, समस्त पापों से छूट जाता है।

अड़तालीसवाँ अध्याय

ब्रह्मरूपी उपासना

ब्रह्मा जी बोले—कितने ही मनुष्य वृक्ष और वन रूपी जगत् को ब्रह्ममय बतलाया करते हैं। कोई ब्रह्म को अव्यक्त, निर्विकार, परमात्मा कहता है और कोई प्रकृति को इस सारे जगत् की उत्पत्ति और लय का कारण मानता है। जो लोग मरते समय भी एक दम भर के लिये भी समदर्शी होते हैं, वे अपने हृदय में परमात्मा का दर्शन कर, मुक्ति प्राप्त कर लेते हैं। यदि कोई एक क्षण भर भी अपने शरीर में आत्मा को संयत कर सके, तो उसे परमात्मा के अनुग्रह से वह अक्षय्य परम गति प्राप्त होती है, जो पण्डितों को हुआ करती है। जो दस बारह बार प्राणायाम कर, प्राणवायु को बारंबार संयत करने में समर्थ होता है, वह चौबीसों तत्वों को तथा अव्यक्तातीत पच्चीस पुरुष को पा जाता है। इसी प्रकार पुरुष हर्षित हो जो कुछ चाहेगा—उसे वही मिल जायगा। किन्तु पुरुष में जब अव्यक्त लाभ होने के बाद सतोगुण का उदय होता है, तब वह अमृतत्व प्राप्त करता है।

हे द्विजसत्तमों! पण्डित लोग सत्त्व को छोड़ अन्य किसी को भी अत्यन्त उत्कृष्ट कह कर, प्रशंसा नहीं किया करते। क्योंकि जो पुरुष सतोगुणी न हो, तो उसे कोई जान ही नहीं सकता। क्षमा, धृति, अहिंसा, समता, सत्य, सरलता, ज्ञान, त्याग, संन्यास—ये सब सात्विकी वृत्तियाँ हैं। इन वृत्तियों की विशेषता अवगत होने पर, वह पुरुष जाना जा सकता है। मनीषी जन इसी प्रकार अनुमान के सहारे, सत्त्व और पुरुष में अभेद जानते हैं। इसमें और अधिक विचार करने की आवश्यकता नहीं है। किसी किसी ज्ञानसिद्ध पण्डित का यह कथन है कि, सत्त्व और क्षेत्रज्ञ पुरुष का

ऐक्य युक्तियों से सिद्ध हो ही नहीं सकता, इन दोनों का ऐक्य और पार्थक्य मुख्यता से जानना योग्य है। सतोगुण और पुरुष समुद्र और समुद्र की लहरों की तरह है। देखने से तो वे दोनों अलग अलग जान पड़ते हैं, किन्तु ऐसा है नहीं। जैसे लहरों के अदृश्य होने पर समुद्र रह जाता है; वैसे ही मोक्ष दशा में सतोगुण नियत नहीं रहता। इसी प्रसङ्ग में पण्डित लोग एक और उदाहरण देते हैं। जैसे गूलर फल और उसके भीतर रहने वाले भुनगा का ऐक्य और पार्थक्य देख पड़ता है, वैसे ही सत्त्व तथा पुरुष का एकत्व और अनेकत्व जानना चाहिये। जैसे मछली और जल का पार्थक्य है तथा जैसे कमल और जल की बूँदों का सम्बन्ध है, वैसे ही सत्त्व और पुरुष का सम्बन्ध समझना चाहिये।

गुरु बोला—जब लोकपितामह ब्रह्मा जी ने उन मुनियों से यह कहा; तब उन लोगों ने फिर संशयग्रस्त हो, ब्रह्मा जी से पूँछा।

उनचासवाँ अध्याय

धर्मसम्बन्धी प्रश्न

ऋषियों ने कहा—हे ब्रह्मन्! इस लोक में प्रवृत्ति और निवृत्ति धर्म रूप कर्मों में, किस कर्म का पूर्ण अभ्यास करना चाहिये, सो आप बतलावें। क्योंकि हमें विविध प्रकार की परस्पर विरोधिनी धर्मगतियाँ देख पड़ती हैं। (उदाहरणार्थ देखिये। कोई कहता है—देह नाश होने पर भी आत्मा का अस्तित्व बना रहता है।) (लोकायतों का मत है कि) देहान्त होने पर आत्मा का भी अन्त हो जाता है—उसका अस्तित्व नहीं रहता। इसे कोई मानता है और कोई इसमें सन्देह करता है। (मीमाँसक) आत्मा को नित्य (नैयायिक) अनित्य मानते हैं। शून्यवादी कहते हैं "अस्ति (है)' और सौगत लोग कहते हैं 'मानास्ति" (नहीं है)। योगाचारी एक रूप और द्विरूप बतलाते हैं। उड्लोम अनेक रूप अर्थात् भिन्न, अभिन्न

कहते हैं। तत्त्वदर्शी ब्रह्मज्ञ ब्राह्मण कहते हैं—एक ब्रह्म ही है और सगुण ब्रह्मोपासक ब्रह्म को पृथक् पृथक् मानते हैं। जो परमाणुवादी हैं, वे ब्रह्म का अनेकत्व (अर्थात् कारणों का आधिक्य) स्वीकार करते हैं। उधर ज्योतिर्विद् लोग देश और काल—दोनों को ब्रह्म कहते हैं। वृद्ध लोग कहते हैं कि, यह सब जगत् स्वप्न राज्यवत् केवल चिदात्मा का विलास है।

कोई कोई जटा-जिन-धारी हो, ब्रह्म की उपासना के पक्षपाती हैं तो कोई मूँड मुड़ा और असंवृत होना पसन्द करते हैं। कोई स्नान कर के और कोई स्नान किये बिना ही उपासना करते हैं। तत्त्वदर्शी ब्रह्मज्ञ ब्राह्मण पवित्र आचार को मुख्य मानते हैं। कोई कोई खा पी कर, उपासना में प्रवृत्त होते हैं तो कोई बिना खाये ही उपासना करते हैं। कोई कोई धर्म की प्रशंसा करते हैं; दूसरे मनुष्य शान्ति की प्रशंसा किया करते हैं। कोई देश तथा काल, कोई मोक्ष, कोई पृथग्विध भोगों की प्रशंसा करते हैं। कोई उपास्य के साधन धन की कामना करते हैं; कोई निधनत्व की अभिलाषा करते हैं। कोई ऐसे भी हैं जो किसी प्रकार की भी अभिलाषा नहीं करते। कोई अहिंसारत हैं तो कोई हिंसापरायण हैं। कोई पुण्य और यश प्राप्ति के लिये प्रयत्नवान् हैं, तो कोई पुण्य और यश को कुछ भी नहीं समझते। कोई सद्भाव में रत हैं तो कोई संशयग्रस्त हैं। कोई सुख की प्राप्ति के लिये और कोई दु:ख की निवृत्ति के लिये चिन्तित रहते हैं और कोई ऐसे भी हैं जो अनिच्छा फल कर्मफल को अच्छा समझते हैं। कोई ब्राह्मण यज्ञ, कोई दान, कोई तप और कोई स्वाध्याय की प्रशंसा करता है। कोई ज्ञान, कोई संन्यास की श्लाघा करता है। विभूतचिन्तक अथवा वस्तु-तत्त्व-विचारक स्वभाव की प्रशंसा करते हैं। कोई सब की, कोई किसी एक विषय की प्रशंसा करता है।

हे सुरसत्तम! इस प्रकार धर्म में अनेक प्रकार का ज्ञान और परस्पर वैपरीत्य होने पर, हम अज्ञानियों के लिये कोई बात निश्चय कर लेना सम्भव नहीं। कोई किसी को कल्याणप्रद और कोई किसी को अपने लिये श्रेयस्कर

समझ—जिसकी जो इच्छा होती है, वह वही किया करता है। इसीसे हम लोगों की बुद्धि विचलित हो रही है और हमारा मन चारो ओर दौड़ता है। हे सुरसत्तम! अतः वास्तव में कल्याण क्या है—वह आप हम लोगों को बतलावें। साथ ही इस सम्बन्ध का जो गुह्य विषय हो, वह भी बतलावें। सत्व तथा क्षेत्रज्ञ का सम्बन्ध किस कारण से होता है। उन ऋषियों के ऐसे वचन सुन कर, ब्रह्मा जी ने उनसे कहा था।

पचासवाँ अध्याय

ऋषियों के प्रश्नों के उत्तर

ब्रह्मा जी बोले—हे ऋषियों! तुम्हारे प्रश्न अत्युत्तम हैं। मैं तुम्हें इन प्रश्नों के उत्तर वैसे ही दूँगा, जैसे गुरु किसी उपयुक्त शिष्य को पा कर दिया करता है। अब तुम सावधान हो कर सुनो और सुनने के बाद पूर्ण-रीत्या स्वयं विचार कर निश्चय करो।

सब प्राणियों के विषय में अहिंसा ही सर्वश्रेष्ठ कर्म है। यह साधुसम्मत है और धर्म का सर्वोत्तम लक्षण है। इसमें ज़रा भी सन्देह नहीं है। निश्चितदर्शी बड़े बूढ़े लोगों ने ज्ञान को मोक्ष का साधन बतलाया है। क्योंकि ज्ञान द्वारा प्राणी समस्त पापों से मुक्त हो सकते हैं। जो लोग हिंसापरायण हैं, नास्तिक हैं, लोभ और मोह के वशवर्त्ती हैं, वे नरकगामी हैं। जो लोग आनन्दित हो कर शुभ कर्म करते हैं, वे लोग बार बार जन्म ग्रहण करते हुए प्रमुदित हुआ करते हैं। जो पण्डित लोग श्रद्धापूर्वक धर्म कर्म करते हैं—वे ही बुद्धिमान् और सदाचारी कहलाते हैं।

हे ऋषियों! अब मैं तुम्हें यह बतलाता हूँ कि, सत्त्व और क्षेत्रज्ञ का संयोग और वियोग किस प्रकार होता है। सत्त्व और क्षेत्रज्ञ का वैसा ही सम्बन्ध है, जैसा विषय और विषयी भाव का। सत्त्व विषय है और क्षेत्रज्ञ अथवा पुरुष को विषयीभाव जानो। जैसे भुनगे और गूलर के फल का भोग्य

और भोक्तृभाव सम्बन्ध है; वैसा ही सत्त्व और पुरुष का भोग्य और भोक्तृभाव सम्बन्ध है। जड़ सत्त्व भोक्ता पुरुष के द्वारा भुज्यमान हो कर, अपने को नहीं जान सकता। किन्तु भोक्ता पुरुष भुनगों की तरह भुज्यमान सत्त्व को तथा निज को जान सकता है। पण्डित सत्त्व को सुख दुःखादि द्वन्द्वयुक्त बतलाते हैं और पुरुष को वे नित्य, निर्द्वन्द्व, निष्फल, निर्गुणात्मक और क्षेत्रज्ञ कहा करते हैं। सर्वत्र उपस्थित, असङ्ग एवं अधिष्ठानभूत वह परम पुरुष अध्यस्त भूत सत्त्व के समसंज्ञत्व को पा कर, जलोपयोगी कमलपत्र की तरह, सत्त्व का सदा उपभोग किया करता है। विद्वान् पुरुष सब प्रकार गुण द्वारा ओतप्रोत होने पर भी, कमलपत्र पर स्थित चञ्चल जलविन्दु की तरह, उसमें लिप्त नहीं होता। अतः पुरुष के असङ्ग होने में कुछ भी सन्देह नहीं है। यह निश्चित है कि, सत्त्व पुरुष का द्रव मात्र है। सत्त्व और पुरुष दोनों मिल कर, द्रव्य मात्र हुआ करते हैं। जैसा कर्त्ता और द्रव्य का सम्बन्ध है, वैसा ही सम्बन्ध सत्त्व और पुरुष का है। जैसे मनुष्य दीपक ले कर अँधेरे में चला जाता है, वैसे ही परमपद की कामना रखने वाले जन, सत्त्वरूपी प्रदीप के प्रकाश में गमन करते हैं। जब तक तेल और बत्ती वर्त्तमान रहती है; तब तक दीपक जलता है; किन्तु तेल के निघट जाने पर, दीपक बुझ जाता है। जैसे तेल और बत्ती से युक्त दीपक घर में, बाहिर तथा अपने चारों ओर प्रकाश फैलाता है, वैसे ही तेल तथा बत्ती के क्षीण होने पर, स्वयं बुझ भी जाता है। इसी प्रकार सत्वगुण कर्म के द्वारा चरम वृत्ति के रूप में प्रकट हो पुरुष तथा अपने को पृथक् रूप से प्रकाशित करता है और कर्म शेष होने पर, स्वयं अन्तर्हित हुआ करता है। हे विप्रगण! इस विषय को मैं तुम लोगों से विशेष रूप से अन्य प्रकार कहता हूँ। सुनो।

दुर्बुद्धि मनुष्य सहस्रों बार उपदेश देने पर भी नहीं समझ सकता। किन्तु बुद्धिमान् जन चौथी बार उपदिष्ट होने पर, उस विषय को हृदयङ्गम कर, सुख का अनुभव किया करता है। इसी प्रकार उपाय द्वारा धर्म के साधन को

विशेष रूप से अवगत कर ले। क्योंकि उपाय जानने वाले बुद्धिमान् जन ही को अत्यधिक सुख की प्राप्ति हुआ करती है। प्रसन्न चित्त होने पर भी जैसे पथिक पाथेय के पास न होने पर, महत् कष्ट से यात्रा करता है और कभी कभी रास्ते में विनष्ट भी हो जाता है, वैसे ही ज्ञान के साधक कर्मों से फल उत्पन्न होते हैं तथा विनष्ट भी होते हैं। परन्तु पुरुष का कल्याण उसके चित्त ही में है और शुभाशुभ कर्म दृष्टान्त रूप हैं। पुरुष का प्रभूत पुण्य सञ्चित होने पर, सम्पूर्ण भोग प्राप्त होता है और अल्प पुण्यसञ्चित होने से मृत्यु प्राप्त होती है। तत्त्व-दर्शन-हीन मनुष्य अदृष्ट के अनुसार पैदल, जिस मार्ग को दीर्घकाल में तय करता है, तत्व-दर्शी जन, शीघ्रगामी रथ के द्वारा उस रास्ते को शीघ्र तय कर लिया करते हैं। अतः बुद्धिमानों की ऐसी ही गति जाननी चाहिये। पुरुष पर्वत के ऊपर चढ़ के भूतकाल को न देखे अर्थात् परमपद प्राप्त होने पर शास्त्र एवं शास्त्रविहित कर्मों का परित्याग कर दे। विद्वान् मनुष्य कर्म से सन्तप्त आत्मा को देखते हुए, जब तक कर्म विनष्ट न हों, तब तक कर्ममार्ग ही में गमन करे। किन्तु कर्म के विनष्ट होने पर कर्ममार्ग को त्याग कर, ज्ञानमार्ग पर गमन करे।

तत्व योग के विधान को जानने वाले गुणज्ञ बुद्धिमान् जन, इसी प्रकार संन्यासाश्रम से क्रमशः उत्तरोत्तर हंस, परमहंस आश्रम को पूर्ण रीति से जान कर, गमन करें। नौका रहित पुरुष मोहित हो, बाहुबल से तैर कर पार होने का प्रयत्न करता हुआ थक कर, बीच ही में मर जाता है; किन्तु विभागवित् योगी डाँडों से युक्त नौका के सहारे जलयात्रा करता हुआ, बिना थके समुद्र के पार हो जाता है। मैं पहले पैदल और रथी का दृष्टान्त दे चुका हूँ। तदनुसार ममतारहित मनुष्य तट पर नौका को छोड़ तट पर गमन करता है। जैसे नाव खेने वाला केवट मोहवश नौका ही में घूमता फिरता रहता है, वैसे ही पुरुष ध्यान योग प्राप्त न करने के कारण मूढ़तावश गुरु के निकट घूमा करता है। जैसे नौकारूढ़ पुरुष स्थल पर नहीं घूम सकता, वैसे ही रथारूढ़ पुरुष जल पर भ्रमण नहीं कर सकता। इसी प्रकार धर्माधिकारी

को योग और योगाधिकारी को कर्म करना उचित नहीं। पृथक् पृथक् आश्रमों के लिये पृथक् पृथक् कर्म निर्दिष्ट हैं। इस लोक में जो जैसा कर्म करता है, उसे वैसा ही फल मिलता है।

हे ऋषियों! जो इन्द्रियों के गन्ध, रस, रूपादि विषयों से परे है, विद्वान् मुनिगण उसे प्रधान कहा करते हैं। वही प्रधान अव्यक्त है। उस अव्यक्त प्रधान का महान् गुण है। उस महत् रूप प्रधान भूत का गुण अहङ्कार है। अहङ्कार से आकाश आदि पञ्चमहाभूतों की उत्पत्ति होती है। शब्दादि प्रत्येक विषय पञ्चमहाभूतों के गुण कहलाते हैं। उसी अव्यक्त को सृष्टि का कारण और कार्य रूपी समझना चाहिये।

सुनते हैं कि महात्मा, महान् अहङ्कार तथा पन्चमहाभूत ये सभी बीजधर्मा तथा प्रसवधर्मा कहलाते हैं। पण्डित जन शब्दादि विषयों को भी बीजधर्मा और प्रसवधर्मा कहते हैं। चित्त उनका व्यावर्तक (घेरने वाला) है। पन्चमहाभूतों में आकाश में एक, वायु में दो, अग्नि में तीन, जल में चार और सर्वभूतकारी, शुभाशुभ निदर्शनी तथा चराचरों से परिपूर्ण पृथिवी में पाँच गुण हैं।

हे द्विजगण! शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, ये पाँचों पृथिवी के गुण हैं। गन्ध पार्थिव गुण है, जिसका वर्णन अनेक प्रकार से किया जाता है। अतः मैं तुम्हें गन्ध के समस्त गुणों का वर्णन विस्तारपूर्वक सुनाता हूँ। इष्ट, अनिष्ट, मधुर, अम्ल, कटु, निर्हारी, संहत, स्निग्ध, रूक्ष और विपद—दस प्रकार की पार्थिव गन्ध है। शब्द, स्पर्श, रूप और द्रव्य—ये जल के गुण हैं। किन्तु रस कई प्रकार का माना गया है। उस रसज्ञान का मैं विस्तार पूर्वक वर्णन करता हूँ। मीठा, खट्टा, कड़वा, चरपरा, कसैला और खारा—छः प्रकार के रस होते हैं। ये तरल कहलाते हैं। शब्द, स्पर्श और रूप—ये तीन गुण अग्नि के हैं। अग्नि के गुण और रूप भी कई प्रकार के माने गये हैं। सफेद, काला, लाल, नीला, पीला, अरुण, ह्रस्व, दीर्घ, कृश, स्थूल, चौकोन और गोल—ये बारह प्रकार के अग्नि के रूप हैं।

इसी प्रकार शब्द और स्पर्श का भी विशेष वर्णन सत्यवादी ब्राह्मण किया करते हैं। वायु में दो गुण माने गये हैं। वायु के स्पर्श गुण के कई भेद हैं। कठोर, चिकना, श्लक्ष्ण, पिच्छिल, दारुण और मृदु आदि बारह प्रकार के वायु के गुण हैं।

इसके अतिरिक्त, हमने सुना है कि, आकाश में भी एक गुण है। वह है शब्द। शब्द भी कई प्रकार का है। जैसे षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पञ्चम, निषाद, धैवत, इष्ट, अनिष्ट और संहत—ये दस प्रकार के शब्द आकाश में उत्पन्न होते हैं। सब तत्वों में आकाश है। आकाश से उत्तम अहङ्कार है। अहङ्कार से उत्तम बुद्धि है। बुद्धि से उत्तम आत्मा है। आत्मा से उत्तम अव्यक्त है और अव्यक्त से श्रेष्ठ पुरुष (क्षेत्रज्ञ) है। जो लोग उन समस्त तत्वों के परापर को तथा समस्त कर्मों की विधि को विशेष रीति से जानते हैं, वे समस्त तत्वों के आत्मा रूप अव्यय परमात्मा को पाते हैं।

इक्यावनवाँ अध्याय

अनुगीता वर्णन

ब्रह्मा जी कहने लगे—पञ्चभूतों की उत्पत्ति, स्थिति और विनाश के विषय में मन प्रधान माना गया है। मन पञ्चमहाभूतों तथा महतत्व का अधिष्ठाता है और बुद्धि मन का ऐश्वर्य है। वही मन क्षेत्रज्ञ कहलाता है। जैसे उत्तम सारथि चञ्चल घोड़ों का नियंत्रण करता है, वैसे ही मन—इन्द्रियों का नियंत्रण करने वाला है। इन्द्रियाँ बुद्धि को सदा क्षेत्रज्ञ से युक्त किया करती हैं। भूतात्मा, शरीराभिमानी जीव, महत्तत्व और इन्द्रिय रूपी घोड़ों से तथा बुद्धि रूपी सारथी से युक्त रथ पर सवार हो, सर्वत्र भ्रमण किया करता है। जिसमें अपने अधीन की हुई इन्द्रिय रूपी घोड़े जुते हैं, जिसका मन सारथि और बुद्धि चाबुक है, उस ब्रह्म के विकारभूत शरीर को

महारथ जानना चाहिये । जो योगी जन इस ब्रह्ममय रथ का रहस्य भली भाँति जानते हैं—वे कभी मोहित नहीं होते । आदिभूत, अव्यक्त और शेष स्वरूप विशेष युक्त स्थावर और जङ्गममय, चन्द्र और सूर्य की प्रभा से प्रकाशवान्, ग्रहों तथा नक्षत्रों से मण्डित, नदियों तथा पर्वतों से विभूषित, जल से विविध प्रकार से अलङ्कृत, सर्वभूतों का जीवन स्वरूप, तथा समस्त प्राणियों का गति स्वरूप, परब्रह्म जिसमें सदा विराजमान रहता है; उसीमें क्षेत्रज्ञ बिचरा करता है । इस लोक में स्थावर जङ्गम आदि समस्त सत्व-प्रथम लीन होते हैं । फिर सूक्ष्म शरीरारम्भक पञ्चमहाभूत लीन होते हैं । तदनन्तर पञ्चमहाभूतों के शब्दादि गुण लीन होते हैं । ये ही दो शरीररूपी भूत समुच्छ्रय हैं । देवता, मनुष्य, गन्धर्व, पिशाच, असुर और राक्षस—ये सब स्वभाव से उत्पन्न होते हैं । इनकी उत्पत्ति क्रिया या कारण से नहीं होती ।

हे विप्रगण ! जैसे समुद्र से उठी हुई लहरें, यथासमय उसीमें लीन हो जाती हैं, वैसे ही विश्व की रचना करने वाले मरीच्यादि प्रजापति—पञ्चमहाभूतों से उत्पन्न हो कर, उन्हींमें लीन हो जाते हैं । किन्तु विश्व की सृष्टि करने वाले—भूतों के लय होने पर भी पञ्चमहाभूत विद्यमान रहते हैं । पुरुष उन्हीं भूतों से छूटने पर, परमगति प्राप्त करता है । प्रजापति ने इच्छा मात्र से यह सारा जगत् रचा है । ऋषियों ने तपस्या के द्वारा देवत्व पाया है । फल-मूल भोगी सिद्ध मुनि साधनानुसार तप द्वारा समाहित हो कर, तीनों लोकों के दर्शन किया करते हैं । रोगविनाशिनी औषधियों तथा अनेक विद्याओं की सिद्धि भी तपस्या द्वारा ही हुआ करती है । क्योंकि साधन का मूल तो तप ही है । दुष्प्राप्य इन्द्रपद, दुराम्नाय वेदादि, दुराधर्ष व्याघ्रादि और दुरन्वय प्रलयादि—सब तप से सिद्ध होते हैं । अतः तप बड़ी कठिन साधना से सिद्ध होता है । मदिरा पीने वाले, चोर, भ्रूणहत्याकारी तथा गुरुतल्पगामी भी सुतप्त तप के प्रभाव से इन महापातकों से मुक्त हो जाते हैं । तपस्या-परायण पुरुष तपोबल ही से सिद्धि को प्राप्त होता है । महामाया विशिष्ट देवताओं ने तपोबल ही से स्वर्ग पाया है ।

जो लोग आलस्य छोड़ कर, शुभ कर्मानुष्ठान करते हैं। वे अहङ्कार से मुक्त पुरुष प्रजापति के लोक में जा निवास करते हैं। जो महात्मा पुरुष केवल ध्यान योग करते हैं। वे ममतारहित तथा निरहङ्कारी हो कर, उत्तम महत् लोक प्राप्त करते हैं। प्रसन्न चित्त उत्तम आत्मज्ञानी पुरुष, ध्यान योग द्वारा—सदा लौकिक प्रकृति में प्रवेश किया करते हैं। ममता शून्य एवं निरहङ्कारी पुरुष ध्यान योग से निवृत्त हो–इस लोक में अव्यक्त में प्रवेश कर, उत्तम महत् लोक पाते हैं। जो अव्यक्त रूप से प्रकट होते हैं, वे अव्यक्त रूप ही में प्रवेश करते हैं। जो पुरुष रजोगुण और तमोगुण से मुक्त होता है, वह केवल सतोगुण के सहारे समस्त पापों से छूट कर, जगत् की रचना करता है। उसे ही निष्फल क्षेत्रज्ञ ईश्वर जानना चाहिये। उसे जो जान लेता है, वही वेदों को भी जान सकता है। मननशील पुरुष को उचित है कि, वह मन लगा कर, समस्त ज्ञान को प्राप्त करे और संयत हो कर रहे। चित्त ही का दूसरा नाम मन है। मन को वशवर्त्ती कर के सनातन ईश्वर को जानना चाहिये। अव्यक्तादि विशेषण अविद्या के लक्षण कहलाते हैं। तुम लोग गुणों द्वारा इन लक्षणों को विशेष रूप से अवगत करो। तुम "मम" इन दो अक्षरों को मृत्यु और "न मम"—इन तीन अक्षरों को शाश्वत ब्रह्म जानो। मन्द बुद्धि वाले कोई कोई पुरुष कर्म की प्रशंसा किया करते हैं; किन्तु ज्ञानवृद्ध महात्मागण कर्म की निन्दा करते हैं। पञ्चमहाभूत और एकादश विकार से युक्त षोडषात्मक जीव, कर्मानुसार शरीर पा कर, जन्म लेता है। जो ब्रह्मविद्या उस षोड़षात्मक पुरुष को ग्रास करती है उसे ही अमृताशियों का उपादेय ग्राह्य विषय जानना चाहिये। इस लिये पारदर्शी पुरुष को कर्म में अनुराग न करना चाहिये। क्योंकि यह पुरुष विद्यामय है, कर्ममय नहीं है। जो पुरुष उस अमृत, नित्य, अग्राह्य, परमश्रेष्ठ, अविनाशी, जितचित्त और असङ्ग पुरुष को इस प्रकार जान लेते हैं, वे ही अमर हो जाते हैं। जो मनुष्य अपूर्व, अकृत्रिम, नित्य एवं अपराजित आत्मा को प्राप्त कर सकता है, वह इन सब कारणों से निस्सन्देह अग्राह्य और अमर

हुआ करता है। वह मैत्री आदि समस्त संस्कारों को दृढ़ कर के मन को हृदयकमल में रोक कर, उस मङ्गलमय ब्रह्म को पाता है, जिससे श्रेष्ठ और बड़ा अन्य कोई नहीं है। मन प्रसन्न रहने से पुरुष शान्ति को पा सकता है। स्वप्न देखना मन की प्रसन्नता की पहचान जानो। चित्त शुद्धि मुक्त पुरुषों की गति है। पूर्ण ज्ञानी और ज्ञान निपुण जन, भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान—इन तीनों कालों की उन वस्तुओं को देखते हैं, जो रूपान्तर दशा से उत्पन्न हैं। विरक्त पुरुषों की यही गति है। यही सनातन धर्म है।

गुरु बोले—हे शिष्य! उन ऋषियों ने ब्रह्मा जी के इन वचनों को सुन, तदनुसार आचरण किया। इससे उन्हें उत्तम लोकों की प्राप्ति हुई। हे महाभाग! मैंने तुम्हें ब्रह्मा जी का कथन ज्यों का त्यों सुनाया है। हे शुद्धात्मन्! यदि तुम तदनुसार आचरण करोगे तो तुम्हें भी सिद्धि मिल जायगी।

श्रीकृष्ण जी कहने लगे—हे कुन्तीनन्दन! जब गुरु ने शिष्य को इस प्रकार उपदेश दिया, तब उस शिष्य ने गुरु के कथनानुसार धर्माचरण कर मुक्ति पायी। हे कुरुकुलोद्वह! जिस लोक में जाने से जीव को शोक नहीं होता, उसी लोक में जा वह शिष्य कृतकृत्य हुआ।

अर्जुन ने कहा—हे कृष्ण! आपने जिन गुरु और शिष्य की कथा कही—वे हैं कौन? यदि मैं उपयुक्त पात्र समझा जाऊँ, तो मुझे आप यह भी बतला दें।

श्रीकृष्ण जी बोले—हे महाबाहो! क्षेत्रज्ञ हो कर मैं ही गुरु हूँ और मेरा मन ही शिष्य है। मैंने तेरे प्रेमवश यह गुप्त रहस्य, तेरे सामने वर्णन किया है। यदि तेरी मुझमें प्रीति है, तो तू मेरे कथनानुसार पूर्णरीत्या आचरण कर। हे अरिकर्षण! जब तू इस का पूर्णरीत्या आचरण करेगा, तब तू समस्त पापों से मुक्त हो जावेगा और तुझे कैवल्य मोक्ष मिलेगी। हे महाबाहो! युद्ध क्षेत्र में ये ही बातें मैंने तुमसे कही थीं—अतः तू

मेरे कथन पर भली भाँति ध्यान दे। मुझे अपने पूज्य पिता के दर्शन किये बहुत दिन हो गये हैं और अब मैं उनके दर्शन करने को उत्सुक हूँ। अतः हे अर्जुन ! तू मुझे जाने की अनुमति प्रदान कर।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय ! श्रीकृष्ण की इन बातों को सुन अर्जुन ने कहा—हे कृष्ण ! आइये हम लोग यहाँ से अब हस्तिनापुर को चलें। वहाँ आप युधिष्ठिर को राज्य पालन करने का आदेश दे, द्वारकापुरी को चले जाना।

बावनवाँ अध्याय

श्रीकृष्ण-प्रयाण वर्णन

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय ! तदनन्तर श्रीकृष्ण की आज्ञा पा दारुक ने बात की बात में रथ तैयार कर, उनके सामने ला खड़ा किया और उन्हें सूचित किया कि, रथ तैयार है। उधर अर्जुन ने अपने अनुगत सैनिकों को हस्तिनापुर चलने की तैयारी करने की आज्ञा दी। तब सुसज्जित हो सैनिकों ने अर्जुन से निवेदन किया कि, हम लोग तैयार हैं। हे राजन् ! तदनन्तर श्रीकृष्ण और अर्जुन हर्षित हो रथ पर सवार हुए और आपस में बातचीत करते हुए हस्तिनापुर की ओर प्रस्थानित हुए। हे भरतसत्तम ! रास्ते में अर्जुन ने श्रीकृष्ण से कहा—हे कृष्ण ! आपके अनुग्रह से समस्त शत्रु मारे गये और महाराज युधिष्ठिर को अकण्टक राज्य मिला। हे मधुसूदन ! आप हम पाण्डवों के नाथ हैं। पाण्डवगण श्रीकृष्णरूपी पोत से कुरुसागर के पार हुए हैं। हे विश्वात्मन् ! हे विश्वकर्मन् ! हे विश्वसत्तम ! मैं आपको प्रणाम करता हूँ। मैं आप को जैसा जानता हूँ, आप वैसे ही हैं। हे मधुसूदन ! यह जीवात्मा आपके

तेज से नित्य उत्पन्न होता है। हे विभु ! रति आपकी क्रीड़ामयी लीला है। द्युलोक एवं भूलोक आपकी माया है। स्थावर-जङ्गमात्मक यह समस्त विश्व आप ही में प्रतिष्ठित है। आप ही जीवों को चार प्रकार विभक्त किया करते हैं। पृथिवी, आकाश स्वर्ग और निर्म्मल ज्योत्स्ना आप की मुसक्यान है छः ऋतुएँ आपकी इन्द्रियाँ हैं। हे मतिमान् ! सदा गमनशील वायु आपका प्राण है। आपका क्रोध ही मृत्यु है। पद्मालया लक्ष्मी जी सदा आपमें वास करती हैं। हे अनघ ! आप ही रति, तुष्टि, धृति, क्षान्ति, मति, कान्ति हैं। आप ही समस्त चराचर हैं। आप इन सब का प्रलयकाल उपस्थित होने पर संहार किया करते हैं। हे कमलनयन ! यदि मैं अनन्तकाल तक आपके गुणानुवाद का कीर्त्तन करूँ तब भी वे निःशेष नहीं हो सकते। आप ही आत्मा हैं और आप ही परमात्मा हैं। अतः आप-को मैं प्रणाम करता हूँ। हे दुर्द्धर्ष ! मुझे आपका रहस्य, नारद, देवल, कृष्णद्वैपायन व्यास और कुरुपितामह भीष्म जी से विदित हो चुका है। समस्त प्राणी आप ही में समासक्त हैं। आप ही एकमात्र जनेश्वर हैं। आपने जो बातें मुझसे कही हैं, मैं उन्हींके अनुसार काम करूँगा। आपने मेरे हितार्थ ये अद्भुत कर्म किया है। मृत धृतराष्ट्र पुत्र पापी दुर्योधन की सेना को आपने ही भस्म किया है। दुर्योधन से युद्ध कर मुझे जो विजय-कीर्ति प्राप्त हुई है, वह आपकी बुद्धि तथा पराक्रम ही का प्रतिफल है। ये समस्त कार्य आप ही के अनुग्रह से पूर्ण हुए हैं। कर्ण, पापी सिन्धुराज जयद्रथ और भूरिश्रवा का वध आपके बतलाये उपाय ही से हो सका है। हे देवकीनन्दन ! आपने हर्षित हो मुझसे जो कहा है, मैं वही करूँगा। इसमें मुझे तिल भर भी हिचकिचाहट नहीं है। हे अनघ ! मैं हस्तिनापुर में पहुँच, महाराज युधिष्ठिर से आपको विदा कर देने के लिये प्रार्थना करूँगा। हे प्रभो ! मैं भी चाहता हूँ कि, अब आप द्वारका जाँय। हे जना-र्दन ! मुझे आशा है कि, आप शीघ्र ही मेरे मामा वसुदेव जी, दुर्द्धर्ष बल-देव जी तथा अन्यान्य वृष्णिवंशियों के दर्शन करेंगे।

इस प्रकार बातचीत करते करते श्रीकृष्ण और अर्जुन, प्रहृष्ट जनाकीर्ण हस्तिनापुरी में जा पहुँचे। हे महाराज! श्रीकृष्ण और अर्जुन ने इन्द्रभवन जैसे धृतराष्ट्र के भवन में जा, प्रजानाथ धृतराष्ट्र, महा बुद्धिमान् विदुर, राजा युधिष्ठिर, दुर्द्धर्ष भीमसेन, माद्रीपुत्र नकुल, सहदेव, अपराजित युयुत्सु, महा-बुद्धिमती गान्धारी, कुन्ती, द्रौपदी, सुभद्रा आदि भरतकुल की स्त्रियों को देखा। तदनन्तर अपने अपने नाम ले, श्रीकृष्ण और अर्जुन ने धृतराष्ट्र को प्रणाम किया। तदनन्तर उन दोनों ने गान्धारी, कुन्ती तथा युधिष्ठिर के चरणों में सीस नवाये। फिर विदुर को आलिङ्गन कर के और उनसे कुशल पूँछ–वे दोनों विदुर सहित धृतराष्ट्र के पास बैठ गये। तदनन्तर धृतराष्ट्र ने रात में श्रीकृष्ण और अर्जुन के सोने के लिये यथोचित व्यवस्था करवा दी। महाराज धृतराष्ट्र द्वारा शयन करने का आदेश पा कर, वे अपने अपने शयनगृहों में गये; परन्तु वीर्यवान श्रीकृष्ण जी अर्जुन के शयनभवन में चले गये और वहाँ यथोचित रीत्या सत्कारित हो, उन्होंने वहाँ शयन किया। जब रात बीती और सबेरा हुआ, तब श्रीकृष्ण और अर्जुन प्रातःकृत्य से छुट्टी पा, महाराज युधिष्ठिर के पास गये। महाराज युधिष्ठिर मंत्रियों सहित बैठे हुए थे। श्रीकृष्ण और अर्जुन, धर्मराज के अत्यन्त सुशोभित भवन में गये और वहाँ उन दोनों ने धर्मराज के दर्शन वैसे ही किये, जैसे दोनों अश्विनीकुमार देवराज इन्द्र के किया करते हैं। तदनन्तर धर्मराज के आदेशानुसार श्रीकृष्ण और अर्जुन हर्षित हो उनके निकट बैठ गये। वाग्मिवर महाराज युधिष्ठिर ने भाषणोन्मुख श्रीकृष्ण को देख, उनसे कहा।

युधिष्ठिर बोले—हे वीरवर! श्रीकृष्ण और अर्जुन! मैं देख रहा हूँ कि, तुम लोग मुझसे कुछ कहना चाहते हो। अतः तुम्हें जो कुछ कहना हो सो बिना किसी प्रकार के सङ्कोच के कहो। तुम लोग मुझसे जो कहोगे—मैं वैसा ही करूँगा। जब युधिष्ठिर ने यह कहा, तब वाक्यविशारद अर्जुन ने विनम्र भाव से कहना आरम्भ किया। महाराज! प्रतापी श्रीकृष्ण जी को द्वारका छोड़े बहुत दिवस व्यतीत हो चुके। अतः आपकी अनुमति हो, तो

यह अपने माता पिता के दर्शन करने के लिये द्वारका पुरी अब जाँय । अतः अब आप इन्हें जाने की अनुमति दें ।

युधिष्ठिर बोले—हे मधुसूदन ! आपका मङ्गल हो । अब आप सूरसेन-नन्दन वसुदेव जी के दर्शन करने के लिये द्वारका पुरी को जाइये । हे महाबाहो ! सचमुच आपको मेरे मामा, वसुदेव और देवकी को देखे बहुत दिन बीत गये । अतः मेरी भी इच्छा है कि, अब आप गमन करें । हे महाप्राज्ञ ! आप वसुदेव जी और बलदेव जी के प्रति मेरी ओर से सम्मान प्रकट करना । हे मानद ! मुझ, बलियों में श्रेष्ठ भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव को आप भूल मत जाना । । आनर्त्तनगरवासी प्रजाजनों को तथा अपने पिता वसुदेव जी तथा अन्य वृष्णिवंशियों को देख कर, आप मेरे अश्वमेध यज्ञ में पुनः आ जाना । हे सात्वत ! आप विविध रत्न, धन आदि जो लेना चाहै ले लें और पश्चात् गमन करें । हे केशव ! आप ही की कृपा से यह ससागरा पृथिवी हम लोगों के हस्तगत हुई है और हम अपने समस्त शत्रुओं को मार सके हैं ।

जब महाराज युधिष्ठिर ने इस प्रकार कहा, तब पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण ने कहा—

श्रीकृष्ण जी बोले—हे महाभुज ! यह अखिल महीमण्डल, रत्नराशि और समस्त धन आप ही का है । मेरे घर में जो रत्न धनादि हैं, उसके भी स्वामी आप ही हैं ।

यह कह श्रीकृष्ण, महाराज युधिष्ठिर से प्रीति पूर्वक बिदा हुए । फिर वे अपनी बुआ कुन्ती के निकट गये और बुआ की प्रदक्षिणा कर और वार्तालाप कर, वहाँ से बिदा हुए । फिर विदुर से प्रतिनन्दित हो, श्रीकृष्ण रथ-पर सवार हो, हस्तिनापुर से बाहिर हुए । कुन्ती की अनुमति से श्रीकृष्ण की बहिन सुभद्रा भी उनके साथ द्वारका पुरी को गयी । कपिध्वज अर्जुन, सात्यकि, माद्रीनन्दन नकुल, सहदेव, अगाध बुद्धि सम्पन्न विदुर जी और परम पराक्रमी भीमसेन श्रीकृष्ण को पहुँचाने कुछ दूर तक उनके पीछे पीछे

गये। तदनन्तर श्रीकृष्ण ने विदुर तथा भीमादिक को लौटा कर दारुक और सात्यकि को शीघ्र रथ हाँकने की आज्ञा दी।

जैसे इन्द्र, अपने शत्रुओं का संहार कर सुरपुर को जाते हैं, वैसे ही अरिमर्दन प्रतापी जनार्दन ने शत्रुओं का संहार कर, सात्यकि सहित आनर्त्त पुरी को गमन किया।

तिरपनवाँ अध्याय

उत्तङ्क का उपाख्यान

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! जब श्रीकृष्ण जी द्वारका पुरी की ओर जाने लगे; तब परन्तप, भरतश्रेष्ठ भीमसेनादि उनको आलिङ्गन कर, हस्तिनापुर को लौट गये। अर्जुन ने श्रीकृष्ण को बार बार आलिङ्गन किया और जब तक उनका रथ दिखलायी पड़ता रहा, तब तक वे इकटक उसी ओर निहारते रहे। अन्त में दोनों (श्रीकृष्ण और अर्जुन) ने बड़े कष्ट के साथ अपनी दृष्टियाँ निवारण कीं।

महात्मा श्रीकृष्ण की यात्रा के समय जो शुभ शकुन हुए थे—हे राजन्! अब मैं उन्हें तुम्हें सुनाता हूँ। सुनो। रथ के आगे आगे रास्ते के काँटों और धूल गर्द को साफ़ करता हुआ पवन बड़े वेग से बह रहा था। इन्द्र ने शार्ङ्गधन्वा श्रीकृष्ण के रथ पर पुष्पों की वृष्टि की और उनके जाने के मार्ग पर, शीतल जल छिड़का था।

तदनन्तर महाबाहु श्रीकृष्ण ने समतल मरुभूमि में पहुँच अमित तेजस्वी उतङ्क मुनि के दर्शन किये। विशालनयन श्रीकृष्ण ने मुनि का विधिपूर्वक पूजन कर, उनसे कुशल प्रश्न किया। ब्राह्मणश्रेष्ठ ने श्रीकृष्ण का पूजन कर, उनसे पूँछा—हे शौरि! आपने पाण्डवों के घर जा, जैसे अचल सौभ्रात्रभाव स्थापित किया है, सो सब आप मुझे सुनावें। हे

केशव ! आप अपने प्रिय सम्बन्धियों को सदा के लिये एकत्रित कर आये हैं न ? पाण्डु के पाँचो पुत्र और धृतराष्ट्र के समस्त पुत्र आपके साथ विहार करते हैं न ? हे केशव ! आपके द्वारा कौरवों के शान्त हो जाने पर अब तो अन्य समस्त राजागण अपने अपने राज्यों में सुख पूर्वक रह सकेंगे न ? हे तात ! आपके प्रति मेरी जो धारणा है, तदनुरूप आपने भरतकुल के विषय में चरितार्थ की है न ?

श्रीकृष्ण जी ने कहा—मैंने आरम्भ में चाहा था कि, कौरवों और पाण्डवों में मेल मिलाप हो जाय और इसके लिये मैंने विशेष प्रयत्न भी किया था, किन्तु जब उन्होंने मेरे शान्तमय प्रस्ताव को स्वीकार न किया, तब वे सब पुत्र पौत्रों सहित युद्ध में मारे गये। क्योंकि कोई भी क्यों न हो, वह अपने बल और बुद्धि से दैव को अतिक्रम नहीं कर सकता। हे अनघ ! यह तो आप जानते ही हैं कि, कौरवों ने न तो मेरा और न भीष्म और विदुर ही का कहना माना। इसीसे वे आपस में लड़ भिड़ कर, यम लोक सिधारे हैं। अपने मित्रों और पुत्रों के मारे जाने पर भी पाँचों पाण्डव, जीवित हैं और धृतराष्ट्र के पुत्र अपने पुत्रों तथा बन्धु बान्धवों सहित मारे गये हैं। श्रीकृष्ण के यह कहने पर, उत्तङ्क को बड़ा क्रोध उपजा और मारे क्रोध के लाल लाल नेत्र कर वे कहने लगे।

उतङ्क ने कहा—हे श्रीकृष्ण ! जब तुमने परित्राण करने की सामर्थ्य रखते हुए भी अपने प्रिय सम्बन्धी कुरुपुङ्गवों की रक्षा नहीं की ; तब मैं इसके लिये निश्चय ही तुमको शाप दूँगा। हे मधुसूदन ! तुमने उन्हें उस समय क्यों न रोका—इस लिये मैं कुपित हो तुम्हें शाप देता हूँ। हे माधव ! तुमने सामर्थ्यवान हो कर भी मिथ्याचारियों जैसा आचरण किया है। इसीसे तुम्हारे द्वारा अपेक्षा किये जाने पर कुरुपुङ्गवों का विनाश हुआ है।

श्रीकृष्ण बोले—मैं विस्तार पूर्वक जो कहूँ, उसे आप सुनें। आप तपस्वी हैं। अतः मैं जो आपसे निवेदन करूँ, उसे आप श्रवण करें। मैं

आपके प्रति आध्यात्मिक विषय कहता हूँ उसे सुन आप मुझे शाप न दें। थोड़े तप की पूँजी रखने वाले की सामर्थ्य नहीं जो मुझे जीत सके। हे तपस्वियों में श्रेष्ठ! आपका तप नष्ट करना मैं नहीं चाहता। क्योंकि आपने बड़े बड़े कष्ट सह कर उत्तम एवं महद्दीप्त तपोबल सञ्चित किया है और गुरुजनों को सन्तुष्ट किया है। हे द्विजोत्तम! मैं आपके आकुमार ब्रह्मचर्य व्रत धारण को जानता हूँ। बड़े कष्ट से सञ्चित आपके तपोबल को विनष्ट करने की मुझे अभिलाषा नहीं है।

चौवनवाँ अध्याय

उत्तङ्क और श्रीकृष्ण का संवाद

उत्तङ्क ने कहा—हे श्रीकृष्ण! मुझे आप अनिन्दित अध्यात्म विषय यथार्थ रीत्या सुनाइये। मैं उस विषय को सुन लेने पीछे आपके शाप का भली भाँति अभिधान करूँगा।

श्रीकृष्ण ने कहा—हे विप्रवर! आप सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण इन तीनों को मेरे आश्रित जानिये और रुद्रों तथा मरुद्गणों की उत्पत्ति भी मुझीसे आप समझें। समस्त प्राणियों में मेरी ही सत्ता विद्यमान रहती है और मुझमें सब प्राणी विद्यमान रहते हैं। हे द्विज! दैत्य, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, अप्सराएँ और नाग जाति की भी उत्पत्ति मुझ ही से हुई है। पण्डित जिसे सत् असत्, व्यक्त अव्यक्त और क्षर अक्षर कहा करते हैं, ये सब मेरे ही रूप हैं। हे मुनि! चारों आश्रमों के चतुर्विध कर्म और वैदिक कर्म कलाप तो आपको विदित ही हैं। वे सब भी मेरे ही रूप हैं। असत् "शशविषाणादि" सदसत् "घट पटादि" और सदसत् पर अव्यक्त रूप से मैं ही सारे विश्व का सनातन देव हूँ। अतः मुझसे भिन्न यह जगत् नहीं है। हे तपोधन! मुझे ही ओंकारादि सब देव, वेद, यूप, सोम, चरु, होम और यज्ञ में त्रिदशाप्यायन (देवताओं की तृप्ति) जानो।

हे भृगुनन्दन ! मैं ही होता, हव्य, अध्वर्यु, कल्पक और परम संस्कृत हवि हूँ। महायज्ञों में उद्गाता बड़े बड़े स्तवों से मेरी ही प्रशंसा करते हैं। प्रायश्चित्त में शान्ति तथा मङ्गलवाचक ब्राह्मण, विश्वकर्म कह कर, मेरी ही स्तुति किया करते हैं। हे द्विजसत्तम ! धर्म मेरा ज्येष्ठ पुत्र है और जिसके मन में समस्त प्राणियों के प्रति दया भाव है, उसे मेरा प्रेमभाजन जानो। हे सत्तम ! जो सब लोग, धर्म में प्रवृत्त और अधर्म से निवृत्त रहते हैं, मैं उन्हीं मनुष्यों के मनुष्य रूप से अनेक योनियों में भ्रमण करता हुआ, धर्म की स्थापना और धर्म की रक्षा के लिये निवास किया करता हूँ। हे भार्गव ! मैं तीनों लोकों में वही रूप और वही वेष धारण करता हूँ। मैं ही विष्णु हूँ, मैं ही ब्रह्मा हूँ और मैं ही संहारकर्त्ता शिव हूँ। मैं ही समस्त प्राणियों को उत्पन्न करने वाला और विनाश करने वाला हूँ। अधर्मी अर्थात् पापी पुरुषों का नाश करने वाला भी मैं ही हूँ। प्रजा जनों की भलाई के लिये मैं ही उन योनियों में प्रवेश कर, धर्म का सेतु बाँधता हूँ।

हे भृगुनन्दन ! जब मैं देवयोनि में प्रवेश करता हूँ, तब देववत्, जब गन्धर्वयोनि में प्रवेश करता हूँ तब गन्धर्व सदृश, जब नागयोनि में प्रवेश करता हूँ तब नागवत् और जब यक्ष अथवा राक्षसादियोनि में प्रवेश करता हूँ, तब मैं उसी योनिवत् हो जाता हूँ और तदनुरूप ही आचरण करता हूँ। मैंने मानवी योनि में प्रवेश कर, कृपण भाव से कौरवों के निकट बहुत याचना की, डराया धमकाया, यथायोग्य समझाया बुझाया; किन्तु उन लोगों ने महामोह से मोहित हो, मेरी बातों पर ध्यान तक न दिया। प्रत्युत काल-धर्म से आवृत्त हो और धर्म युद्ध में प्राण गँवा वे सुरपुर सिधारे। हे द्विज सत्तम ! पाण्डवों को संसार में बड़ी कीर्ति प्राप्त हुई है। हे विप्रवर ! आपने मुझसे जो पूँछा था—मैंने आपके उस प्रश्न का आपको पूर्ण उत्तर दे दिया।

पचपनवाँ अध्याय

उतङ्क की जिज्ञासा

उतङ्क ने कहा—हे जनार्दन ! मैं जान गया आप जगत के कर्त्ता हैं। यह जो कुछ हुआ है निश्चय ही यह आपका अनुग्रह है। हे अच्युत ! आपके प्रति मेरा अनुराग बढ़ा है, अतः अब मैं आपको शाप न दूँगा। हे जनार्दन ! यदि आप की मेरे ऊपर ज़रा भी कृपा हो तो, मुझे आपके विश्वरूप के दर्शन करने की अभिलाषा है।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय ! बुद्धिमान् अर्जुन को जिस विश्व-रूप के दर्शन हुए थे, श्रीकृष्ण ने परम प्रसन्न हो, उत्तङ्क को भी उसी रूप के दर्शन करवाये। उतङ्क को महाभुज, विश्वरूप, सहस्र सूर्य तथा धधकते हुए अग्नि की तरह सर्वव्यापी एवं श्रीकृष्ण के विराट् रूप के दर्शन मिले। तब वे उस अद्भुत रूप को देख विस्मित हुए और बोले।

उतङ्क ने कहा—हे विश्वकर्मन् ! हे विश्वात्मन् ! आपको नमस्कार है। हे विश्वसम्भव ! आपके दोनों पैरों से धरती, सिर से आकाश, जठर द्वारा द्युलोक तथा भूलोक; मध्य एवं दोनों भुजाओं से समस्त दिशाएँ ढक गयी हैं। हे अच्युत ! इस विश्वरूप से आप निवास करते हैं। हे देव ! आप अपने अक्षय्य अनुत्तम रूप को अन्तर्धान कीजिये। मैं आपको पुनः उसी श्रीकृष्ण रूप ही में देखना चाहता हूँ।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय ! यह सुन श्रीकृष्ण ने हर्षित हो उतङ्क से कहा—आप मुझसे वर माँगिये। इस पर उतङ्क ने उनसे कहा—हे पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण ! आपके इस रूप का दर्शन प्राप्त होना ही मेरे लिये एक बड़ा भारी वरदान है। यह सुन श्रीकृष्ण ने उतङ्क से पुनः कहा—मेरा दर्शन अमोघ है। अतः तुम किसी प्रकार का सोच विचार न कर वर माँगो।

उत्तङ्क ने कहा—हे विभो ! यदि आपका दर्शन अमोघ है, तो इस मरुभूमि में जहाँ मैं चाहूँ वही जल मुझे मिले ! तदनन्तर विश्वरूप को अन्तर्हित कर श्रीकृष्ण ने उत्तङ्क से कहा–जब तुम्हें (जल ही क्या) किसी वस्तु की अभिलाषा हो, तब तुम मेरा स्मरण करना। यह कह श्रीकृष्ण जी द्वारका की ओर चल दिये। इस घटना के बहुत दिनों बाद एक दिन उत्तङ्क ने मरुभूमि में भ्रमण करते हुए जल के लिये भगवान् अच्युत का स्मरण किया। इतने ही में उन्होंने मरुभूमि में मतङ्ग चाण्डाल को देखा, जो दिगम्बर, मलिन तथा अपने साथी कुत्तों से घिरा हुआ और धनुष बाण लिये हुए था। उसके चरणों के नीचे एक जलस्रोत था, जिससे बहुत सा निर्मल जल निकल रहा था। श्रीकृष्ण का स्मरण करते हुए उत्तङ्क से मातङ्ग ने हँस कर कहा—हे भृगुनन्दन उत्तङ्क ! तुम मेरे निकट चले आओ और जल ले जाओ। तुम्हें प्यासा देख, मुझे तुम्हारे ऊपर दया उपजी है। मातङ्ग चाण्डाल के इन वचनों को सुन, मुनिवर उत्तङ्क ने उस चाण्डाल का अभिनन्दन न कर, उससे कठोर वचन कहे। किन्तु मात्तङ्ग उनसे बारंबार जल पीने के लिये कहता रहा। प्यास से व्याकुल होने पर भी उत्तङ्क ने क्रुद्ध होने के कारण वह जल न पिया। जब उत्तङ्क ने उस जल को ग्रहण न करने का दृढ़ निश्चय कर लिया, तब मात्तङ्ग कुत्तों सहित अन्तर्धान हो गया। अब उत्तङ्क ने समझ कि, यह सब भगवान् श्रीकृष्ण की लीला थी। इतने में उत्तङ्क शङ्ख-चक्र-गदा-धारी श्रीकृष्ण के पास पहुँचे। उन्हें देख उत्तङ्क ने उनसे कहा।

उत्तङ्क बोले—हे श्रीकृष्ण ! चाण्डाल का रूप धारण कर ब्राह्मण को जल प्रदान करने के लिये आपका आगमन ठीक नहीं। यह सुन महाबुद्धिमान् श्रीकृष्ण ने मधुर वचनों से उत्तङ्क को शान्त किया और बोले—हे उत्तङ्क ! आप इस रहस्य को समझ न सके। मैंने वज्रधारी इन्द्र से जब तोयरूपी अमृत आपको पिलाने के लिये कहा, तब वे बोले कि, मर्त्य को अमरत्व प्राप्त नहीं हो सकता। अतः आप उन्हें अन्य वर प्रदान करें।

किन्तु जब मैंने आपको अमृतपान कराने का उनसे अनुरोध किया, तब वे मुझे प्रसन्न करने के लिये बोले—यदि आपकी ऐसी ही इच्छा है, तो मैं मत्तङ्ग चाण्डाल का रूप रख कर अमृतदान करूँगा। यदि वे इस प्रकार अमृत का दान लेना स्वीकार करेंगे, तो मैं उन्हें अमृत पिला आऊँगा। यदि उन्होंने इस प्रकार अमृत पीना स्वीकार न किया, तो मैं फिर कभी उन्हें अमृतपान न कराऊँगा। अतः इन्द्र चाण्डाल का रूप धर कर, तुम्हें अमृतपान कराने को आये थे। किन्तु तुम उन्हें न पहचान सके। इसीसे तुमने उनकी बात न मानी। चाण्डाल रूप धारी इन्द्र का आपके द्वारा तिरस्कार होने से आपकी बड़ी हानि हुई है। किन्तु मैं अपनी शक्त्यानुसार पुनः आपके अभीष्ट की सिद्धि के लिये प्रयत्न करूँगा। हे ब्रह्मन्! जिस दिन आपको जल की अभिलाषा होगी, उसी दिन मैं आपकी उस दुरन्त जललालसा को सफल करूँगा। हे भृगुनन्दन! उस दिन इस मरुभूमि में बादल जल बरसा कर, आपको सुस्वादु जल प्रदान करेंगे और उत्तङ्कमेघ नाम से प्रसिद्ध होंगे।

हे राजन्! उत्तङ्क श्रीकृष्ण के इन वचनों को सुन, बहुत प्रसन्न हुए। यही कारण है कि, उस महाशुष्क मरुभूमि में उत्तङ्कमेघ जल की वृष्टि किया करते हैं।

छप्पनवाँ अध्याय

उत्तङ्क का तप

जनमेजय ने पूँछा—हे ब्रह्मन्! उत्तङ्क ने ऐसा कौन सा तप किया था कि, जिसके बल वे जगन्नायक भगवान् विष्णु को शाप देने को तैयार हो गये?

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! उत्तङ्क बड़े भारी तपस्वी थे। वे अपने तेजोमय गुरु को छोड़ और किसी की भी सेवा, शुश्रूषा एवं पूजा

नहीं करते थे। ऋषिपुत्रों के मन में भी उत्तङ्क की गुरुशुश्रूषा को देख कर, यह इच्छा उत्पन्न हुई कि, हम भी उत्तङ्क की तरह गुरु-भक्ति-परायण हो, गुरुवृत्ति प्राप्त करें। हे जनमेजय! गौतम ऋषि के जितने पुत्र थे, उन सब से अधिक उनका स्नेह उत्तङ्क में था। गौतमऋषि अपने शिष्य उत्तङ्क के दम, शम, विक्रम, पवित्रता और समधिक सेवा से उन पर बहुत प्रसन्न थे। एक दिन कारण-विशेष-वश गौतम ने शिष्यों को अपने अपने घरों को जाने की आज्ञा दी, किन्तु परम-स्नेह-वश गौतम ने उत्तङ्क को आज्ञा न दी। हे तात! धीरे धीरे उत्तङ्क बूढ़े हुए, किन्तु गुरुवत्सल उत्तङ्क को इसका पता न चला। एक दिन उत्तङ्क लकड़ियाँ लाने वन में गये और बहुत सी लकड़ियाँ इकट्ठी कीं और उन लकड़ियों का बोझा उठा कर लाना चाहा। बोझा उठाने के कारण थके माँदे और भूखे प्यासे उत्तङ्क ने किसी तरह वह बोझ ला कर पृथिवी पर पटकना चाहा। उस समय उनकी सफेद जटा लकड़ी में उलझ गयी—अतः वे लकड़ी के गट्ठे सहित स्वयं भी ज़मीन पर गिर पड़े। जब क्षुधातुर उत्तङ्क लकड़ी के बोझ से दब गये, तब उनकी कमल-नयनी गुरुपुत्री उनकी दशा देख आर्त्तस्वर से रोने लगी। विशालनयनी सुश्रोणी एवं धर्मज्ञ गौतमपुत्री ने अपने पिता की आज्ञा के अनुसार गरदन नीची कर, अश्रुजल अंजली में लिया। वह अश्रुजल उसके हाथों को झुलसाता हुआ पृथिवी पर गिरा। किन्तु पृथिवी भी उस अश्रुजल को न सम्हाल सकी।

उस समय हर्षितमना गौतम ने उत्तङ्क से कहा—वत्स! आज तुम शोकातुर क्यों हो रहे हो? जो बात हो सो ठीक ठीक मुझे बतला दो। क्योंकि मैं उसे सुनना चाहता हूँ।

उत्तङ्क बोले—भगवन्! मैं तो आपको प्रसन्न रखने के लिये सदा आपकी ओर अपना मन लगाये रहता हूँ और आपकी सेवा में प्रवृत्त रह, आपकी आज्ञाओं का पालन करना अपना परमकर्त्तव्य समझता हूँ। इसी-से मुझे यह भी न मालूम हो पाया कि, मुझे कब वृद्धावस्था ने आ दबाया।

मैंने सुख को भी न जान पाया। मुझे आपकी सेवा करते सौ वर्ष हो गये; किन्तु आपने मुझे घर जाने की आज्ञा न दी। मेरे सामने सैकड़ों हज़ारों शिष्य आये और शिक्षित हो चले गये। (किन्तु मैं अभी जहाँ का तहाँ ही पड़ा हूँ।)

गौतम बोले—हे द्विजर्षभ ! तुम्हारी गुरुशुश्रूषा से मुझे यह भी न जान पड़ा कि, इतना समय कब निकल गया। यदि तुम्हें घर जाने की इच्छा है तो मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ कि, तुम अब तुरन्त अपने घर चले जाओ।

उत्तङ्क ने कहा—हे गुरुदेव ! अब आप कृपया गुरुदक्षिणा भी मुझे बतला दें। आप जो आज्ञा देंगे, मैं वही लादूँगा।

गौतम ने कहा—हे ब्रह्मन् ! पण्डितों का कहना है कि, गुरुजनों को सन्तुष्ट रखना ही उनकी गुरुदक्षिणा है। मैं तुम्हारे सदाचार ही से तुम्हारे ऊपर परितुष्ट हूँ। ब्रह्मन् ! यदि आज आप सोलह वर्ष के जवान होते, तो मैं अपनी कन्या का विवाह तुम्हारे साथ कर देता। क्योंकि इस कन्या को छोड़ और कोई भी तुम्हारा तेज धारण न कर सकेगा। अनन्तर उत्तङ्क षोड़शवर्षीय युवा बन गये और उस यशस्विनी कन्या को पत्नी रूप से ग्रहण कर, गुरुपत्नी से बोले—मैं आपको गुरुदक्षिणा क्या दूँ ? आप आज्ञा दें। मैं अपने प्राण और धन से आपका हित और प्रिय करने का अभिलाषी हूँ। इस लोक में जो रत्न दुर्लभ हैं, मैं निश्चय ही अपने तपोबल से उन उत्तम महारत्नों को ला सकता हूँ।

गौतमपत्नी अहल्या ने कहा—मैं तुम्हारी इस गुरुभक्ति से तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूँ। तुम्हारा मङ्गल हो। तुम इच्छानुसार गमन करो।

वैशम्पायन जी बोले—उत्तङ्क ने अहल्या से कहा—हे माता ! बतलाइये, मैं कौन सा प्रिय कार्य करूँ ?

अहल्या बोली—राजा सौदास की रानी जो दिव्य मणिजटित कुण्डल धारण करती है, तुम जा कर मेरे लिये वे ही कुण्डल ले आओ। ऐसा करने से तुम्हारा मङ्गल होगा और तुम्हारी गुरुदक्षिणा भी पूरी हो जायगी।

हे जनमेजय ! उत्तङ्क मुनि "तथास्तु" कह कर, अपनी गुरुपत्नी को प्रसन्न करने के निमित्त कुण्डल लाने को चल दिये । चलते चलते वे राजा सौदास के निकट पहुँचे। इधर गौतम ने अहल्या से पूँछा—आज उत्तङ्क नहीं दिखलायी पड़ता, वह कहाँ है? अहल्या ने उत्तर दिया, उत्तङ्क मेरे लिये कुण्डल लाने गया है।

तदनन्तर गौतम ने पत्नी से कहा—तुमने यह काम अच्छा नहीं किया; क्योंकि उत्तङ्क निश्चय ही राजा सौदास को शाप दे कर, उसको मार डालेगा।

अहल्या ने कहा—हे भगवन् ! मैंने अनजाने उस ब्राह्मण को भेजा है; परन्तु आपके अनुग्रह से उत्तङ्क का बाल भी बाँका न होगा। यह सुन गौतम ने कहा—तुम जो कहती हो, वैसा ही हो। उधर उत्तङ्क की और राजा सौदास की भेंट एक निर्जन वन में हुई।

सत्तावनवाँ अध्याय

उत्तङ्क चरित

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय ! बड़ी बड़ी डाढ़ी और मूँछों वाले तथा नररक्त से लिप्त शरीर, घोर दर्शन राजा सौदास को देख, उत्तङ्क ज़रा भी न डरे। उस महापराक्रमी एवं यमराज की तरह भयङ्कर राजा सौदास ने उत्तङ्क से कहा—हे ब्राह्मणोत्तम ! यह सौभाग्य की बात है कि, तुम दिन के छठवें भाग में भोजनाभिलाषी और भक्ष्य की खोज करने वाले के निकट आये हो।

उत्तङ्क ने कहा—राजन् ! गुरुदक्षिणा के लिये धन माँगने आपके निकट आया हूँ। मुझे आप गुरु के लिये अर्थप्रार्थी जाने। ज्ञानी पुरुषों ने गुरुदक्षिणा सम्पादन करने का उद्योग करने वाले को अबध्य बतलाया है।

सौदास ने कहा—हे द्विजसत्तम ! दिन का छठवाँ भाग बीतने को हुआ। मुझे इस समय बड़ी भूँख लग रही है। तुम मेरे लिये आहार रूप हो। अतः मैं तुम्हें त्याग नहीं सकता।

उत्तङ्क ने कहा—आपकी जो इच्छा है, वही होगा; किन्तु प्रथम आप मेरी प्रतिज्ञा पूरी कर दें। मैं गुरुजी को गुरुदक्षिणा दे, पुनः आपके पास आ जाऊँगा। हे राजसत्तम ! मैं गुरु को जो धन देने की प्रतिज्ञा कर चुका हूँ वह धन आपके अधीन है। अतः उसकी याचना करने के लिये मैं आपके पास आया हूँ। हे नरेश्वर ! इस समय आप दानदाता और मैं दानगृहीता हूँ। मुझे आप प्रतिग्रह का पात्र जानें। हे अरिंदम ! आपसे अपनी गुरुदक्षिणा ले और अपनी प्रतिज्ञा से उत्तीर्ण हो, मैं पुनः आपके वशवर्त्ती हो जाऊँगा। राजन् ! मैं मिथ्या प्रतिज्ञा कभी नहीं करता। क्योंकि आज तक कभी मैंने जानबूझ कर मिथ्या प्रतिज्ञा नहीं की। अतः मेरी प्रतिज्ञा में कभी अन्तर न पड़ेगा।

सौदास ने कहा—यदि तुम्हारी गुरुदक्षिणा का द्रव्य मेरे अधीन है, तो तुम उसे मिला हुआ ही समझो।

उत्तङ्क ने कहा—आप इस योग्य हैं कि, आपसे याचना की जाय। इसीसे मैं आपसे मणिजटित कुण्डल माँगने आया हूँ।

सौदास ने कहा—हे विप्र ! मणिजटित कुण्डल तो मेरी रानी के हैं। उन्हें देने का मुझे अधिकार नहीं। और जो कुछ तुम माँगोगे, वह मैं तुम्हें दे दूँगा।

उत्तङ्क ने कहा—राजन् ! यदि आपका मेरे वचनों पर विश्वास है, तो अब आप व्यर्थ बहाना न कर, मुझे कुण्डल दें और अपनी प्रतिज्ञा पूरी करें।

वैशम्पायन जी बोले—उत्तङ्क की इस बात को सुन, राजा फिर उनसे बोला—हे सत्तम ! तुम मेरी रानी के निकट जाओ और मेरी ओर से उससे कहो कि, वह तुम्हें अपने कुण्डल दे दे। जब तुम मेरा नाम ले कर उससे कुण्डल माँगोगे; तो वह निश्चय ही तुम्हें कुण्डल देगी।

उत्तङ्क बोले—हे नरेश्वर ! आपकी रानी से मेरी भेंट कहाँ होगी। आप स्वयं अपनी रानी के पास क्यों नहीं चले चलते ?

सौदास ने कहा—आज ही उसके साथ तुम्हारी भेंट इस वन में किसी झरने के समीप हो जायगी। दिन के छठवें भाग में मेरी तो उससे भेंट हो नहीं सकती।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय ! उत्तङ्क ने तदनुसार वन में जा सौदास की रानी मदयन्ती को देख और सौदास की ओर से अपना प्रयोजन बतलाया।

मदयन्ती बोली—हे अनघ ! आपका कहना सत्य है। किन्तु आपको उचित है कि, आप राजा की कुछ चिन्हानी भी तो लाते। देवता, यक्ष और महर्षि, तरह तरह के उपायों से मेरे इन दिव्य मणिजटित कुण्डलों को लेना चाहते हैं और इसके लिये सदा छिन्द्रान्वेषण किया करते हैं। यदि यह कुण्डलों की जोड़ी धरती पर रखी जाँयगी तो सर्प ले जाँयगे, निन्द्रा व मोह के वशीभूत मनुष्य से देवता चुरा ले जाते हैं और उच्छिष्ट में रखे हुए को यक्ष हर ले जाते हैं। हे ब्राह्मणोत्तम ! इसलिये इन्हें बड़ी सावधानी से रखना चाहिये। हे द्विजवर ! मेरे इन दिव्य कुण्डलों से रात के समय सुवर्ण झरता है और रात में इनके प्रकाश के सामने नक्षत्रों तथा तारों की प्रभा फीकी पड़ जाती है। हे भगवन् ! इन कुण्डलों को धारण करने से धारण करने वाले को भूख-प्यास नहीं सताती। इतना ही नहीं—प्रत्युत विष, अग्नि तथा अन्यान्य भय-जनक जन्तुओं से उसे कदापि भय नहीं होता। इनमें एक यह भी विशेषता है कि, यदि कोई छोटे क़द का मनुष्य धारण करे तो यह छोटे हो जाते हैं और बड़े क़द के मनुष्य के लिये ये बड़े हो जाते हैं। मेरे ये कुण्डल तीनों लोकों में प्रसिद्ध हैं। अतः आप महाराज से इनके देने की मंज़ूरी ले आइये।

अट्ठावनवाँ अध्याय

राजा सौदास और उत्तङ्क

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय ! उत्तङ्क मित्रभाव से सौदास के निकट गये और मदयन्ती के कथनानुसार अनुमति की चिह्नानी माँगी। तब इक्ष्वाकु-प्रवर सौदास ने उन्हें वाक्य रूपी यह अभिज्ञान प्रदान किया।

सौदास ने कहा—मेरे लिये यह राक्षस योनि रूपी गति कल्याणदायिनी नहीं है। मेरा यह अभिमत जान कर, तुम मणिजटित कुण्डल दे दो।

उत्तङ्क ने जा कर, यह बात मदयन्ती से कही। स्वामी के साङ्केतिक वचन सुन, मदयन्ती ने वे कुण्डल उत्तङ्क को दे दिये। उन मणिमय कुण्डलों को पा कर उत्तङ्क ने राजा सौदास से जा कर कहा—आपके उस साङ्केतिक वचन का वास्तविक अर्थ क्या है? मुझे इसके जानने की उत्सुकता है।

सौदास बोले—सृष्टि की आदि से क्षत्रिय ब्राह्मणों को पूजते हैं। तिस पर भी ब्राह्मण उन्हें शापादि दे दिया करते हैं। मैं भी ब्राह्मणों के सामने सदा नमता रहा; तिस पर भी मुझे उनका कोपभाजन बनना पड़ा। यह सब कुछ होने पर भी ब्राह्मणों को छोड़ मेरे लिये और कोई गति नहीं है। हे गतिप्रवर ! ब्राह्मणों के सामने सिवाय सीस नवाने के इस लोक में सुख प्राप्ति और मरने के अनन्तर स्वर्गप्राप्ति का अन्य कोई उपाय ही नहीं है। राजा चाहे कितना ही ऐश्वर्यशाली क्यों न हो, द्विजों से विरोध करने से वह न तो इस लोक में रह सकता है और न उसे परलोक ही में सुख मिल सकता। इसीसे मैंने तुमको, तुम्हारे माँगे हुए कुण्डल प्रदान किये हैं। अब तुम्हारी बारी है कि, तुमने जो प्रतिज्ञा की है, उसे तुम पूर्ण करो।

उत्तङ्क ने कहा—राजन् ! मैं लौट कर अपनी प्रतिज्ञा को अवश्य पूर्ण

करूँगा। किन्तु हे राजन्! जाने के पूर्व मैं आपसे कुछ बातें पूँछना चाहता हूँ।

सौदास ने कहा—तुम जो चाहो सो पूँछ सकते हो। मैं तुम्हारे प्रश्नों के उत्तर दे कर, तुम्हारे सन्देहों को दूर कर दूँगा।

उत्तङ्क ने कहा—धर्मज्ञ पण्डितों ने मितभाषी पुरुष को मित्र अर्थात् हितैषी बतलाया है और जो मित्र के साथ कपट व्यवहार करता है, उसे वे जुआ-चोर समझते हैं। हे राजन्! आज आप मेरे मित्र हुए हैं। क्योंकि आज आपसे मुझे धन प्राप्त हुआ है। साथ ही आप नरभक्षी हैं। अतः आप मुझे बतलावें कि, मुझे आपके पास पुनः आना उचित है कि नहीं।

सौदास ने कहा—हे द्विजप्रवर! ऐसी दशा में तुमको जो करना उचित है, वह मैं तुमको बतलाता हूँ। तुम मेरे पास अब कदापि मत आना। हे भृगु-कुलोद्वह! मेरे पास न आना ही तुम्हारे लिये कल्याणप्रद है? क्योंकि यदि तुम आये; तो निश्चय ही तुम्हारी मृत्यु होगी।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! जब बुद्धिमान् राजा सौदास ने इस प्रकार उत्तङ्क को उनका कर्त्तव्य बतलाया, तब वे राजा सौदास को राज्यपालन करने का आदेश दे, अहल्या के निकट जाने के किये प्रस्थानित हुए। बड़ी तेज़ी से आश्रम में पहुँच और उन कुण्डलों को अहल्या की भेंट कर, उत्तङ्क अहल्या के प्रीतिपात्र बन गये। मदयन्ती ने कुण्डलों की रक्षा के सम्बन्ध में जो कुछ कहा था तदनुसार ही उत्तङ्क ने किया और कुण्डलों को कृष्ण मृगचर्म में लपेट कर रखा था। जब उत्तङ्क कुण्डल ले कर चले थे; तब रास्ते में उन्हें भूख लगी। सामने पके बिल्व फलों का एक वृक्ष देख, उन्होंने उस मृगचर्म को, जिसमें कुण्डल लपेटे थे, पेड़ की डाली में बाँध दिया और वृक्ष पर चढ़ वे बेल तोड़ने लगे। बेल तोड़ते समय बेल से उनका एक नेत्र चोटिल हो गया और टूटे हुए बेल के फल उसी डाली पर गिरे, जिसमें मृगचर्म बँधा हुआ था। बिल्व फलों के गिरने से मृगचर्म की गाँठ खुल गयी और मय कुण्डलों के वह मृगचर्म पृथिवी पर आ पड़ा। पृथ्वी पर पड़े हुए कुण्डलों पर

सर्प की दृष्टि पड़ी और वह उन्हे मुँह में दबा झट अपने बिल में घुस गया। सर्प को कुण्डलों को ले जाते देख, उत्तङ्क बड़े दुःखी हुए और क्रोध में भर कर वे वृक्ष से कूद पड़े। क्रोध और उद्वेग से व्याकुल उत्तङ्क ने एक लकड़ी से पैंतीस दिनों तक साँप का बिल खोदा। उत्तङ्क की इस खुदाई से बबड़ा पृथिवी काँप उठी। तब महातेजस्वी वज्रपाणि इन्द्र घोड़ों से युक्त रथ पर सवार हो, वहाँ गये और उत्तङ्क को देखा।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! इन्द्र ब्राह्मण का वेष धारण कर और उत्तङ्क को दुःखी देख स्वयं दुःखी हुए फिर वे उनसे बोले—हे द्विजवर्य! तुम्हारे लिये यह कार्य असाध्य है। क्योंकि यहाँ से नागलोक एक हज़ार योजन है। अतः तुम इस लकड़ी की खुदाई से कहाँ तक पूर डालोगे।

उत्तङ्क ने कहा—हे ब्रह्मन्! यदि मुझे नागलोक में कुण्डल न मिले, तो मैं आपके सामने ही अपनी जान दे दूँगा।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! जब इन्द्र उन दृढ़सङ्कल्प उत्तङ्क के निश्चय को बदलने में सफल न हुए, तब उन्होंने उत्तङ्क की लकड़ी की नोंक में वज्र का प्रवेश कर दिया। तब तो आसानी से उतङ्क पृथिवी खोदते हुए नागलोक का मार्ग बनाने में सफल हुए। उस रास्ते से जा, उत्तङ्क ने सहस्रयोजनव्यापी नागलोक देखा। हे महाभाग! नागलोक दिव्य मणियों और मोतियों से अलङ्कृत तथा सुवर्णमय परकोटे से घिरा हुआ था। उसके बीच जो बावड़ियाँ थीं वे स्फटिक पत्थर की थीं। नदियों पर पक्के घाट बने हुए थे और उनमें विमल जल बह रहा था। वृक्षों पर भाँति भाँति के पक्षी बैठे हुए थे। नागलोक का दरवाज़ा पाँच योजन चौड़ा और सौ योजन लंबा था। नागलोक का विस्तार देख, उत्तङ्क को कुण्डलों के मिलने की आशा न रही। अतः वे हताश होने के कारण उदास हो गये। नागलोक के द्वार के निकट काले रंग का एक घोड़ा खड़ा था। उसका मुख ताँबे के रंग का था और पूँछ सफेद रंग की थी। उसने उत्तङ्क से कहा—हे उत्तङ्क! यह अपान भूमि मेरी है। तुम यहाँ जलपान करो। ऐसा करने

से तुम्हें तुम्हारे कुण्डल मिल जायँगे। ऐरावत नाग का पुत्र तुम्हारे कुण्डल यहाँ ले आया है। जलपान करने के विषय में तुम अपने मन में किसी प्रकार की बुराई मत समझना। क्योंकि तुम अपने गुरु गौतम के आश्रम में भी तो ऐसा ही आचरण करते थे।

उत्तङ्क ने कहा—मुझे कैसे विश्वास हो कि, आप मेरे गुरु के आश्रम में थे। अतः आप मेरा वहाँ का आचरण जानते हैं। यदि आप जानते हैं, तो आप बतलावें कि, मैं उस आश्रम में कैसा आचरण किया करता था?

अश्व ने कहा—हे विप्र! मैं तुम्हारे गुरु गौतम का गुरु हूँ। तुम मुझे ज्वलन्त जातवेदस् (अग्नि) समझो। तुम गुरु के लिये शुद्धभाव से मेरा सदा पूजन किया करते थे। अतः मैं तुम्हारे कल्याण के लिये उपाय करूँगा। तुम मेरे कथनानुसार शीघ्र कार्य करो। अब देर मत करो। अग्निदेव के इन वचनों को सुन, उत्तङ्क ने तदनुसार ही किया। तदनन्तर वृतार्चि अर्थात् अग्निदेव उत्तङ्क पर प्रसन्न हो, नागलोक भस्म करने को उद्यत हुए। तब उनके शरीर के रोमकूपों से धुआँ निकलने लगा। हे भारत! वह धुआँ ऐसा फैला कि, नागलोक में कुछ भी न देख पड़ने लगा। तब तो ऐरावत के घर में वासुकि आदि नागों ने बड़ा हाहाकार मचाया। उस समय कुहरे से ढके वनों तथा पर्वतों की तरह, नागों के घर उस धूएँ से ढक गये। नागों की आँखों में धुआँ भर गया और आग के ताप से उनका शरीर झुलसने लगा। तब वे सब एकत्र हो भृगुनन्दन उत्तङ्क के निकट गये और उनका उद्देश्य जानना चाहा। जब नागों को उत्तङ्क का निश्चय मालूम हुआ, तब तो वे बहुत घबड़ाये। विकल हो उन्होंने उत्तङ्क की पूजा की। फिर बूढ़ों और बालकों को आगे कर नागों ने सीस झुका झुका कर, उत्तङ्क को प्रणाम किये और प्रार्थना करते हुए बोले—भगवन्! अब आप हम लोगों पर प्रसन्न हों। नागों ने उत्तङ्क को प्रसन्न करने के लिये पाद्यार्घ्य दिया। फिर बहुमूल्य एवं दिव्य मणिजटित दोनों कुण्डल उनको लौटा दिये। तब प्रतापी उत्तङ्क ने

नागों से इस प्रकार सम्मानित हो और अग्निदेव की प्रदक्षिणा कर, गौतम के आश्रम की ओर गमन किया और वहाँ पहुँच गुरुपत्नी को दोनों कुण्डल अर्पण किये। साथ ही तंग करने वाले नागों का सारा वृत्तान्त भी गुरु से निवेदन किया।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय ! महात्मा उत्तङ्क त्रिलोक में परिभ्रमण कर, उन दिव्य मणिमय कुण्डलों को लाये। हे भरतर्षभ ! तुमने जिन उत्तङ्क के तप का प्रभाव पूँछा, वे उत्तङ्क मुनि ऐसे तपस्वी थे।

उनसठवाँ अध्याय

रैवत का वर्णन

राजा जनमेजय ने कहा—हे द्विजसत्तम ! महायशस्वी महाबाहु गोविन्द ने उत्तङ्क को वरदान देने के बाद फिर क्या किया ?

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय ! उत्तङ्क को वर दे, श्रीकृष्णचन्द्र जी सात्यकि सहित शीघ्रगामी रथ पर सवार हो, वहाँ से आगे बढ़े और रास्ते में अनेक तालावों, नदियों और पर्वतों को पीछे छोड़ते द्वारका की ओर बढ़ते चले गये। उस समय रैवतक पर्वत पर उत्सव हो रहा था। अतः युयुधान सहित श्रीकृष्ण वहाँ जा पहुँचे, वह पर्वतराज विविध प्रकार के अद्भुत रूपों से अलङ्कृत हो रहा था और उत्तमोत्तम वस्तुओं के जहाँ तहाँ ढेर लगे हुए थे। सुवर्ण की मालाओं, उत्तम पुष्पों, उत्तम वस्त्रों, कल्पवृक्ष, सोने के दीपकों तथा अन्य वृक्षों से वह शोभायमान हो रहा था। पर्वत पर जो गुफाएँ और झरने थे, वे अंधेरी जगहों में होने पर भी—सूर्य जैसे प्रकाश से प्रकाशमान थे। बजनी पताकाएँ उस पर जगह जगह लटक रही थीं। वहाँ स्त्रियों और पुरुषों के बोलने का शब्द ऐसा जान पड़ता था--मानों उत्तम गान हो रहा हो। मणियों से विभूषित रैवतक पर्वत, सुमेरु

की तरह दर्शनीय हो गया था। मदमाती तथा आनन्द में भरी स्त्रियों के शब्द और गान करने वाले पुरुषों के गगनस्पर्शी गाने की ध्वनि से ऐसा जान पड़ता था, मानों वह पर्वत ही गान कर रहा हो। प्रमत्त, मत्त और सम्मत्त प्राणियों के उत्कृष्ट शब्दों से वह स्थान प्रतिध्वनित हो रहा था। उस समय वह पर्वत किलकारियों से सुन्दर जान पड़ता था। विक्रेय वस्तुओं के बेचने वालों की बोलियों से एक निराला समा बँधा हुआ था। उस पर्वत पर ढेर के ढेर वस्त्र, मालाएँ, वीणा, वेणु, मृदङ्ग; मैरेय तथा विविध प्रकार की भक्ष्य भोज्य सामग्री उपस्थित थी। दीन, अँधे और कृपण पुरुषों को लगातार दान मिलने से वह रैवतक महागिरि का महोत्सव अत्यन्त आनन्ददायी जान पड़ता था। रैवतक के उत्सव में पुरुष वृष्णिवंशीय वीरों के डेरों में ठहरे हुए थे। उस समय डेरों तंबुओं से परिव्याप्त, वह गिरिवर, श्रीकृष्ण का सान्निध्य प्राप्त कर, इन्द्रालय अथवा देवलोक की तरह जगमग हो रहा था।

तदनन्तर बहुत दिनों से विदेशवासी हर्षितमना श्रीकृष्ण जी ने सात्यकि सहित उस उत्सव में वैसे ही प्रवेश किया; जैसे बहुत कठिन कर्मों को कर के इन्द्र दानवों में प्रवेश करते हैं। भोज, वृष्णि और अन्धक वंशी वीरगण श्रीकृष्ण के पास वैसे ही गये, जैसे देवता लोग इन्द्र के सामने जाते हैं। उस समय उन बुद्धिमान् श्रीकृष्ण जी ने उनका यथोचित सत्कार कर, उनसे कुशल पूँछी। तदनन्तर वे प्रसन्नचित्त होते हुए अपने माता पिता के निकट गये और उनको प्रणाम किया। माता पिता ने उनको अपने हृदय से लगा लिया। इसके बाद श्रीकृष्ण जी माता पिता के समीप बैठे हुए वृष्णियों के बीच में बैठ गये। जब श्रीकृष्ण हाथ, मुँह, पैर धो कर, आराम से बैठे; तब पिता के पूँछने पर, उन्होंने उनको युद्ध का समस्त वृत्तान्त कह सुनाया।

साठवाँ अध्याय

श्रीकृष्ण के मुख से युद्ध का वर्णन

वसुदेव जी बोले—कृष्ण ! लोगों के मुँह से मैंने युद्ध की बड़ी बड़ी अद्भुत बातें सुनी हैं। किन्तु तुम तो वहाँ स्वयं मौजूद थे और तुमने कौरव पाण्डवों का युद्ध अपनी आँखों से देखा था। अतः तुम मुझे उस युद्ध का यथार्थ वर्णन सुनाओ। भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, और शल्य के साथ महाबली पाण्डवों का तथा अनेक वेशधारी तथा रूपविशिष्ट अनेक देशों के रहने वाले अन्यान्य कृतास्त्र क्षत्रियों का जिस प्रकार युद्ध हुआ—सो हमें सुनाओ।

वैशम्पायन बोले—हे जनमेजय ! माता के निकट बैठे हुए पिता वसुदेव जी के इन वचनों को सुन, श्रीकृष्ण जी ने युद्ध का वर्णन किया और जिस प्रकार पाण्डवों के हाथों कौरव वीर मारे गये थे—सो भी कहा।

श्रीकृष्ण जी बोले—पिता जी ! क्षत्रिय योद्धाओं की उस अद्भुत लड़ाई का वर्णन एक सौ वर्षों में भी पूरा नहीं किया जा सकता। अतः संक्षेप में मुख्य मुख्य राजाओं के वीरोचित कार्यों का दिग्दर्शन मात्र मैं कराता हूँ। सुनिये। कुरुवंशावतंस कौरवपक्षीय सेनापति भीष्म, सुर सेनापति इन्द्र की तरह, कौरवों की ग्यारह अक्षौहिणी सेना के अधिपति थे। पाण्डवों के पक्ष वाले नेता धीमान् शिखण्डी की अधीनता में सात अक्षौहिणी सेना थी। सव्यसाची अर्जुन उस समय शिखण्डी की रक्षा करते थे। दस दिन तक रोमाञ्चकारी घमासान युद्ध हुआ। तदनन्तर शिखण्डी ने और गाण्डीव-धनुष-धारी अर्जुन ने उस महासंग्राम में गङ्गानन्दन भीष्म को अनेक बाणों के आघात से मारा। भीष्म बेकाम हो गये और दक्षिणायन भर शरशय्या पर लेटे रहे। फिर जब उत्तरायण काल आया, तब उन्होंने शरीर त्याग दिया। भीष्म के बाद दैत्यगुरु भार्गव की तरह, कुरुकुल—गुरु महास्त्रवित् आचार्य द्रोण कौरवों के सेनापति हुए।

अब कौरवों की ओर नौ अक्षौहिणी सेना रह गयी थीं। नौ अक्षौहिणी सेना का सेनापति बन, आचार्य द्रोण ने युद्ध किया। कृपाचार्य तथा अन्य प्रधान क्षत्रिय वीर उनकी रक्षा करते थे। पाण्डवों की सेनाओं का सेनापतित्व मेधावी एवं महास्त्रवित् धृष्टद्युम्न को दिया गया। मित्रों द्वारा रक्षित वरुण की तरह वे भीम से रक्षित थे। महामना धृष्टद्युम्न ने द्रोणाचार्य द्वारा पिता का पूर्वकालीन पराभव स्मरण कर, द्रोणाचार्य का वध करने के लिये इस युद्ध में अत्यन्त दुष्कर कर्म किया। दोनों ओर के अनेक देशों के राजा लोग इस युद्ध में मारे गये। इन दोनों सेनापतियों का घोर संग्राम पाँच दिन तक होता रहा। अन्त में द्रोणाचार्य थक गये और धृष्टद्युम्न के वशवर्ती हो गये।

द्रोणाचार्य के मारे जाने बाद दुर्योधन की बची हुई पाँच अक्षौहिणी सेना का सेनापतित्व कर्ण को सौंपा गया। पाण्डवों की ओर भी अनेक वीर मारे गये और अब उनके पास केवल तीन अक्षौहिणी सेना रह गयी थीं। बची हुई तीन अक्षौहिणी सेना के अधिपति बन, पाण्डवों की ओर से अर्जुन ने कर्ण का सामना किया। इन दोनों का युद्ध केवल दो दिवस हुआ। क्योंकि दूसरे दिन पृथानन्दन अर्जुन ने सूतनन्दन कर्ण को युद्ध में मार डाला। कर्ण के मारे जाने पर, कौरव तेजहत और हतोत्साह हो गये। अन्त में कौरवों की ओर मद्रराज शल्य बची हुई तीन अक्षौहिणी सेना के सेनापति बनाये गये। अनेक हाथी घोड़ों और वीरों के मारे जाने से पाण्डवों में भी पूर्ववत् उत्साह न रह गया था। अतः शल्य से लड़ने के लिये एक अक्षौहिणी सेना के साथ महाराज युधिष्ठिर मैदान में गये। युधिष्ठिर ने आधे दिन मद्रराज शल्य के साथ अत्यन्त दुष्कर संग्राम किया और अन्त में शल्य को मार डाला।

शल्य के मारे जाने पर, महामना एवं अमित पराक्रमी सहदेव ने इस सारे बखेड़े की जड़ शकुनि का वध किया। शकुनि तथा समस्त सेना के मारे जाने पर, धृतराष्ट्र–नन्दन दुर्योधन अत्यन्त दुःखी हुआ और हाथ में

गदा ले और रणक्षेत्र त्याग द्वैपायनह्रद की शरण ली। इधर प्रतापी भीम ने दुर्योधन को खोजते हुए द्वैपायनह्रद में दुर्योधन को देखा। तब तो बची हुई सेना को साथ ले पाँचों पाण्डवों ने उस ह्रद को घेर लिया और वहाँ बैठे वे दुर्योधन की निन्दा करने लगे। वाक्यबाणों से मर्माहत हो, दुर्योधन हाथ में गदा लिये हुए जल के बाहिर आया और युद्ध के लिये उसने पाण्डवों को ललकारा। तब उपस्थित नृपति–मण्डली के सामने भीम सेन ने युद्ध में धृतराष्ट्रपुत्र दुर्योधन को मारा।

फिर पिता के वध से अत्यन्त कुपित अश्वत्थामा ने रात में, सोते हुए पाण्डव पक्षीय सैनिकों का, उनके शिविर में घुस, संहार किया। इस संहार में केवल सात्यकि सहित मैं और पाँचों पाण्डवों को छोड़ और कोई जीवित न बचा। दूसरे पक्ष में अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा रह गये। युधि-ष्ठिरादि पाण्डव इस लिये बच रहे कि, उस रात में वे अपने सैनिक शिविर में न थे।

कौरवेन्द्र दुर्योधन के बान्धवों सहित मारे जाने पर, विदुर और सञ्जय धर्मराज के पास आये। हे प्रभो! यह युद्ध अठारह दिन हुआ था। इस युद्ध में वीरगति को प्राप्त समस्त राजाओं को स्वर्ग प्राप्त हुआ।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! वृष्णिवंशियों ने इस रोमाञ्चकारी युद्ध का वर्णन सुन, बड़ा दुःख और शोक प्रकट किया।

इकसठवाँ अध्याय

युद्ध वर्णन

वैशम्पायन जी ने कहा—हे जनमेजय ! वसुदेव जी को अभिमन्यु के मारे जाने का वृत्तान्त सुन बड़ा दुःख होगा—यह सोच श्रीकृष्ण जी ने कौरवों-पाण्डवों के युद्ध का वर्णन करते हुए अभिमन्युवध का वृत्तान्त छोड़ दिया था। किन्तु सुभद्रा ने श्रीकृष्ण के अभिप्राय को न समझ, उन्हें टोंका

और कहा–भैया कृष्ण ! तुमने मेरे पुत्र अभिमन्यु के मारे जाने का हाल तो कहा ही नहीं—उसे तुम छिपा गये। सो वह भी तो कहो। यह कह पुत्र के वध से मर्माहत सुभद्रा शोकातुर हो भूमि पर गिर पड़ी। सुभद्रा को मूर्छित देख, वसुदेव जी भी मूर्छित हो गिर पड़े। तदनन्तर वसुदेव जी दौहित्र-वध-जनित शोक से मर्माहत हो श्रीकृष्ण से बोले—कृष्ण ! तुम संसार में सत्यवादी कहलाते हो; किन्तु मुझे आज तुम्हारे सत्यवादी होने में विश्वास नहीं रहा, क्योंकि तुमने मुझसे मेरे दौहित्र-वध का वृत्तान्त छिपाया। हे कृष्ण ! तुम मुझे अपने भाँजे के मारे जाने का पूर्ण वृत्तान्त सुनाओ। हे कृष्ण ! तुम्हारे जैसे नेत्रों वाले सुभद्रानन्दन अभिमन्यु की युद्ध में अकाल मृत्यु क्यों हुई ? हाय ! ऐसा महाशोक का अवसर उपस्थित होने पर भी मेरा हृदय टुकड़े टुकड़े क्यों न हुआ ? युद्ध में मृत्यु को प्राप्त अभिमन्यु ने मरते समय अपनी माता सुभद्रा के लिये और मेरे लिये क्या कुछ सँदेसा कहा था ? हे पुण्डरीकाक्ष ! वह चञ्चल नेत्रों वाला सुभद्रानन्दन अभिमन्यु मुझे अत्यन्त प्यारा था। उसने युद्ध में पीठ तो नहीं दिखलायी ? वह मारा कैसे गया ? हे गोविन्द ! युद्ध में शत्रुओं को देख उसका मुख विकृत तो नहीं हुआ ? हे कृष्ण ! तेजस्वी अभिमन्यु को मैं तो प्रशंसित ही समझता था। वह बालभाव से सब के सामने विनम्र वचन बोला करता था। हे केशव ! उस बालक को द्रोण, कर्ण, कृप आदि ने तो नहीं मारा ? क्योंकि शत्रुओं द्वारा मारा जा कर, वह किस प्रकार धराशायी हुआ सो मुझे बतलाओ। मेरा दौहित्र अभिमन्यु तो पराक्रमियों में श्रेष्ठ द्रोण, भीष्म और कर्ण से सदैव ईर्ष्या किया करता था।

जिस समय वसुदेव जी दुःखाक्रान्त हो इस प्रकार विलाप करने लगे; उस समय अत्यन्त दुःखित हो श्रीकृष्ण जी ने उनसे कहा—शत्रुओं के सामने जाने पर भी अभिमन्यु के चेहरे पर सिकुड़न नहीं आयी। उसने रणभूमि से मुख न मोड़, दुस्तर युद्ध किया था। सैकड़ों सहस्रों राजाओं को मार कर तथा द्रोणाचार्य और कर्ण के द्वारा पीड़ित हो, दुःशासन के पुत्र के हाथ वह

पड़ गया। यदि एक एक कर अभिमन्यु से शत्रु लड़ते, तो उनमें से कोई भी उसे परास्त नहीं कर सकता था। कौरवों की तो बात ही क्या—अकेले तो साक्षात् वज्रपाणि इन्द्र भी उसे युद्ध में नहीं हरा सकते थे। जब अर्जुन संसप्तकों के साथ मुख्य रणक्षेत्र से दूर हट कर युद्ध कर रहे थे; तब द्रोणादि योद्धाओं ने मिल कर उसे घेर लिया। तब भी सुभद्रानन्दन अभिमन्यु युद्ध में बहुसंख्यक शत्रुओं का संहार कर, अन्त में दुःशासनपुत्र के हाथ में जा पड़ा। हे महाप्राज्ञ! वह सुभद्रानन्दन निश्चय ही स्वर्ग में गया है। अतः आप उसके लिये शोकान्वित न हों। क्योंकि आप जैसे कृतबुद्धि पुरुष का दुःख में पड़ अप्रसन्न होना ठीक नहीं। जब कि, अभिमन्यु से लड़ने वाले महेन्द्र समान बलवान् कर्ण प्रभृति वीर लोग स्वर्गवासी हुए; तब अभिमन्यु स्वर्ग में क्यों न जायगा? हे दुर्द्धर्ष! आप शोक न करें। क्रोध के वश में न हों। परपुरञ्जय अभिमन्यु को निश्चय ही शास्त्र-पूत-गति प्राप्त हुई है। वीर अभिमन्यु के मारे जाने पर मेरी बहिन यह सुभद्रा दुःखार्त्ता हो, कुन्ती के निकट गयी थी और कुररी की तरह रोदन कर, इसने द्रौपदी से पूँछा था कि, हे आर्ये! वे सब पुत्र कहाँ हैं? मैं उन्हें देखना चाहती हूँ। सुभद्रा के इन वचनों को सुन कुरुस्त्रीगण सुभद्रा की दोनों भुजाओं को पकड़ अत्यन्त आर्त्त हो रोने लगी थीं। तब कुरुस्त्रियों सहित सुभद्रा ने उत्तरा से कहा—भद्रे! तेरा स्वामी कहाँ गया है? मुझे बतला, वह कब आवेगा? हे विराट्नन्दिनी! जब मैं अभिमन्यु को बुलाती थी, तब वह तुरन्त मेरी बात सुनते ही चला आता था। आज वह तेरा पति क्यों नहीं आता? हे अभिमन्यु! तुम युद्धप्रिय थे और अपने मामाओं से युद्ध की चर्चा किया करते थे। आज तुम मुझसे युद्ध की चर्चा क्यों आ कर नहीं करते? इस समय मैं इस प्रकार विलाप कर रही हूँ, तुम क्यों उत्तर नहीं देते?

तब कुन्ती ने सुभद्रा के इस विलाप को सुन, अत्यन्त दुःखित हो धीरे धीरे कहा—हे सुभद्रे! वह बालक अभिमन्यु रण में श्रीकृष्ण, सात्यकि और

निज पिता अर्जुन के द्वारा लालित होने पर भी कालकर्मानुसार मारा गया। मृत्युधर्म ही ऐसा है। अतः इस विषय में शोक मत करो। तुम्हारे उस दुर्द्धर्ष पुत्र को निश्चय ही परम गति प्राप्त हुई है। हे पद्म-पलाश-नयनी! तुम महत् क्षत्रिय कुल में उत्पन्न हुई हो। हे चञ्चलनयनी! अतः तुम्हें शोक करना उचित नहीं। हे शुभे! तुम गर्भवती उत्तरा की ओर देखो। इसके गर्भ से शीघ्र ही अभिमन्यु का पुत्र उत्पन्न होगा। हे यदुकुलोद्वह! कुन्ती ने इस प्रकार सुभद्रा को धीरज बँधाया और शोक त्याग अभिमन्यु का श्राद्धादि करवाया। धर्मज्ञ कुन्ती ने युधिष्ठिर, भीम और नकुल सहदेव द्वारा, अभिमन्यु के उद्देश्य से बहुत सा धन दान करवाया। फिर ब्राह्मणों को बहुत से गोदान दे, कुन्ती ने उत्तरा को बुला कर कहा—हे अनिन्दिते! हे विराट्-नन्दिनी! इस समय तुम्हें पति के लिये शोक करना उचित नहीं है। इस समय तुम्हें गर्भस्थित शिशु की रक्षा करनी चाहिये। यह कह कुन्ती चुप हो गयी। मैं सुभद्रा को यहाँ ले आया। हे दुर्द्धर्ष मानद! आपका दौहित्र इस प्रकार मरा है। अतः आप शोक परित्याग कर चित्त को शोकाकुल न कीजिये।

बासठवाँ अध्याय

वसुदेव जी द्वारा अभिमन्यु के उद्देश्ये से श्राद्धादि व दान

श्रीवैशम्पायन जी बोले—उस समय धर्मात्मा शूरनन्दन वसुदेव ने श्रीकृष्ण की बातें सुन और शोक परित्याग कर, श्राद्ध एवं दानादि कार्य किये। फिर साठ सहस्र सर्वगुणयुक्त महातेजस्वी ब्राह्मणों को भोजन करवाये। उस समय महाबाहु श्रीकृष्ण ने धन वस्त्र आदि दे ब्राह्मणों का धनाभाव दूर कर दिया था। उस समय सुवर्ण, गऊ, शय्या और वस्त्र दान पा और "बढ़ती हो" "बढ़ती हो" कह कर, ब्राह्मण आशीर्वाद देते थे। क्या सात्यकि, क्या श्रीकृष्ण—अभिमन्यु को श्राद्ध कृत्य के समय दुःख से सन्तप्त हो, शान्ति-

लाभ न कर सके। उधर हस्तिनापुर में पाण्डव भी अभिमन्यु के लिये विरह-जन्य शोक से दुःखी रहते थे। हे राजेन्द्र! विराट्पुत्री उत्तरा ने पति के विरह-जन्य दुःख से आर्त हो बहुत दिनों तक भोजन ही नहीं किये। इससे उसका कुक्षिस्थ गर्भ प्रलीन हो गया। धीमान् महातेजस्वी व्यासदेव को यह बात योगबल से मालूम पड़ी। तब वे हस्तिनापुर में आये और कुन्ती तथा उत्तरा से कहा—तुम लोग शोक मत करो। उत्तरा के गर्भ से महातेजस्वी पुत्र उत्पन्न होगा। वह पुत्र वासुदेव तथा मेरे कथनानुसार पाण्डवों के बाद पृथिवी का शासन करेगा।

हे जनमेजय! व्यासदेव धर्मराज के निकट अर्जुन को देख और उन्हें हर्षित कर बोले—हे अर्जुन! तुम्हारे महामना भाग्यवान् पौत्र होगा। वह पौत्र धर्मपूर्वक ससागरा पृथिवी का पालन करेगा। हे कुरुपुङ्गव! अतः तुम शोक मत करो। मैंने जो कहा है; उसमें तुम ज़रा भी सन्देह मत करो। मैंने जो बात कही है वह सत्य है। वीरश्रेष्ठ अभिमन्यु ने निज अर्जित अमरलोक पाया है। अतः तुम्हें और कुरुकुल के अन्य लोगों को उसके लिये शोक न करना चाहिये।

पितामह वेदव्यास जी के इन वचनों को सुन, धनञ्जय अर्जुन पुत्रशोक को त्याग कर, प्रसन्न हुए। हे धर्मज्ञ जनमेजय! तुम्हारे पिता गर्भ में शुक्ल-पक्ष के चन्द्रमा की तरह बढ़ने लगे। तदनन्तर व्यासदेव धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर को अश्वमेध यज्ञ करने की आज्ञा दे, अन्तर्धान हो गये। मेधावी धर्मराज ने व्यासदेव का वचन सुन, धन लाने के लिये भाइयों को चलने की आज्ञा दी।

तिरसठवाँ अध्याय

धन लाने के लिये पाण्डवों का प्रस्थान

राजा जनमेजय ने पूँछा हे ब्रह्मन् ! महात्मा व्यासदेव का वचन सुन कर, युधिष्ठिर ने फिर अश्वमेधानुष्ठान किस प्रकार किया ? हे द्विजसत्तम ! राजा मरुत्त ने जो रत्न धराधाम पर सञ्चय कर के रखे थे, वे रत्न पाण्डवों के हाथ क्यों कर लगे ? ये सब बातें आप मुझे सुनावें।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय ! व्यासदेव के वचन सुन, महाराज युधिष्ठिर अपने भाई अर्जुन, भीम और माद्रीसुत यमज नकुल सहदेव को बुला कर बोले—हे वीरगण ! कुरु-कुल-हितैषी तथा सुहृदों के ऐश्वर्य की अभिलाषा रखने वाले तपोधन एवं बुद्धिमान् महात्मा श्रीकृष्ण ने सुहृदता के अनुरोध से जो बातें कही थीं और विचित्रकर्मा वेदव्यास जी ने तथा भीष्म पितामह ने जो कहा था, वह सब तुम लोग सुन ही चुके हो। हे भाइयो ! उन बातों को स्मरण कर, हम अपने सब के वर्तमान तथा भविष्यत् के हित के लिये—उस कार्य को करने की इच्छा करते हैं। क्योंकि ब्रह्मवादियों के वाक्य फलोत्पत्ति के बारे में कल्याणप्रद हुआ करते हैं। इस वसुन्धरा के वसु (धन) रहित होने के कारण ही उस समय व्यासदेव ने राजा मरुत्त के धन की कथा कही थी। हे नृपगण ! अतः यदि आप लोग बहुमत से कर्त्तव्य निर्द्धारित कर दें, तो उस धन को हम यहाँ ले आवें। हे भीम ! बतलाओ, तुम्हारी क्या राय है ?

हे जनमेजय ! जब युधिष्ठिर ने इस प्रकार कहा, तब भीम हाथ जोड़ कर, महाराज युधिष्ठिर से कहने लगे।

भीमसेन बोले—हे महाबाहो ! आपने व्यास जी के उपदेशानुसार धन लाने के विषय में जो कुछ कहा—उसे मैं ठीक समझता हूँ। हे प्रभो ! यदि अविक्षितनन्दन राजा मरुत्त का वह धन हाथ आ जावे, तो मैं तो समझता हूँ

कि, उसी धन से हम लोगों के सब काम पूरे हो सकते हैं। अतएव आपके कल्याण के लिये कपर्दी गिरीश महादेव जी को नमस्कार कर और उनकी विधि पूर्वक पूजा कर, हम वह धन ले आवेंगे। हम लोग वचन, कर्म और ज्ञान से उन देवाधिदेव भूतनाथ तथा उनके सेवकों को प्रसन्न कर के निश्चय ही वह धन पा सकेंगे। वृषभध्वज के प्रसन्न होने पर, वे सब रौद्रदर्शन किन्नर जो उस धन की रक्षा करते हैं, अपने वशवर्त्ती हो जाँयगे।

हे भरत ! जब भीमसेन ने यह कहा—तब महाराज युधिष्ठिर अत्यन्त प्रसन्न हुए। अर्जुनादि अन्य भाइयों ने भी भीमसेन के कथन का समर्थन करते हुए कहा—ऐसा होना ही चाहिये।

तदनन्तर पाण्डवों ने रत्न लाने का निश्चय कर, उत्तम मुहूर्त्त में उस ओर अपनी सेना रवाना की। तदनन्तर पाण्डुपुत्रों ने ब्राह्मणों से स्वस्ति-वाचन करा के, मोदक, पायस और पिष्टक से देवदेव का पूजन करते हुए तथा महाराज युधिष्ठिर को आश्वासित कर के अत्यन्त हर्ष के साथ यात्रा की। यात्रा के समय नगरनिवासियों ने मङ्गलसूचक कार्य किये और ब्राह्मणों ने शुभाशीर्वाद दिये। तदनन्तर पाण्डवों ने अग्नि की और ब्राह्मणों की परिक्रमा की और सीस नवा उनको प्रणाम किया। फिर उन लोगों ने पुत्र शोकातुर गान्धारी, धृतराष्ट्र तथा माता कुन्ती से आज्ञा प्राप्त कर, प्रस्थान किया। पाण्डवों ने कुरुवंशीय धृतराष्ट्र पुत्र युयुत्सु को महाराज धृतराष्ट्र तथा कुन्ती को सौंप, पुरवासियों तथा ज्ञानी ब्राह्मणों के आशीर्वाद और उनकी शुभ कामनाओं को प्राप्त कर, यात्रा की।

चौंसठवाँ अध्याय

पाण्डवों का पर्वत पर पहुँचना

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय ! तदनन्तर प्रहृष्टमना नरवाहन युक्त पाण्डव रथों के घरघराहट से पृथिवी को प्रतिध्वनित करते हुए राजधानी से रवाना हुए, उस समय सूत, मागध और बन्दीजनों ने स्तुति वाक्यों से उनका स्तव किया। वे लोग उसी प्रकार अपनी सेनाओं से घिरे जा रहे थे, जिस प्रकार सूर्य, किरन जाल से घिरे हुए भ्रमण करते हैं। सिर पर सफेद छतरी के रहने से राजा युधिष्ठिर पूर्णिमा के चन्द्रमा की तरह शोभायमान हो रहे थे। पुरुषश्रेष्ठ पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर रास्ते में खड़े प्रहृष्ट पुरुषों की जयजयकार के बीच यथाविधि और यथानीति आशीर्वाद ग्रहण करते जाते थे। हे राजन् ! युधिष्ठिर के साथ जाने वाले सैनिकों के हलहला शब्द से आकाश गूँजने लगा। तदनन्तर महाराज युधिष्ठिर तालाबों, नदियों, वनों तथा उपवनों को अतिक्रम कर, हिमालय पर्वत के निकट जा पहुँचे। हे राजेन्द्र ! जब पाण्डवों सहित महाराज युधिष्ठिर उस स्थान पर जा पहुँचे जहाँ राजा मरुत्त का धन था, तब उन लोगों ने वहाँ डेरे तंबू खड़े करवाये। हे भरतसत्तम ! इन लोगों के तंबू डेरे ऐसे जगह खड़े किये गये जो चौरस थी। तप एवं विद्या से सम्पन्न पूर्ण जितेन्द्रिय ब्राह्मणों के तथा वेद वेदाङ्गवित् पुरोहित धौम्य के तंबू अथवा डेरे सब के आगे थे। मंत्रियों सहित महाराज युधिष्ठिर का तंबू बीच में था। उनके तंबू के इधर उधर अन्य क्षत्रियों तथा सैनिकों के डेरे खड़े किये गये थे। यह शिविरावास नौ खण्डों में विभक्त था और उसमें छः मार्ग थे। हाथियों के बाँधने के लिये अलग स्थान निर्दिष्ट किया गया था। इस प्रकार जब सब लोगों के ठहरने की व्यवस्था करवा दी गयी, तब महाराज युधिष्ठिर ने ब्राह्मणों से कहा— हम यहाँ अधिक समय लगाना नहीं चाहते; किन्तु साथ ही अच्छे मुहूर्त्त में यहाँ का कार्य आरम्भ करना चाहते हैं। अतः आपके कथनानुसार शुभ दिन, शुभ

नक्षत्र और शुभ मुहूर्त्त में यह कार्य किया जायगा। धर्मराज के शुभचिन्तक उन ब्राह्मणों ने तथा पुरोहित धौम्य ने, कहा; हे महाराज! आज का दिन परम शुभ है, अतः आज ही हम लोग एकत्र हो उस शुभ कर्म को आरम्भ कर देंगे। अतः आज हम सब को केवल जल पी कर निराहार व्रतोपवास करना चाहिये। यह सुन पाण्डवों ने उस दिन केवल जलपान कर, प्रहृष्ट मन से समस्त दिन उपवास किया। फिर जब रात हुई तब उन्होंने यज्ञस्थल में प्रज्वलित अग्नि की तरह, कुशों की चटाइयों पर लेट और ब्राह्मणों के मुख से धर्मकथाएँ सुनते सुनते, रात बिता डाली। जब सबेरा हुआ, तब ब्राह्मणों ने धर्मपुत्र युधिष्ठिर से कहा।

पैसठवाँ अध्याय

शिवपूजन और धनहरण

ब्राह्मण बोले—हे नरनाथ! प्रथम आप त्र्यम्बक का पूजन कीजिये। तदनन्तर हम लोग आपकी अर्थसिद्धि के लिये यत्न करेंगे। यह सुन महाराज युधिष्ठिर ने महादेव के पूजन की सामग्री मँगवायी। इतने में पुरोहित जी ने विशुद्ध घृत से अग्नि को प्रज्वलित कर, विधिपूर्वक उसका पूजन किया। फिर मन्त्र पढ़ कर चरु तैयार किया।

हे प्रजानाथ! तदनन्तर मंत्रपूत पुष्प, मोदक, पायस तथा माँस मँगवा, बलि दी और महादेव जी का पूजन किया। फिर फल फूलों से यक्षराज कुबेर तथा मणिभद्र आदि उनके अनुचरों को बलि प्रदान किया। फिर खिचड़ी, माँस, तिलयुक्त चाँवलों और एक घड़ा जल से, अन्यान्य यक्षों तथा भूतपति का पूजन किया। उस समय महाराज युधिष्ठिर ने ब्राह्मणों को एक सहस्र गोदान दिये। तदनन्तर रात्रिचर भूतों को बलिप्रदान दिलवाया।

हे राजन् ! देवाधिदेव महादेव का स्थान धूप दीप से पूरित कर अनेक प्रकार के पुष्पों से सजाया गया था। रुद्र और उनके गणों का पूजन कर चुकने के बाद, महाराज युधिष्ठिर व्यासदेव को आगे कर, बड़े यत्न के साथ उस निधि के निकट गये। वहाँ वीर्यवान युधिष्ठिर ने विविध विचित्र पुष्पों से, पिष्टक से और कृशर से धनाध्यक्ष कुबेर तथा शङ्खादि निधियों तथा निधिपालों का पूजन कर, उनको प्रणाम किया। तदनन्तर ब्राह्मणों से स्वस्तिवाचन करवाया। कुरुपति युधिष्ठिर तेजस्वी ब्राह्मणों के मुख से पुण्याहवाचन सुनते हुए धन को खुदवाने लगे।

खुदवाने पर स्रुवा, स्थाली आदिक यज्ञीय पात्र, लोटा, कमण्डलु, कलसियाँ, सोने की झारियाँ, कढाह, कलसे, एक दो नहीं, हज़ारों की संख्या में निकले। उन सब को युधिष्ठिर ने पेटियों में भरवा ऊँटों की पीठों पर लदवाया। बोझ ढोने के लिये महाराज के पास छाछठ हज़ार ऊँट, ऊँटों से दूने घोड़े और एक लाख हाथी हथिनियाँ, छकड़े, रथ, असंख्य खच्चर तथा कुली थे। आठ हज़ार ऊँटों, सोलह हज़ार छकड़ों और चौबीस हज़ार हाथियों पर तो केवल सोना ही लादा गया था। अन्त में धन निकलवाने के बाद महादेव का पूजन कर और वाहकों के सामर्थ्यानुसार उन पर सोना आदि धन लदवा कर, पाण्डव हस्तिनापुर की ओर रवाना हो गये। सब के आगे पुरोहित धौम्य की सवारी रहती थी। ये लोग प्रतिदिन दो कोस के हिसाब से चलते थे। बोझा ढोने वालों को यद्यपि बोझ ढोने से कष्ट होता था, तथापि वे पाण्डवों को प्रसन्न करने के लिये किसी न किसी तरह उस बोझ को ले कर चलते ही थे।

छाछठवाँ अध्याय

राजा परीक्षित का जन्म

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! इस बीच में पुरुषश्रेष्ठ श्रीकृष्ण भी युधिष्ठिर के कथनानुसार द्वारका पुरी से हस्तिनापुर में अश्वमेध यज्ञ में सम्मिलित होने के लिये आये। उनके साथ प्रद्युम्न, युयुधान, चारुदेष्ण, साम्ब, गद, कृतवर्मा, सारण, वीरनिष्ठ और उल्मुक सहित बलदेव जी थे। ये लोग सुभद्रा, द्रौपदी तथा कुन्ती के पास सिष्टई के लिये आये और विधवा क्षत्रियाणियों को सान्त्वना प्रदान की। इनको हस्तिनापुर में आया हुआ देख, धृतराष्ट्र और विदुर ने उन सब का सम्मान पूर्वक आगत स्वागत किया। विदुर और युयुत्सु द्वारा भली भाँति सम्मानित श्रीकृष्ण जी वृष्णिवंशियों सहित हस्तिनापुर में ठहरे।

हे जनमेजय! तदनन्तर वृष्णिवंशियों के हस्तिनापुर में रहने के दिनों में तुम्हारे पिता परीक्षित का जन्म हुआ। किन्तु परीक्षित के जन्म लेने पर लोगों को हर्ष और विषाद दोनों ने घेरा। लोगों को बालक होने का तो हर्ष था; किन्तु ब्रह्मास्त्र से पीड़ित होने के कारण यह बालक मृतक सा भूमिष्ठ हुआ—इसका लोगों को विषाद था। हर्षित लोगों के सिंहनाद से दसो दिशाएँ प्रतिध्वनित हो उठीं और पुनः शान्त हो गयीं। अनन्तर व्यथितेन्द्रिय एवं दुःखितचित्त हो श्रीकृष्ण ने, सात्यकि को साथ ले, तुरन्त अन्तःपुर में प्रवेश किया। रनवास में पहुँच श्रीकृष्ण ने देखा कि, उनकी बुआ कुन्ती धाड़ मार कर रो रही है और यह कहती हुई कि, "शीघ्र श्रीकृष्ण के समीप चलो" शीघ्रता पूर्वक चली आ रही है। उसके पीछे द्रौपदी, सुभद्रा तथा अन्य बान्धवों की स्त्रियाँ भी करुणस्वर से रोती हुई चली आती हैं। हे राजशार्दूल! इस समय कुन्ती ने श्रीकृष्ण को अपने सामने देख और बड़े करुणस्वर से विलाप कर, उनसे कहा—हे महाबाहो! तुम्हीं हमारी एकमात्र गति हो और तुम्हींसे हमारी प्रतिष्ठा है। यह कुरुकुल तुम्हारे ही

अधीन है। हे यदुप्रवीर ! भाँजे का यह पुत्र, अश्वत्थामा के अस्त्र के प्रहार से मृतक उत्पन्न हुआ है। हे केशव ! इसे तुम जीवन दान दो। क्योंकि, हे प्रभो ! तुमने उस समय प्रतिज्ञा की थी कि, मैं मृतक उत्पन्न होने वाले बालक को सजीव कर दूँगा। सो हे पुरुषोत्तम ! देखो, यह मृत बालक जन्मा है। हे लक्ष्मीपते ! तुम उत्तरा, सुभद्रा, द्रौपदी और मुझ समेत युधिष्ठिर, भीमसेन, नकुल और सहदेव की रक्षा करो। क्योंकि हम सब का जीना मरना इसी बालक के ऊपर निर्भर है। यही एक मेरे ससुर और पाण्डवों को पिण्ड देने वाला है। हे जनार्दन ! तुम्हारा मङ्गल हो। अब तुम अपने समान बलवान् और पराक्रमी स्वर्गवासी प्यारे अभिमन्यु के इस प्यारे अभीष्ट को जीवित करो। हे शत्रुनाशन ! पहले अभिमन्यु ने प्रणयवश उत्तरा से जो कहा था, उसके कथन में तो कुछ भी सन्देह नहीं है। हे दाशार्ह ! उस समय अर्जुनपुत्र अभिमन्यु ने विराटपुत्री उत्तरा से कहा था कि—हे भद्रे ! तेरा पुत्र मेरे मातुल कुल में रह कर, वृष्णियों और अन्धक वंशियों से अस्त्र शस्त्र सम्बन्धी तथा धनुर्वेद एवं नीतिशास्त्र की शिक्षा प्राप्त करेगा। सो अभिमन्यु के कथनानुसार यह बालक तो उत्पन्न हुआ। हे मधुसूदन ! हम सीस नवा तुमसे प्रार्थना करती हैं कि, इस कुरु-कुल के हितार्थ तुम जो उचित समझो सो करो।

यह कह कुन्ती अन्यान्य कुरुस्त्रियों सहित दोनों भुजाएँ उठाये हुए भूमि पर गिर पड़ी। उधर आँखों में आँसू भरे हुए कौरवों की स्त्रियाँ कहने लगीं—श्रीकृष्ण के भाँजे के मरा हुआ बालक जन्मा है। हे भारत ! सब के इस प्रकार कहने पर, श्रीकृष्ण पृथिवी पर गिरी हुई कुन्ती को उठा कर उन्हें ढाँढस बधाने लगे।

सड़सठवाँ अध्याय

परीक्षित का जीवित होना

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय ! उस समय कुन्ती के उठने पर सुभद्रा ने अपने भाई श्रीकृष्ण को देख और दुःख से अत्यन्त कातर हो कहा—हे पुण्डरीकाक्ष ! देखो—कुरुकुल के परिक्षीण होने ही से बुद्धिमान् अर्जुन का पौत्र परिक्षीण तथा गतायु हो कर उत्पन्न हुआ है। आचार्य द्रोण के पुत्र अश्वत्थामा ने भीमसेन के वध के लिये जो ऐषिकास्त्र छोड़ा था, वह मेरे और अर्जुन के विद्यमान होते भी उत्तरा के लगा था। हे केशव ! इस समय उस अजेय अभिमन्यु को उसके पुत्र सहित न देखने से मैं तो समझती हूँ कि, वह ऐषिकास्त्र मुझ विदीर्णहृदया के लगा है। धर्मात्मा महाराज युधिष्ठिर भीमसेन, अर्जुन, और माद्रीपुत्र नकुल एवं सहदेव—अभिमन्यु के पुत्र को मरा उत्पन्न हुआ सुन, क्या कहेंगे ? हे कृष्ण ! इससे तो अश्वत्थामा ने पाण्डवों का वंश ही लोप कर दिया। हे वार्ष्णेय ! अभिमन्यु तो निस्सन्देह पाँचो भाइयों को प्यारा था—उसे अश्वत्थामा के अस्त्र से विजय किया हुआ सुन, पाण्डव क्या कहेंगे ! हे जनार्दन ! अभिमन्यु के मृतक पुत्र उत्पन्न हो—इससे बढ़ कर दुःख की और क्या बात होगी ? हे पुरुषोत्तम ! आप अपनी बुआ कुन्ती और अनन्य भक्त द्रौपदी की ओर देखो। मैं सीस नवा तुमको प्रसन्न करती हूँ। हे माधव ! जिस समय अश्वत्थामा पाण्डवों की वधू के गर्भस्थ बालक को नाश करने लगा था ; उस समय तुमने क्रोध में भर उससे कहा था—रे नराधम ब्रह्मबन्धु ! मैं अभिमन्यु के पुत्र को जीवित कर तेरी आशा पर पानी फेर दूँगा। मैं तुम्हें प्रसन्न करती हूँ और उस बात का तुम्हें स्मरण कराती हूँ। तुम अभिमन्यु के पुत्र को जीवित कर दो। हे वृष्णिशार्दूल ! यदि प्रतिज्ञा कर के भी तुम अपनी प्रतिज्ञा को पूरी न करोगे, तो याद रखो, मैं तुम्हारे सामने ही अपनी जान दे दूँगी। हे वीर ! यदि यह अभिमन्यु का पुत्र जीवित न

हुआ तो तुम्हारे जीवित रहने से मुझे क्या प्रयोजन। हे दुर्द्धर्ष ! अतः जैसे बादल जल की वर्षा कर, शस्य को जीवित करते हैं, वैसे ही तुम अभिमन्यु के इस मृत पुत्र को जीवित करो। हे केशव ! तुम धर्मात्मा, सत्यवादी तथा सत्यपराक्रमी हो। तुममें इतनी सामर्थ है कि, तुम चाहो तो मृत तीनों लोकों को भी पुन: जीवित कर सकते हो—फिर अपने प्यारे भाँजे के मृत पुत्र को क्यों जीवित नहीं करते। हे कृष्ण ! मुझे तुम्हारा प्रभाव मालूम है। इसीसे मैं तुमसे प्रार्थना करती हूँ। तुम पाण्डुपुत्रों पर यह परम अनुग्रह करो। हे महाबाहो ! अपनी हतपुत्रा और शरणागत बहिन पर तुम्हें दया करनी चाहिये।

अड़सठवाँ अध्याय

उत्तरा का विलाप

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय ! जब सुभद्रा ने यह कहा; तब केशीनिषूदन श्रीकृष्ण ने अत्यन्त दुःखी हो चिल्ला कर कहा—तथास्तु (ऐसा ही हो)। यह सुन सब लोग जो वहाँ थे हर्षित हुए। जैसे घाम का सताया हुआ मनुष्य जल प्राप्त कर प्रसन्न होता है, वैसे ही उस समय नरोत्तम श्रीकृष्ण के उस वचन से सब कोई अत्यन्त सन्तुष्ट हुए। तदनन्तर शीघ्र ही तुम्हारे पिता की सोवर में घुस गये और वहाँ जा कर देखा कि, सोवर-घर सफेद मालाओं से विधिपूर्वक सजाया गया है और वहाँ जल से भरे घड़े रखे हुए हैं। घृत, तिल, तण्डुल, सर्षप, वृक्षों के पल्लव, चमचमाते अस्त्र और अग्नि यथायोग्य स्थानों पर रखे हुए हैं। वृद्ध परिचारिकाएँ जच्चा की परिचर्या के लिये वहाँ उपस्थित हैं। चिकित्सा के लिये निपुण वैद्य बैठे हुए हैं। कुशल पुरुषों द्वारा रक्षोघ्न वस्तुएं विधिपूर्वक स्थापित की गयी हैं। तुम्हारे पिता की सोवर के ऐसे घर को देख, श्रीकृष्ण जी बहुत प्रसन्न

हुए और धन्य धन्य कहने लगे। श्रीकृष्ण के ऐसा कहने पर द्रौपदी लपक कर उत्तरा के निकट गयी और बोली—हे भद्रे! यह तुम्हारे ससुर, पुराण पुरुषोत्तम, ऋषिकल्प, अचिन्त्यात्मा एवं अपराजित मधुसूदन श्रीकृष्ण तुम्हारे निकट आ रहे हैं। यह सुन उत्तरा ने बड़ी सावधानी से अपने दुःख के वेग को रोक और श्रीकृष्ण को आते देख, चट घूँघट काढ़ लिया। तदनन्तर उस तपस्विनी उत्तरा ने शोक से विकल हो, करुण स्वर से विलाप कर कहा—हे कमलनयन! देखिये, मैं पुत्रविहीन हुई हूँ। आप अभिमन्यु सहित मुझे भी मरा हुआ जानिये। हे मधुसूदन! मैं सीस झुका आपसे प्रार्थना करती हूँ कि, आप द्रोणपुत्र के अस्त्र से दग्ध मेरे इस पुत्र को जीवित कर दें। हे पुण्डरीकाक्ष! यदि धर्मराज भीमसेन अथवा आप यह कहते कि, ऐषिकास्त्र इस निर्दोषा गर्भिणी का वध करे, तो उस समय मेरा विनाश होना ही श्रेष्ठ था। क्योंकि आज यह समय तो देखने को न मिलता। दुष्टबुद्धि द्रोणनन्दन को ब्रह्मास्त्र से इस गर्भस्थबालक की हत्या कर, क्या मिल गया? हे शत्रुनिवहर्ण! मैं सीस झुका, आपको प्रसन्न करती हुई आपसे प्रार्थना करती हूँ कि, आप इस बालक को जीवित कर दें। हे गोविन्द! यदि यह बालक जीवित न होगा, तो मैं आपके सामने ही जान दे दूँगी। हे साधो! हाय मेरी सब आशाओं पर अश्वत्थामा ने पानी फेर दिया। तब मैं अब जी कर ही क्या करूँगी? हे कृष्ण! मेरी बड़ी इच्छा थी कि, भरी गोद से मैं आपको प्रणाम करूँगी, किन्तु मेरी वह इच्छा विफल हुई। चञ्चलनेत्र अभिमन्यु आपका परमप्रिय पात्र था। उसीके पुत्र को, ब्रह्मास्त्र से मृत आप स्वयं देखिये। इसका पिता जैसा कृतघ्न और निष्ठुर था, यह बालक भी वैसा ही हुआ है। क्योंकि यह बालक भी अपने पिता की तरह पाण्डवश्री को परित्याग कर, यमलोक का पाहुना बना है। हे केशव! मैंने पहले अभिमन्यु के सामने यह प्रतिज्ञा की थी कि, यदि युद्ध में तुम मारे गये, तो मैं तुम्हारा अनुगमन करूँ, अर्थात् मैं तुम्हारे साथ सती हो जाऊँगी, किन्तु हे कृष्ण! नृशंसतावश और जीने की

आशा से मैंने अपनी प्रतिज्ञा पूरी न की। अब जब मैं उसके पास जाऊँगी तब वह (अभिमन्यु) मुझसे क्या कहेगा ?

उनहत्तरवाँ अध्याय

उत्तरानन्दन का जीवित होना

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय ! पुत्राभिलाषिणी एवं दुःखिनी उत्तरा, विक्षिप्तों की तरह विविधप्रकार के करुणोत्पादक विलाप कर, भूमि पर गिर पड़ी। दुःखार्त्ता कुन्ती तथा अन्यान्य भरतकुल की स्त्रियों ने पुत्र-रहित एवं वस्त्र-विवर्जिता उत्तरा को पृथिवी पर लोटते हुए देख, बड़ा हाहाकार किया। हे राजेन्द्र ! उस समय दो मुहूर्त्त तक पाण्डवों का रनवास हाहाकार से गूँज उठा और उसकी ओर देखा भी नहीं जाता था। पुत्रशोक से कातर उत्तरा दो घड़ी तक अचेत हो भूमि पर पड़ी रही। तद-नन्तर सचेत होने पर उत्तरा ने मृत बालक को अपनी गोद में रख, उससे यह कहा—धर्मात्मा के पुत्र हो कर, वृष्णिप्रवर श्रीकृष्ण को प्रणाम न करने से तुम्हें जो पातक लगता है, क्या वह तुम्हें मालूम नहीं ? हे वत्स ! तुम अपने पिता के पास जा, मेरी ओर से उनसे यह कहना—हे वीर ! समय आये बिना कोई मरना चाहे तो भी नहीं मर सकता। तुम जैसे पति और पुत्र का वियोग होने पर मेरा तो मरना ही अच्छा था, किन्तु क्या करूँ, तिस पर भी मैं ज़ीती जागती बैठी हूँ। सो इससे मेरी क्या भलाई होगी ? हे महाभुज ! अतः धर्मराज से आज्ञा ले, मैं हलाहल पान करूँगी अथवा धधकती आग में कूदूँगी।

हाय ! मुझे अपने पति का और पुत्र का वियोग देखना पड़ा है। तब भी मेरा वज्र जैसा हृदय टुकड़े टुकड़े नहीं हुआ। बेटा ! तुम ज़रा आँख खोल कर, विपद्ग्रस्ता एवं शोकार्त्ता अपनी बड़ी दादी (प्रपितामही) कुन्ती तथा दुखियारी दादी (पितामही) द्रौपदी तथा बहेलिया के बाण से घायल

हिरनी की तरह मुझको तो देखो। बेटा! उठो और लोकनाथ एवं आनन्द स्वरूप तथा कमल सदृश, चञ्चल नेत्र श्रीकृष्ण के मुखमण्डल के दर्शन करो। इस प्रकार विलाप करती हुई और भूमि पर पड़ी हुई उत्तरा को देख, वहाँ उपस्थित समस्त स्त्रियाँ बहुत दुःखी हुई और उत्तरा को उठाया। तब उत्तरा ने अपने को बहुत सम्हाला और हाथ जोड़ तथा भूमि पर माथा टेक, श्रीकृष्ण जी को प्रणाम किया। तब श्रीकृष्ण जी ने उत्तरा का करुणाजनक विलाप सुन, आचमन किया और ब्रह्मास्त्र का असर दूर किया। पवित्रात्मा एवं अविनाशी श्रीकृष्ण ने मृत बालक को जिला देने की प्रतिज्ञा की और सब लोगों को सुना कर कहा—बेटी उत्तरा! मैं मिथ्या नहीं कहता। मैं जो कहता हूँ वह सत्य होगा। मैं सब के सामने इस बालक को जिलाता हूँ। मैं आज तक कभी झूठ नहीं बोला और न आज तक कभी युद्ध से मुख मोड़ा। सो मेरे इस पुण्यबल से यह बालक जीवित हो जाय। मुझे जैसे धर्म और ब्राह्मण प्रिय हैं, वैसे ही मुझे अभिमन्यु का यह बालक भी प्रिय है, अतः यह मृत बालक जीवित हो। मैंने आज तक कभी समरविजयी अर्जुन के साथ विरोध नहीं किया—सो मित्र के साथ अद्रोह करने का जो पुण्यफल होता है, उस पुण्य के प्रभाव से यह बालक जीवित हो जाय। यदि मैंने सत्यभाषण और धर्माचरण सदा किया हो तो अभिमन्यु का यह बालक जी उठे। यदि मैंने धर्म-पूर्वक केशी और कंस का वध किया हो—तो यह बालक जी उठे।

हे जनमेजय! श्रीकृष्ण के इतना कहते ही—मृत बालक के शरीर में प्राण का सञ्चार हुआ। वह धीरे धीरे सचेत हो, अपने हाथ पैर हिलाने लगा।

सत्तरवाँ अध्याय

रनवास में जन्मोत्सव

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय ! जब श्रीकृष्ण जी ने ब्रह्मास्त्र का प्रतिसंहार कर दिया, तब तुम्हारे पिता के तेज के प्रभाव से वह प्रसूतिगृह जगमगाने लगा और राक्षसगण वहाँ से भाग गये। उधर आकाश में श्रीकृष्ण के लिये वाह वाह का शब्द सुनायी पड़ा। राजन् ! ब्रह्मास्त्र के प्रज्वलित हो ब्रह्मा जी के निकट जाने पर, तुम्हारे पिता जीवित हो गये। जब वह शिशु जीवित हो अपने हाथ पैर चलाने लगा; तब भरतकुल की स्त्रियाँ उत्साहित हो आनन्द प्रकट करने लगीं। श्रीकृष्ण के कथनानुसार उन्होंने बालक का, ब्राह्मणों से स्वस्तिवाचन कराया और वे श्रीकृष्ण की प्रशंसा करने लगीं। जैसे नदी के पार जाने वाले लोग नौका पा कर प्रसन्न होते हैं; वैसे ही कुन्ती, द्रौपदी, सुभद्रा और उत्तरा प्रभृति भरतकुल की स्त्रियाँ मृत बालक को जीवित देख, हर्षित हो गयीं। अब तो मल्ल, नट, ज्योतिषी, भाट, बंदीजन, सूत, मागध कुरुवंश की प्रशंसा करते हुए आशीर्वचन द्वारा जनार्दन की स्तुति करने लगे। हे भारत ! उत्तरा भी उठी और हर्षित चित्त हो उसने समयानुरूप कार्य कर, नवजात बालक सहित श्रीकृष्ण जी को प्रणाम किया। तब श्रीकृष्ण जी ने अत्यन्त हर्षित हो, नवजात शिशु को बहुत से रत्न दिये और अन्यान्य वृष्णिवंशियों की तरह बालक का नामकरण संस्कार किया। हे महाराज ! भरतकुल के क्षीणप्राय होने पर अभिमन्यु के पुत्र का जन्म हुआ—उस समय सत्यसन्ध जनार्दन श्रीकृष्ण ने कहा—इसका नाम परीक्षित हुआ। इस लिये तुम्हारे पिता का नाम परीक्षित पड़ा।

हे प्रजानाथ ! तुम्हारे पिता धीरे धीरे बढ़ने लगे और सब के हर्ष को बढ़ाने लगे। हे वीर ! जब तुम्हारे पिता एक मास के हुए, तब पाण्डव लोग बहुत सा धन और रत्न ले कर, हस्तिनापुर में आये। उनके आने के

समाचार सुन वृष्णिवंशीय लोग उनको देखने के लिये घरों से निकले। हे नरनाथ! जनपद तथा पुरवासी पुरुषों ने अनेक प्रकार की मालाएँ, विचित्र पताकाएँ तथा अन्य सजावट की वस्तुओं से हस्तिनापुर के राजभवनों, साधारण गृहों तथा देवालयों को सजाया। तदनन्तर विदुर जी ने पाण्डवों की परमप्रिय कामना से पुष्पमालाओं की बन्दनवारों से राजमार्गों को सजाने की आज्ञा दी। उस समय नर्त्तकों और गायकों की सङ्गीतध्वनि से राजधानी प्रतिध्वनित हो उठी। उस समय सिंहगर्जना करते हुए समुद्र की तरह राजधानी जान पड़ती थी। चारों ओर सस्त्रीक बंदीजनों के स्तुतिवाद करते रहने से उस समय राजभवन, कुबेरभवन की तरह जान पड़ने लगा। वायु से सञ्चालित पताकाएँ मानों उत्तर और दक्षिण कुरुदेशों को प्रदर्शित कर रही थीं। उस समय राज्य के अधिकारी वर्ग ने यह घोषणा की कि, पाण्डव रत्न ले कर तथा समस्त राष्ट्रों में विहार कर, आज हस्तिनापुर में प्रवेश करेंगे।

इकहत्तरवाँ अध्याय

हस्तिनापुर में व्यास जी का आगमन

वैशम्पायन जी बोले—पाण्डवों के आगमन का समाचार पा कर, शत्रुसूदन श्रीकृष्ण जी मंत्रियों को साथ ले, पाण्डवों की अगमानी के लिये उनके निकट गये। हे राजन्! तब वृष्णिवंशियों सहित पाण्डवों ने यथाविधि हस्तिनापुर में प्रवेश किया। उस समय पाण्डवों की सहवर्तिनी सेना के घोड़ों के टापों के शब्द से तथा रथों की घरघराहट से—स्वर्ग, मर्त्य और पाताल परिपूर्ण हो गये। अनन्तर लाये हुए रत्नों की राशि को आगे कर, पाण्डवों ने मंत्रियों तथा अपने सुहृदों के साथ हर्षित हो नगर में प्रवेश किया। फिर धृतराष्ट्र के पास जा पाण्डवों ने यथाविधि अपने अपने नाम ले, उनके चरणों में सीस नवा, उन्हें प्रणाम किया। हे राजेन्द्र! धृतराष्ट्र की चरण-

वन्दना कर, पाण्डवों ने यथाक्रम, गान्धारी, कुन्ती और विदुर के प्रति सम्मान प्रदर्शित किया। पुरवासियों ने पाण्डवों के प्रति अपनी भक्ति प्रदर्शित की।

हे राजन्! जब पाण्डवों ने तुम्हारे पिता का परमाद्भुत जन्मवृत्तान्त और श्रीकृष्ण जी का विस्मयकारी अलौकिक कर्म सुना, तब उन्होंने पूज्य देवकीनन्दन श्रीकृष्ण का पूजन किया। फिर कुछ दिनों बाद, सत्यवती-सुत व्यासदेव हस्तिनापुर में आये। वृष्णियों तथा अन्धकों सहित पाण्डवों ने व्यासदेव जी का पूजन किया और पूजन कर चुकने बाद, वे उनके निकट बैठे। फिर विविध विषयों पर वार्त्तालाप कर, युधिष्ठिर ने उनसे कहा—भगवन्! आपके अनुग्रह से हम यह रत्नराशि ले आये। अब हमारी इच्छा इस रत्नराशि को अश्वमेध यज्ञ में व्यय कर डालने की है। हे मुनि-सत्तम! हम सब आपके तथा श्रीकृष्ण के आज्ञानुवर्ती हैं। अतः हमारी आपसे यह विनय है कि, आप हमें यज्ञ करने की अनुमति प्रदान करें।

वेदव्यास जी बोले—राजन्! अश्वमेध यज्ञ करने की मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ। इसके बाद यदि और कोई अनुष्ठेय कर्म हो तो उसे तुम पूरा कर के विधिपूर्वक एवं दक्षिणा युक्त अश्वमेध यज्ञ करो। हे राजेन्द्र! अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान समस्त पापों से छुड़ाने वाला है। अतः अश्वमेध यज्ञ कर, तुम निस्सन्देह पापरहित होगे।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! व्यास जी की अनुमति प्राप्त कर युधिष्ठिर ने अश्वमेध यज्ञ करने का विचार पक्का किया। तदनन्तर वाग्मिवर राजा युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण के निकट जा, उनसे कहा—हे पुरुषोत्तम! आप सरीखे सत्कीर्त्ति-सम्पन्न पुत्र को प्राप्त कर, देवी देवकी पुत्रवती कह कर प्रख्यात है। हे महाबाहो! हे अविनाशिन! अब मैं आपसे जो निवेदन करूँ, आप तदनुसार कार्य करें। हे यादवनन्दन! ये समस्त भोग हमें आपके प्रताप से प्राप्त हुए हैं। आप ही ने अपनी बुद्धि एवं पराक्रम से यह पृथिवी जीती है। आप ही हम लोगों के परम गुरु हैं। हे दाशार्ह! अतः आप ही का इस

यज्ञ में दीक्षित होना ठीक है। क्योंकि आपके दीक्षित होने से मैं निष्पाप हो जाऊँगा। मैं यह निश्चयरूप से जानता हूँ कि, आप ही यज्ञ हैं, आप ही अक्षर हैं, आप ही धर्म हैं, आप ही प्रजापति हैं और आप ही सब प्राणियों की गति हैं।

श्रीकृष्ण ने कहा—हे अरिमर्दन! तुम्हें ऐसा ही करना शोभा देता है, किन्तु मुझे यह निश्चय रूप से विदित है कि, तुम्हीं समस्त प्राणियों की गति हो। तुम कुरुवीर पुरुषों के आदि हो और धर्मरूप से विराजमान हो। हे राजन्! हम सब तुम्हारे आज्ञाकारी हैं। क्योंकि तुम हमारे राजा और परम गुरु हो। अतः मैं कहता हूँ कि, इस यज्ञ में तुम्हें दीक्षित हो कर, जो कार्य करने चाहिये, वे सब तुम पूरे करो और जो कार्य मेरे करने योग्य हों—उनके लिये तुम मुझे आज्ञा दो। हे अनघ! मैं सत्य प्रतिज्ञा कर के तुमसे कहता हूँ कि, मैं, भीमसेन, अर्जुन और माद्रीपुत्र नकुल, सहदेव, तुम्हारे आज्ञानुसार सब कार्य करेंगे। राजन्! तुम्हारे इष्टसाधन से हम सब की अभिलाषा पूरी होगी।

बहत्तरवाँ अध्याय
युधिष्ठिर-व्यास-संवाद

वैशम्पायन जी कहने लगे—हे जनमेजय! धर्मपुत्र एवं मेधावी युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण के इन वचनों को सुन, व्यास जी से कहा—आपको मालूम है कि, अश्वमेध यज्ञ के लिये कौन सा समय उपयुक्त है। अतः आप जब कहें, तब मैं यज्ञदीक्षा ग्रहण करूँ। क्योंकि मेरे इस यज्ञ का सारा भार आप ही के अधीन है।

वेदव्यास जी ने कहा—हे कौन्तेय! पैल, याज्ञवल्क्य और मैं—तीनों मिल कर, यथासमय और यथाविधान इस यज्ञकार्य को करवावेंगे। हे पुरुषश्रेष्ठ! चैत्र मास में पूर्णमासी के दिन, तुम यज्ञदीक्षा ग्रहण करना।

इस बीच में यज्ञ की सामग्री एकत्रित करवा लो। अश्वविद्या-वेत्ता सूत और ब्राह्मण लोग, तुम्हारी यज्ञसिद्धि के लिये, मेध्याश्व की परीक्षा करें। हे नरेन्द्र! घोड़े की परीक्षा हो जाने बाद, शास्त्रोक्त विधि से घोड़ा छोड़ा जाय। वह घोड़ा तुम्हारे प्रदीप्त यश को प्रदर्शित करता हुआ, सागराम्बरा पृथिवी पर भ्रमण करे।

वैशम्पायन जी बोले— हे जनमेजय! ब्रह्मवादी वेदव्यास के इन वचनों को सुन, महाराज युधिष्ठिर ने कहा—"बहुत अच्छा मैं ऐसा ही करूँगा।" तदनन्तर उन्होंने तदनुसार कार्य करना आरम्भ किया। हे महाराज! जब यज्ञोपयोगी सब सामान जमा कर लिया गया, तब युधिष्ठिर ने वेदव्यास को इसकी सूचना दी। वेदव्यास जी ने इस पर युधिष्ठिर से कहा—हम लोग समय और योग के अनुसार तुम्हारी दीक्षा कराने के लिये तैयार हैं। अब तुम खड्ग, कूर्च, आसन के लिये कुशों का मूठा और यज्ञोपयोगी अन्यान्य उपस्कर, सोने के बनवाओ। फिर विधिपूर्वक घोड़ा छोड़ो। साथ ही घोड़े की रक्षा के लिये ठीक ठीक प्रबन्ध करो।

युधिष्ठिर ने कहा—हे ब्रह्मन्! अब आप वह विधान बतलावें, जिससे घोड़ा इच्छानुसार पृथिवी पर भ्रमण करे। हे मुनि! जब घोड़ा इच्छानुसार पृथिवी पर भ्रमण करेगा, तब कौन पुरुष उसकी रक्षा करेगा। आप यह भी सोच विचार कर बतलावें।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! युधिष्ठिर के इन वचनों को सुन, व्यास जी उनसे बोले—भीमसेन के छोटे भाई और सब धनुर्धरों में श्रेष्ठ सदा समरविजयी, क्षमावान् और बुद्धिमान् अर्जुन को इच्छानुचारी घोड़े की रक्षा का कार्य सौंपो। क्योंकि अर्जुन के पास दिव्यअस्त्र, दिव्यकवच, दिव्य धनुष और दिव्य दो तरकस हैं। निवातकवचों का संहार करने वाला अर्जुन समस्त पृथिवी को जीत सकता है। अर्जुन उस घोड़े के पीछे पीछे जाय। हे राजन्! धर्म एवं अर्थ में कुशल, समस्त विद्याओं में पारङ्गत अर्जुन शास्त्रोक्त विधि के अनुसार, घोड़े को घुमावेगा। अमितपराक्रमी कुन्तीपुत्र

भीमसेन और माद्रीनन्दन नकुल, राज्य की रक्षा करें। महायशस्वी बुद्धिमान् सहदेव घरेलू कामों का प्रबन्ध करें।

यह सुन युधिष्ठिर ने अर्जुन से कहा—हे वीर! आओ तुम सब प्रकार से इस घोड़े की रक्षा करो। हे वीरश्रेष्ठ! क्योंकि तुम्हें छोड़ और कोई मनुष्य इस कार्य को नहीं कर सकता। हे महाबाहो! यदि कोई राजा तुम्हारा सामना करने को आगे आवे तो यथासम्भव ख़ूनख़राबी बचाना। राजाओं को मेरे इस यज्ञ का वृत्तान्त सुना, यज्ञ में सम्मिलित होने के लिये, उन्हें मेरी ओर से निमंत्रण देना।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! अर्जुन से इस प्रकार कह, युधिष्ठिर ने नगर की रक्षा का काम भीमसेन और नकुल को सौंपा। व्यास जी की सम्मत्यानुसार युधिष्ठिर ने घर के कामों की देख भाल और प्रबन्ध का काम सहदेव के सपुर्द किया।

तिहत्तरवाँ अध्याय

अश्व का छोड़ा जाना

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! दीक्षाकाल उपस्थित होने पर उन महाऋत्विकों ने युधिष्ठिर को यज्ञ की दीक्षा दी। पाण्डुपुत्र महा तेजस्वी धर्मराज पशुबन्धनादि कार्यों को कर, ऋत्विकों सहित समधिक शोभायमान हुए। ब्रह्मवादी, अमिततेजस्वी वेदव्यास जी द्वारा विधि करायी जाने के अनन्तर, अश्वमेध का घोड़ा छोड़ा गया। धर्मराज युधिष्ठिर दीक्षित हो कर, गले में सुवर्ण की माला तथा सोने की कण्ठी पहिन, उस समय प्रदीप्त अग्नि जैसे जान पड़ने लगे। हे राजन्! उनके ऋत्विक् भी वैसा ही वेष धारण कर, उसी प्रकार शोभित हुए। धनञ्जय अर्जुन सफेद घोड़े पर सवार हो, यज्ञीय श्यामकर्ण अश्व के पीछे हो लिये। हे नरेन्द्र! जब

गोधाङ्गुलित्र अर्जुन गाण्डीव धनुष को टंकारते उस घोड़े के पीछे हो लिये ; तब उन्हें देखने के लिये नगर के बाल, वृद्ध, युवा पुरुष और स्त्रियाँ वहाँ गयीं। दर्शकों की भीड़ इतनी अधिक थी कि, गर्मी के मारे लोगों की दम घुटने लगी। दर्शकों की भीड़ में वेदज्ञ ब्राह्मणों तथा अन्य लोगों ने समस्त दिशाओं को गुँजाते हुए कहा—हे भरतवंशिन्! तुम्हारा मङ्गल हो। तुम कुशल पूर्वक जाओ। हमने युद्ध के समय इनको इस वेश में नहीं देखा था। यह जो भयङ्कर निर्ह्रादयुक्त धनुष देख पड़ता है—यही गाण्डीव धनुष है। उन लोगों की यह बात सुनते हुए अर्जुन चले जाते थे। फिर आगे जाने पर लोगों ने कहा—हे अर्जुन! तुम जाओ। तुम्हारा मङ्गल हो। तुम्हारा अरिष्ट दूर हो। तुम्हारा पथ निरापद हो। हमारी भगवान् से प्रार्थना है कि, हम तुम्हें इसी प्रकार सकुशल लौटा हुआ देखें। हे भरतर्षभ! महा बुद्धिमान् अर्जुन स्त्रियों और पुरुषों की इस प्रकार की बात सुनते हुए चले जाते थे। धर्मराज की आज्ञा से, शान्ति बनाये रखने के लिये इस कार्य में चतुर याज्ञवल्क्य के शिष्य और वेदपारग ब्राह्मणों और क्षत्रियों ने भी अर्जुन के साथ गमन किया। हे महाराज! वह घोड़ा उन समस्त देशों में विचरण करता हुआ जाने लगा, जिन्हें पाण्डव अपने अस्त्रबल से जीत चुके थे।

हे वीर! अब मैं तुम्हें अर्जुन के विचित्र महायुद्ध का वृत्तान्त सुनाऊँगा। हे राजन्! सुनो। वह घोड़ा पृथिवी की परिक्रमा करता हुआ उत्तर से पूर्व दिशा में गया। यज्ञीय अश्व और सफेद घोड़े पर सवार अर्जुन ने धीरे धीरे अनेक राष्ट्रों को विमर्दित किया। अर्जुन ने इस यात्रा में जिन जिन हतबान्धव क्षत्रियों से युद्ध किया, उनकी गणना नहीं हो सकती। हे राजन्! पूर्वनिर्जित अनेक धनुर्धर किरात, यवन, विविध जातियों के म्लेच्छों को अर्जुन ने फिर हराया। अनेक आर्यराजा भी अर्जुन से लड़े, जो युद्धदुर्मद थे और पालकियों में बैठ कर चला करते थे। हे पृथिवीनाथ! अनेक देशाधिपतियों के साथ अर्जुन का और दोनों ओर की

सेना के सैनिकों में जिस प्रकार युद्ध हुआ—वह मैं अब विशेष रूप से वर्णन करता हूँ।

चौहत्तरवाँ अध्याय

युद्ध वर्णन

वैशम्पायन जी ने कहा—हे जनमेजय त्रिगर्त्त-देश-वासी जो लोग महाभारत के युद्ध में पाण्डवों के हाथ से मारे गये थे, उनके महारथी पुत्रों और पौत्रों ने अर्जुन से युद्ध किया। उन महावीर त्रिगर्त्तों ने अस्त्रों शस्त्रों से सुसज्जित हो तथा घोड़ों पर सवार हो, पाण्डवों के यज्ञीय अश्व को, घेर कर पकड़ना चाहा। तब शत्रुसूदन अर्जुन ने मधुर वचन द्वारा लड़ने का निषेध किया। किन्तु अर्जुन के कथन की उपेक्षा कर, उन तम और रजोगुण से आच्छादित लोगों ने अर्जुन पर बाण छोड़े। तब अर्जुन ने हँस कर उनसे कहा—अरे अधर्मियों! यदि तुम्हें अपने प्राण प्यारे हैं, तो युद्ध बंद करो।

चलते समय धर्मराज ने अर्जुन से कहा था—हे पार्थ! हतबान्धव राजा यदि विरुद्धाचरण भी करें तो तुम उनको मत मारना। अतः अर्जुन ने धर्मराज के इस वचन का पालन करने के लिये पुनः उन राजाओं से युद्ध बंद करने का अनुरोध किया। किन्तु वे लोग न मानें। तब अर्जुन ने अपने बाणजाल से त्रिगर्तराज सूर्यवर्मा को हरा दिया और वे हँसने लगे। तब अपने रथों की घरघराहट से दिशाओं को प्रतिध्वनित करते हुए सूर्यवर्मा अर्जुन के निकट पहुँचे और अपने हाथ की सफाई दिखाने को एक सौ नतपर्व बाण छोड़े। साथ ही उसके अनुयायी योद्धा अर्जुन का वध करने की इच्छा से अर्जुन पर बाणों की वर्षा करने लगे। उस समय अर्जुन ने अपने बाण चला विपक्षियों के बाणों को काट कर सूर्यवर्मा को भूमि पर गिरा दिया। यह देख सूर्यवर्मा का भाई, जो जवान था, तेजस्वी था और

जिसका नाम केतुवर्मा था, अर्जुन से जा भिड़ा। तब अर्जुन ने पैने बाणों से केतुवर्मा को भी घायल कर डाला। केतुवर्मा के घायल होने पर महारथी धृतवर्मा, शीघ्रगामी रथ पर सवार हो लड़ने के लिये अर्जुन के सामने गया। उसने अर्जुन पर इतने बाण चलाये कि वे बाणों के नीचे छिप गये। धृतवर्मा बालक था। उसके हाथ की सफाई देख, अर्जुन सन्तुष्ट हुए। जिस समय धृतवर्मा बाणवृष्टि कर रहा था, उस समय इन्द्रनन्दन अर्जुन, उसके बाण ग्रहण और बाण सन्धान को लक्ष्य करने में समर्थ नहीं हुए। बल्कि धृतवर्मा को हर्षित करने के लिये वे एक मुहूर्त्त तक मन ही मन उसकी प्रशंसा करते रहे। अर्जुन ने सर्पवत् क्रुद्ध धृतवर्मा का मानों उपहास करने के लिये उसको जान से न मारा और उसके प्रति प्रीति प्रदर्शित की। उस समय धृतवर्मा ने अर्जुन के ऊपर चमचमाते पैने बाण छोड़े। इससे अर्जुन का हाथ घायल हो गया और उनके हाथ से गाण्डीव धनुष छूट पड़ा। अर्जुन के हाथ से गिरा हुआ गाण्डीव धनुष इन्द्रधनुष जैसा जान पड़ने लगा। इस युद्ध में अर्जुन के हाथ से गाण्डीव धनुष के गिरने पर, धृतवर्मा ने अट्टहास किया। इस पर अर्जुन को क्रोध चढ़ आया और उन्होंने हाथ का रक्त पोंछ कर, गाण्डीव धनुष उठा धृतवर्मा पर बाणों की वृष्टि की। तब आकाशस्थित प्राणियों ने अर्जुन की प्रशंसा करते हुए वाह वाह कह बड़ा कोलाहल किया। यह देख कालान्तक यम की तरह भयङ्कर अर्जुन को त्रिगर्त्तवासी योद्धाओं ने चारों ओर से घेर लिया। वे लोग धृतवर्मा का उत्साह बढ़ाने के लिये अर्जुन की निन्दा करने लगे। इस पर अर्जुन ने अत्यन्त कुपित हो, इन्द्र के वज्र जैसे घोर लोहे के पैने बाणों से शत्रुपक्ष की अठारह सेनाओं का संहार कर डाला। धनञ्जय समस्त सेना को पलायमान देख, अट्टहास कर, शीघ्रता पूर्वक सर्प सदृश भयङ्कर बाणों से शत्रुओं का नाश करने लगे। अर्जुन के बाणों की मार न सह कर, त्रिगर्त्तवासी महारथी योद्धा इधर उधर भाग गये। उनमें से कुछ अर्जुन के निकट आ, उनसे बोले—हे पार्थ! हम सब आपके किङ्कर और अनुगत

हैं, आप हमें आज्ञा दें। हे कौरवनन्दन! हम लोग आपके आदेशों का पालन करेंगे! उस समय अर्जुन ने उन त्रिगर्त्तवासियों को आज्ञा दी कि, हे नृपगण! मैं तुम्हें जीवन दान देता हूँ। तुम अपने प्राणों की रक्षा करो और मेरी अधीनता स्वीकार करो।

पचहत्तरवाँ अध्याय

राजा भगदत्त के पुत्र के साथ अर्जुन का युद्ध

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! वहाँ से चल घोड़ा प्राग्ज्योतिष-पुर में घूमने लगा। तब भगदत्त के रणकर्कश पुत्र वज्रदत्त ने उस घोड़े को पकड़ना चाहा। उसने वह घोड़ा पकड़ लिया और उसे बाँध वह अपनी राजधानी की ओर ले चला। यह देख, गाण्डीव धनुष पर रोदा चढ़ा अर्जुन ने उसका पीछा किया। तब वीर वज्रदत्त, अर्जुन के बाणों से घायल हो, विमोहित हो गया। उसने घोड़े को छोड़ दिया और वह अर्जुन की ओर दौड़ा; किन्तु जब वह अर्जुन के बाणों से घायल हो गया; तब वह राजधानी के भीतर चला गया और फिर एक बड़े डीलडौल के हाथी पर सवार हो वह नगर से निकला। उसके मस्तक पर, उस समय सफेद छाता तना हुआ था और उसके ऊपर सफेद चँवर डुलाया जा रहा था। अर्जुन के निकट पहुँच, उसने बाल्य-स्वभाव-सुलभ चपलतावश तथा भ्रमवश अर्जुन को युद्ध के लिये ललकारा। वज्रदत्त ने कुपित हो, श्वेताश्व अर्जुन के ऊपर अपना मदमाता एवं पर्वताकार हाथी पेला। वह हाथी बड़े भारी डीलडौल का था और उसके गण्डस्थल से मद चू रहा था। उसे शत्रुओं का वार रोकने की शिक्षा दी गयी थी। वह बड़ा युद्ध दुर्मद था और सहज में काबू में नहीं आता था। अङ्कुशों की मार से क्रुद्ध वह हाथी उमड़ती हुई मेघ की घटा की तरह उड़ता हुआ जान पड़ता था।

हे राजन् ! अर्जुन, उस गज पर सवार वज्रदत्त से युद्ध करने लगे। वज्रदत्त ने टीडी दल की तरह अर्जुन के ऊपर तोमरों की वृष्टि की ; किन्तु अर्जुन ने उन सब तोमरों को अपने बाणों से काट कर टुकड़े टुकड़े कर डाला और उन्हें भूमि पर गिरा दिया। यह देख वज्रदत्त ने अर्जुन के ऊपर पैने बाण छोड़े। इसके जवाब में अर्जुन ने सुवर्ण पुंख वाले और सीधे जाने वाले बाणों से वज्रदत्त पर आक्रमण किया। तब तो वज्रदत्त घायल हो भूमि पर गिर पड़ा, किन्तु गिर कर भी वह बेहोश न हुआ और उसकी स्मरण शक्ति ज्यों की त्यों बनी रही। तदनन्तर उस सचेत एवं सावधान राजा ने, उस श्रेष्ठतम हाथी को पुनः अर्जुन की ओर बढ़ाया। तब अर्जुन ने उस हाथी को पैने बाणों से घायल कर डाला। रक्त से लथपथ वह हाथी उस समय वैसा ही जान पड़ा, जैसा कि, गेरु मिट्टी से युक्त जल के झरने से पर्वत जान पड़ता है।

छिहत्तरवाँ अध्याय

वज्रदत्त की हार

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय ! जैसा युद्ध इन्द्र का और वृत्रासुर का हुआ था ; वैसा ही यह तीन-रात्रि-व्यापी अर्जुन और वज्रदत्त का युद्ध हुआ।

चतुर्थ दिवस वज्रदत्त ने अट्टहास कर अर्जुन से कहा—अर्जुन ! खड़ा रह ! खड़ा रह ! मेरे शरीर में प्राण रहते तू मेरे सामने से उबरने न पावेगे। तूने अपने बाप के मित्र मेरे वृद्ध पिता भगदत्त को मारा है। सो मैं बालक हो कर भी तुझ जैसे वृद्ध के साथ युद्ध करूँगा और तेरे रक्त से पितृतर्पण करूँगा। यह कह और अत्यन्त क्रुद्ध हो, वज्रदत्त ने अपना हाथी अर्जुन पर पेला। ऊपर को सूँड उठा वह हाथी अर्जुन पर झपटा। जैसे मेघ जलवृष्टि से नीलगिरि को तराबोर करते हैं, वैसे ही सूँड

से छोड़े हुए जलकणों से उस हाथी ने अर्जुन को तराबोर कर दिया। वज्रदत्त के उस हाथी ने अर्जुन पर बारंबार आक्रमण किया। वज्रदत्त का प्रेरित वह हाथी मानों नाचता हुआ वेग पूर्वक अर्जुन के निकट जाता था। किन्तु अर्जुन हाथी को अपने निकट आते देख घबड़ाये नहीं। उन्हें भगदत्त के साथ अपना पूर्वकालीन वैर याद हो आया। वे क्रुद्ध हुए और उस हाथी को अपने विजय में बाधक समझ—शरजाल से उसकी गति वैसे ही रोके रहे जैसे तट, समुद्र की गति को रोक देता है। हाथी को पीछे हटते देख, वज्रदत्त कुपित हुआ और उसने अर्जुन के ऊपर पैने बाण छोड़े। अर्जुन ने शत्रु-संहारकारी अपने बाणों से वज्रदत्त के उन बाणों को रोक दिया।

अनन्तर प्राग्ज्योतिषपुर के राजा वज्रदत्त ने क्रोध में भर, पुनः अपना हाथी आगे बढ़वाया। यह देख अर्जुन ने अग्नितुल्य बाण उस हाथी पर छोड़े। इन बाणों से उस हाथी के मर्मस्थल बिध गये और वह वज्र से टूटे हुए पर्वत की तरह भूमि पर गिर पड़ा। उस समय वज्राहत एवं पृथिवी में धसे हुए पर्वत की तरह वह नागेन्द्र जान पड़ने लगा।

जब वज्रदत्त का वह हाथी मारा गया, तब अर्जुन ने भूमि पर खड़े वज्रदत्त से कहा—तुम डरो मत। क्योंकि चलते समय महाराज युधिष्ठिर ने मुझसे कहा था कि, हे पार्थ! यदि राजा तुम्हारे प्रतिकूल आचरण भी करें, तो भी तुम उनका और उनकी सेना का नाश मत करना। प्रत्युत उनसे कह देना कि, आप लोग अपने सुहृदो सहित युधिष्ठिर के अश्वमेध यज्ञ में सम्मिलित हों। अतः मैं अपने बड़े भाई के आदेशानुर तुम्हें जान से न मारूँगा। बस अब जो हुआ सो हुआ। अब आगे मत बढ़ो। तुम निर्भय हो अपनी राजधानी को चले जाओ। आगामी चैत्र मास की पूर्णिमा को महाराज युधिष्ठिर अश्वमेध यज्ञ करेंगे। उस समय तुम वहाँ आ जाना।

अर्जुन से निर्जित भगदत्त के पुत्र वज्रदत्त ने अर्जुन के इन वचनों को सुन उनसे कहा—अच्छा मैं आपके कथनानुसार ही कार्य करूँगा।

सत्तहत्तरवाँ अध्याय

सैन्धव-युद्ध

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! तदनन्तर मरने से बचे हुए सिन्धु-राज-वंशियों के साथ अर्जुन का युद्ध हुआ। श्वेताश्व अर्जुन का अपने देश में आना न सह कर सिन्धुराज गण उनसे लड़ने लगे। उन सिन्धुराजों ने अपने राज्य में आये हुए विष समान उस घोड़े को पकड़ लिया। किन्तु इससे भीमसेन के भाई अर्जुन भयभीत न हुए। इन महापराक्रमी राजाओं ने विजय करने की इच्छा से अर्जुन को जा घेरा। उन लोगों ने अपने अपने नाम और गोत्र बतला और अपने विविध कर्मों का बखान कर, इतने बाण छोड़े कि, अर्जुन बाणों के भीतर छिप गये। युद्ध में जय प्राप्त करने की अभिलाषा से रथों पर सवार वे वीर पैदल चलते हुए श्यामवर्ण अर्जुन को देख, एक बार ही उनसे लड़ने लगे और सैन्धव संहारकारी एवं निवातकवच दैत्यों का नाश करने वाले अर्जुन को घायल किया।

सिन्धुराज जयद्रथ के, अर्जुन द्वारा मारे जाने का स्मरण कर, उन लोगों ने एक हज़ार रथों और दस हज़ार घोड़ों के बीच अर्जुन को घेर, हर्षनाद किया। फिर जब वे अर्जुन पर बाणवृष्टि करने लगे, तब उनके बाणों के भीतर छिपे हुए अर्जुन वैसे ही जान पड़ते थे, जैसे बादलों में छिपे हुए सूर्य। अर्जुन उस समय पिंजड़े में बंद पक्षी की तरह जान पड़ते थे। जब अर्जुन उन लोगों के बाणों से अति पीड़ित हुए; तब त्रिलोकवासी सब प्राणी हाहाकार करने लगे और सूर्य तेज रहित हो गये। हे महाराज! उस समय रोमाञ्चकारी पवन चलने लगा। राहु ने चन्द्र और सूर्य को एक साथ ग्रस लिया। उल्का समूह से सूर्य ढक गया। कैलास पर्वत थरथराने लगा। सप्तर्षि और देवर्षि दुःखित तथा शोकार्त्त हो कर, गर्म साँसे छोड़ने लगे। तदनन्तर चन्द्रमण्डल, गगनमण्डल को भेद कर पतित हुआ। सब दिशाओं

में धूल धुएँ की तरह छा गयी। गधे के शरीर के रंग का धनुष और बिजली युक्त बादल आकाशमण्डल में घूमता फिरता माँस और रक्त की वर्षा करने लगा। हे भरतर्षभ! जब वीरश्रेष्ठ धनञ्जय बाण वृष्टि में छिप गये, तब इसी प्रकार की अनेक अद्भुत घटनाएँ देख पड़ने लगीं। अर्जुन के शरजाल में छिपने पर, अर्जुन मोहित हो गये और उनके हाथ का दस्ताना और गाण्डीव धनुष गिर पड़े। महारथी अर्जुन के मूर्छित और मोहित होने पर भी सिन्धुराजगण ने उन पर शरवृष्टि करनी बंद न की। तब द्युलोकवासी देवगण, अर्जुन को अचेत जान, त्रस्त हुए और अर्जुन को सचेत करने लगे। देवर्षियों, ब्रह्मर्षियों तथा सप्तर्षियों ने अर्जुन के विजय के लिये (मंत्रविशेष का) जप किया।

हे राजन्! तदनन्तर देवताओं के द्वारा तेज से प्रदीप्त होने पर, परमास्त्रवेत्ता, बुद्धिमान् अर्जुन युद्ध में अचल अटल भाव से स्थित हुए। वे बारंबार अपने धनुष को टँकोरने लगे। फिर इन्द्र जैसे जलवृष्टि करें, वैसे उन्होंने शत्रुओं पर शरवृष्टि की। जैसे टीढ़ियाँ वृक्ष को ढक देती हैं, वैसे ही सिन्धुराज अपने साथी योद्धाओं सहित अर्जुन की बाणवृष्टि से छिप गये। सैन्धव योद्धा अर्जुन के बाणों की मार से त्रस्त, भयार्त्त और शोकार्त्त हो, रोने लगे और इधर उधर भाग खड़े हुए। अर्जुन शरजाल से उन वीरों को परिपूरित कर, अलातचक्र की तरह भ्रमण करने लगे। शत्रुघाती धनञ्जय ने वज्रधारी महेन्द्र की तरह, समस्त दिशाओं में इन्द्रजाल सदृश बाणजाल का विस्तार कर दिया। कौरवेन्द्र धनञ्जय ने बाणों की वृष्टि कर, मेघजाल सदृश, सैन्धव वीरों की समस्त सेना को विदीर्ण कर डाला और वे शरद् कालीन सूर्य की तरह सुशोभित हुए।

अठहत्तरवाँ अध्याय

सिन्धुराज का पराजय

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय ! तदनन्तर-गाण्डीव-धनुषधारी दुर्द्धर्ष अर्जुन युद्ध के लिये रणभूमि में उपस्थित हो, हिमालय की तरह जान पड़ने लगे। तब सिन्धुदेशीय सेना और भी अधिक तैयारी के साथ रणभूमि में आयी और अर्जुन के ऊपर बाणों की वर्षा करने लगी।

महाबाहु कुन्तीनन्दन अर्जुन, मुमूर्षु सिन्धुदेशवासी सैनिकों को पुनः युद्धक्षेत्र में जम कर लड़ते देख, हँसे और उनसे यह मधुर वचन बोले—तुम लोग समधिक शक्ति के अनुसार युद्ध कर के मुझे जीतने के लिये यत्न करो और अन्य समस्त कार्य उत्तम रीत्या पूरे करो। क्योंकि तुम्हारे लिये अब महान् भय उपस्थित हुआ है। मैं तो अकेला ही तुमसे लड़ रहा हूँ। तुम लोग थोड़ी देर ठहरो। मैं शीघ्र ही तुम्हारा गर्व खर्व कर दूँगा।

हे राजन् ! यह कह अर्जुन अपने भाई के इस कथन को कि युद्ध में जिगीषु क्षत्रियों का वध मत करना, स्मरण कर सोचने लगे कि—ज्येष्ठ भ्राता के इस आदेश का पालन किस प्रकार करूँ। क्या करूँ जिससे अपने बड़े भाई का कथन मिथ्या न होने पावे। यदि ये लोग मुझे न मारें तो ही मैं अपने बड़े भाई के कथन का पालन कर सकता हूँ। यह सोच अर्जुन ने उन युद्ध दुर्मद वीरों से कहा—मैं तुम्हारी भलाई के लिये तुमसे कहता हूँ कि, तुम अपना पराजय स्वीकार कर, मेरे अधीन हो जाओ। यदि तुम मेरे शरणागत हो जाओगे, तो मैं तुम्हें न मारूँगा। अब तुम अपनी भलाई के लिये उचित उपाय सोचो। यदि इसके विपरीत कार्य करोगे, तो तुम्हें मेरे बाणों की मार से पीड़ित हो क्लेशित होना पड़ेगा।

अर्जुन ने उनसे यह बात कही। फिर वे क्रोध में भरे और विजयाभिलाषी सिन्धु देशीय योद्धाओं के साथ क्रोध में भर युद्ध करने लगे। यद्यपि सिन्धु देशीय योद्धाओं ने अर्जुन के ऊपर हज़ारों नतपर्व बाण छोड़े;

तथापि अर्जुन ने अपने पैने बाणों से उनके विषैले सर्प सदृश विष में बुझे बाणों को बीच ही में काट काट कर गिरा दिया। फिर वे शान पर पैनाये हुए कङ्कपत्र युक्त सैन्धवों के बाणों को शीघ्रता पूर्वक काट काट कर गिराने लगे। फिर सिन्धुराज जयद्रथ के वध को स्मरण कर, अर्जुन के ऊपर प्रास और शक्ति फेंकने लगे। किन्तु महाबली अर्जुन ने इन अस्त्रों को बीच ही में अपने बाणों से काट कर गिरा दिया। सिन्धुराज का मनोरथ विफल हुआ। बल्कि अब तो अर्जुन सिन्धुदेशीय योद्धाओं के सिर भल्ल नामक बाणों से काट काट कर गिराने लगे। योद्धाओं के पीछे हटते और आगे बढ़ते रहने से उमड़ते और फटते हुए समुद्र की तरह तुमुल शब्द होने लगा! उस समय वे लोग, अमित तेजस्वी अर्जुन के द्वारा घायल होने पर भी अपना सारा बल लगा और उत्साहित हो युद्ध करने लगे। फिर वे समस्त वाहनों तथा सेना सहित, युद्ध में, अर्जुन के बाणप्रहार से व्यथित हो अचेत हो गये।

तदनन्तर धृतराष्ट्र की बेटी दुःशला शान्ति-स्थापन की कामना से, अपने पौत्र और सुरथ के पुत्र को रथ पर अपने साथ बिठा, अर्जुन के निकट गयी और आर्त्तस्वर से रोने लगी। उसे देखते ही अर्जुन ने गाण्डीव धनुष रख दिया। फिर बड़े सम्मान के साथ उन्होंने अपनी बहिन दुःशला से कहा—बतला अब मैं तेरे लिये कौनसा प्रिय कार्य करूँ? उत्तर में दुःशला ने कहा—तुम्हारे भाँजे का यह बालक पुत्र तुम्हें प्रणाम करता है। हे पुरुष-श्रेष्ठ! तुम इसकी ओर कृपादृष्टि करो। हे राजन्! अर्जुन ने दुःशला के ये वचन सुन पूँछा—इसका पिता कहाँ है? इस पर दुःशला ने कहा—इस बालक का पिता, पितृवियोग से सन्तप्त तथा आर्त्त हो, जिस प्रकार विषादित हो मरा है—सो तुम मुझसे सुनो

हे अनघ! सुरथ ने तुम्हारे हाथ से अपने पिता का मारा जाना तथा घोड़े के पीछे पीछे युद्ध के लिये तुम्हारा यहाँ आना सुन, अपने पिता के मृत्यु-जनित शोक से विह्वल हो, अपने प्राण परित्याग किये हैं। हे प्रभो!

तुम्हारा नाम सुन तथा यह सुन कर कि, तुम यहाँ आये हो सुरथ अत्यन्त आर्त्त हो, भूमि पर गिर पड़ा और उसने शरीर त्याग दिया। हे पार्थ! मैं अपने पुत्र को वहाँ निर्जीव पड़ा छोड़, उसके पुत्र को अपने साथ ले, तुम्हारे निकट आयी हूँ। धृतराष्ट्र की पुत्री दीना दुःशला आर्त्तस्वर से यह कह और बड़े दीन भाव से आँसू बहाती हुई, नीची गर्दन किये हुए अर्जुन से पुनः कहने लगी—हे धर्मज्ञ! तुम अपनी बहिन और इस अपने भाँजे की ओर देखो। यह तुम्हारी दया का पात्र है। दुर्योधन और अभागे जयद्रथ को भूल जाओ। जैसे पर-वीर-घाती परीक्षित, अभिमन्यु से उत्पन्न हुआ है, वैसे ही मेरा यह महाबली पौत्र भी सुरथ से उत्पन्न हुआ है। हे पुरुष श्रेष्ठ! मैं इस पौत्र के साथ शान्ति स्थापन के लिये तुम्हारे निकट आयी हूँ। यह सुरथ का पुत्र तुम्हारे निकट आया है। तुम्हें इस पर अनुग्रह करना चाहिये। हे अरिमर्दन! यह बालक सीस नवा, शान्ति स्थापन के लिये तुमसे प्रार्थना कर रहा है। अब तुम शान्त हो जाओ। हे पार्थ! इस बान्धव रहित बालक पर तुम कृपा करो और इस पर क्रुद्ध मत हो। धर्मज्ञ! उस अनार्य अत्यन्त अपराधी नृशंस इस बालक के पितामह को भूल कर, तुम्हें इसके ऊपर प्रसन्न होना चाहिये।

जब दुःशला ने इस प्रकार करुणापूर्ण वचन कहे, तब अर्जुन ने धृतराष्ट्र और गान्धारी देवी का स्मरण कर, दुःख तथा शोक से आर्त्त हो, क्षात्र धर्म की निन्दा की। वे बोले—उस क्षुद्रमना एवं राज्यकामुक तथा वृथाभिमानी दुर्योधन को धिक्कार है। क्योंकि उसीके पीछे मेरे द्वारा ये समस्त मेरे रिश्तेदार यमपुरी भेजे गये हैं। अन्त में अर्जुन ने अनेक प्रकार के वचन कह, दुःशला को सान्त्वना प्रदान की और दुःशला के पौत्र पर कृपा की। फिर बड़ी प्रीति के साथ दुःशला को वहाँ से बिदा किया। शुभानना दुःशला भी उस सेना को युद्धक्षेत्र से लौटा कर और अर्जुन को प्रणाम कर, अपने घर को लौट गयी।

तदनन्तर सैन्धव वीरों को इस प्रकार परास्त कर, अर्जुन पुनः उस

कामचारी घोड़े के पीछे हो लिये। जैसे पिनाकी महादेव ने आकाशचारी मृग का अनुसरण किया था, वैसे ही महाप्रतापी एवं तेजस्वी वीर अर्जुन उस यज्ञीय अश्व का अनुगमन करने लगे। वह यज्ञीय अश्व क्रमशः हरेक देश में घूमता हुआ विचरण करने लगा। हे पुरुषोत्तम! वह घोड़ा घूमता फिरता अर्जुन सहित मणिपुरराज के राज्य में जा उपस्थित हुआ।

उन्नासीवाँ अध्याय

अर्जुन की हार

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! मणिपुराधीश बभ्रुवाहन अपने पिता के आगमन का संवाद सुन, ब्राह्मणों को तथा भेंट के लिये धन को आगे कर, बड़े विनम्र भाव से अपने पिता की अगवानी करने को, उनके निकट गया। बभ्रुवाहन के इस ढंग से अपने निकट आने पर, बुद्धिमान अर्जुन ने क्षात्र धर्म को स्मरण कर, बभ्रुवाहन के इस कार्य पर अपनी प्रसन्नता प्रकट न की। प्रत्युत धर्मात्मा अर्जुन ने कुपित हो उससे कहा—यद्यपि तुम्हारा यह कार्य अनुचित तो नहीं है, तथापि यह क्षात्र धर्म के विरुद्ध है। मैं तो महाराज युधिष्ठर के यज्ञीय अश्व की रक्षा करता हुआ तुम्हारे राज्य में आया हूँ। अतः तुम मुझसे लड़ते क्यों नहीं? हे दुर्बुद्धे! तुमने क्षात्र धर्म को उल्लङ्घन किया है। मैं तो युद्ध करने को आया हूँ और तुम मेरी खुशामद करते हो। तुम्हें धिक्कार है। हे दुर्मते! मैं तो लड़ने के लिये आया हूँ और तुम स्त्रियों की तरह मुझे भेंटे देते हो। हे नराधम! यदि मैं शस्त्र रहित हो, तुम्हारे पास आया होता, तो तुम्हारा यह व्यवहार युक्तियुक्त कहा जा सकता था।

पन्नगपुत्री उलूपी ने जब अपने पुत्र के इस तिरस्कार का संवाद सुना तब वह पाताल से अपने पुत्र के निकट आयी। उसने देखा कि, पिता द्वारा तिरस्कृत बभ्रुवाहन सिर नीचा किये खड़ा है। तब उसने अपने पुत्रसे कहा—

मैं पन्नगकन्या उलूपी हूँ। तुम मुझे अपनी माता जानो। अब मैं जो कुछ कहूँ तुम उसी तरह काम करो। ऐसा करने से तुम्हें बड़ा पुण्य होगा। हे बेटा! तुम इस युद्ध दुर्मद कुरुश्रेष्ठ अपने पिता के साथ युद्ध करो। ऐसा करने से यह निश्चय ही तुम्हारे ऊपर प्रसन्न होंगे।

हे भरतश्रेष्ठ! महातेजस्वी राजा बभ्रुवाहन माता के इन वचनों को सुन, क्रुद्ध हुए और युद्ध की तैयारी की। उसने सोने का चमचमाता कवच और शिरस्त्राण धारण किये। फिर मन के समान शीघ्रगामी उत्तम घोड़ों से युक्त रथ पर वह सवार हुआ। उस रथ में बाणों से भरे सौ तरकस रखे हुए थे। उसके ऊपर सुवर्ण कलस लगे थे। वह रथ बहुत ऊँचा था तथा सिंहध्वजा विशिष्ट था। उस रथ पर सवार हो बभ्रुवाहन, अर्जुन के निकट गया। फिर उसने अश्व-विद्या-विशारद अपने लोगों से उस यज्ञीय अश्व को पकड़वाया। यह देख अर्जुन हर्षित हुए और स्वयं पृथिवी पर खड़े हो, रथारूढ़ अपने पुत्र को घोड़ा पकड़ने की मनायी की। इस पर विष में बुझे बाणों से बभ्रुवाहन ने अर्जुन को घायल किया। पिता-पुत्र में देवासुर संग्राम की तरह तुमुल युद्ध होने लगा। उसने टेढ़े पर्व वाले बाण छोड़ अर्जुन के जत्रु स्थान (हंसली की हड्डी के पास का स्थान) को विदीर्ण किया। वह बाण बिल में घुसने वाले सर्प की तरह सपुंख अर्जुन के शरीर में घुस गया। फिर उनके शरीर को फोड़ वह बाण पृथिवी में समा गया। इस बाणप्रहार से अर्जुन विकल हो अचेत हो गये। वे अपने धनुष का सहारा ले प्रमत्त की भाँति अचेत हो गये। कुछ देर बाद इन्द्रनन्दन एवं पुरुषश्रेष्ठ अर्जुन सचेत हुए और पुत्र से बोले—हे चित्राङ्गदानन्दन! तुम धन्य हो। हे पुत्र! मैं तुम्हारे इस कार्य से तुम्हारे ऊपर बहुत प्रसन्न हूँ। हे पुत्र! तुम क्षण भर रणक्षेत्र में ठहरे रहो। अब मैं अपने बाण तुम्हारे ऊपर छोड़ता हूँ। यह कह शत्रुघाती अर्जुन ने बभ्रुवाहन पर शरवृष्टि करनी आरम्भ की। किन्तु बभ्रुवाहन ने अपने भल्लशरों से अर्जुन के चलाये बाणों के दो दो टुकड़े कर, उन्हें भूमि पर गिरा दिया। तब अर्जुन ने दिव्य बाण और सुरास्त्र से बभ्रुवाहन के रथ

की सुवर्ण ताल सदृश सुवर्ण ध्वजा काट गिरायी। फिर हँस कर, उसके रथ के घोड़ों को भी मार डाला। इस पर बभ्रुवाहन बड़ा कुपित हुआ और रथ से उतर पैदल ही पिता के साथ लड़ने लगा। पुत्र के विक्रम से परम प्रसन्न हो इन्द्रपुत्र अर्जुन ने बभ्रुवाहन को पीड़ित किया। इस पर बभ्रुवाहन ने बाल-स्वभाव-वश, सर्प जैसे विषैले एक पैने बाण से अर्जुन का हृदय बिद्ध कर डाला। वह बाण अर्जुन के मर्मस्थल को वेध कर, उन्हें मर्मान्तक पीड़ा पहुँचाने लगा। वे अत्यन्त पीड़ित हो भूमि पर गिर पड़े। कुरु-कुल-धुरन्धर धनञ्जय के गिरने पर, चित्राङ्गदापुत्र बभ्रुवाहन भी मृत्यु को प्राप्त हुआ। क्योंकि अर्जुन के बाणों से वह पहले ही बुरी तरह घायल हो चुका था। अतः वह भी निर्जीव हो भूमि पर गिर पड़ा। मणिपुरराज की राज-माता चित्राङ्गदा अपने पति और पुत्र को मरा देख, बहुत त्रस्त हुई और रणक्षेत्र में पहुँची। वहाँ पति को मृत देख वे थरथर काँपती हुई शोक सन्तप्त हृदय से रुदन करने लगी।

अस्सीवाँ अध्याय

अर्जुन का पुनः जीवित होना

वैशम्पायन जी बोले—जनमेजय! कमलनयनी चित्राङ्गदा शोक से सन्तप्त हो विलाप करने लगी। यहाँ तक कि, विलाप करते करते वह विमोहित हो पृथिवी पर गिर पड़ी। क्षण भर के अनन्तर वह मनोहराङ्गी चित्राङ्गदा देवी सावधान हो, पन्नगपुत्री उलूपी को देख, कहने लगी—तुम्हारे उत्तेजित करने पर ही बभ्रुवाहन द्वारा मेरे पति निर्जीव हो रणभूमि में अनन्त-निद्रा में पड़े हुए हैं। उलूपी! तुम पातिव्रतधर्म को जानने वाली और पतिव्रता शिरोमणि हो। तुम्हारे ही कारण पतिदेव मृतक हो, भूमि पर पड़े हुए हैं। अर्जुन ने भले ही तुम्हारे प्रति अनेक अपराध किये हों तो भी मैं तुमसे प्रार्थना करती हूँ कि, तुम उनके अपराधों को क्षमा कर, उन्हें पुनः

जीवित कर दो। तुम त्रिलोक में पतिव्रताधर्म को जानने वाली कहलाती हो। फिर भी तुम पुत्र के हाथ से पति को मरवा शोकविह्वल क्यों नहीं होतीं? हे पन्नगनन्दिनी! मुझे अपने पुत्र के मरने का उतना शोक नहीं है, जितना मुझे अतिथिरूप से आये हुए अपने पति के मारे जाने का शोक है।

उलूपी से इस प्रकार कह, चित्राङ्गदा अपने पति के मृतक शरीर के निकट जा कहने लगी—हे कुरुकुल के परम प्रिय! आप उठ बैठें। मैं आपके यज्ञीय घोड़े को छोड़े देती हूँ। आप अपने बड़े भाई के घोड़े का अनुसरण कीजिये। आप उसका अनुसरण न कर पृथिवी पर पड़े क्यों सो रहे हैं। हे कुरुनन्दन! मेरा जीवित रहना आपके अधीन है। अतः आप दूसरों के प्राणदाता हो कर भी, अपने प्राण क्यों कर परित्याग किये हुए हैं?

चित्राङ्गदा बोली—हे उलूपी! तुम भूमि पर पड़े अपने पति को भली भाँति देख तो लो। तुम पुत्र को इस प्रकार उत्तेजित कर और उसके हाथ से पति का नाश करवा शोक क्यों नहीं करतीं? देखो, यह बालक मृत हो पृथिवी पर पड़ा भले ही सोता रहे; किन्तु लोहितनयन गुडाकेश विजयी और जीवित होवें। हे सुभगे! मनुष्य के यदि बहुत सी भार्याएँ हों, तो वह निन्दित नहीं माना जाता। तुम निस्सन्देह इस मेरे कथन को मान लो। पति अपनी अनेक स्त्रियों का स्वामी होता है। यह नित्य सत्यता विधाता की उत्पन्न की हुई है। तुम निश्चय जान रखो कि, इस नित्य सत्यता का नाश नहीं होगा। तुमने पुत्र के हाथ से पति का वध करवाया है। यदि तुम मुझे पति को जीवित कर न दिखलाओगी तो मैं अभी अपनी जान दे दूँगी। मैं पति और पुत्र के विरह से अत्यन्त पीड़ित हो रही हूँ। मैं तुम्हारे आगे ही योगावलम्बन पूर्वक अपने प्राण त्याग दूँगी। हे राजन्! चैत्रवादिनी चित्राङ्गदा ने पन्नगनन्दिनी उलूपी से यह कह, योगव्रत अवलम्बन किया और चुप हो गयी।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! पुत्राभिलाषिणी चित्राङ्गदा लंबी साँसें छोड़ती हुई और विलाप करती हुई, शोक से विरत हुई

और पति के चरणों को पकड़ दीन भाव से बैठ गयी। इतने में बभ्रुवाहन सचेत हुआ और रणक्षेत्र में बैठी हुई अपनी माता को देख, उससे कहा—इससे अधिक दुःख मेरे लिये और क्या होगा कि, जो सदा सुख में पाली पोसी गयी मेरी माता भूशायी मृतक पति के निकट शयन करती है। शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ और मेरे हाथ से युद्ध में मृत्यु को प्राप्त मेरे पिता को वह शोक-विह्वला हो देख रही है। महाबली पति को युद्ध में मृत्यु को प्राप्त हुआ देख, इसका हृदय विदीर्ण नहीं होता—यह बड़े आश्चर्य की बात है। इस दशा में जब मैं और मेरी माता जीवित हैं, तब कहना पड़ता है कि, इस लोक में समय आये बिना कोई नहीं मरता। हा! जब पुत्र हो कर, मैंने अपने पिता का कवच फोड़ डाला, तब कुरुप्रवीर के इस कवच को धिक्कार है। हे ब्राह्मणों! देखिये। मेरे महावीर धनञ्जय मेरे हाथ से मारे जा कर वीरशय्या पर पड़े सो रहे हैं। यदि यह मेरे हाथ से युद्ध में मारे गये, तो घोड़े के पीछे जाने वाले कुरुप्रधान इन अर्जुन की शान्ति के लिये जो ब्राह्मण युधिष्ठिर की आज्ञा से आये हैं, वे क्यों शान्तिविधान नहीं करते। मैंने रण-भूमि में नृशंस की तरह पितृहत्या कर के महापाप किया है। अतः ब्राह्मण लोग मुझे इसके लिये प्रायश्चित्त विधान बतलावें। मैं तो इस पितृहत्या का यह प्रायश्चित्त समझता हूँ कि, मैं इनका वर्म पहिन कर इस स्थान में बारह वर्ष रह कर दुःख पूर्वक समय व्यतीत करूँ। जब मैंने पिता के मस्तक में बाण मार कर इन्हें मारा है, तब मुझे इसे छोड़ और कोई प्रायश्चित्त नहीं देख पड़ता।

हे नागराज की पुत्री! देख, मैंने तुम्हारे पति का वध किया है। आज मैंने युद्ध में अर्जुन का वध कर के तुम्हारा अभीष्ट सिद्ध किया है। हे शुभे! मैं अब अपना शरीर धारण नहीं कर सकता। अतः मैं आज ही पितृनिषेवित स्थान को गमन करूँगा। हे माता! मेरे और गाण्डीव-धनुष-धारी अर्जुन के मरने से तुम प्रसन्न होओ। मैं सत्य पथ अवलम्बन कर के, परमात्मा-लाभ करूँगा।

हे जनमेजय ! शोकातुर राजा बभ्रुवाहन ने आचमन कर, दुःख पूर्वक कहा—हे सर्वभूतचराचर ! तुम लोग मेरी प्रतिज्ञा को सुनो। हे माता भुजगोत्तमे ! मैं तुमसे सत्य कहता हूँ। यदि मेरे विजयी पिता न जी उठेंगे, तो मैं इस रणक्षेत्र में अपना शरीर सुखा डालूँगा। पितृहत्या से अन्य किसी भी उपाय से मेरा छुटकारा नहीं हो सकता। मैं गुरुवध से अर्दित हो कर, निश्चय ही नरकगामी होऊँगा। यदि कोई पुरुष किसी क्षत्रिय वीर का वध करे, तो वह एक सौ गोदान दे कर, उस पाप से मुक्त हो सकता है। किन्तु मैंने तो पितृहत्या की है। अतः मेरी निष्कृत होनी दुर्लभ है। यह महातेजस्वी धर्मात्मा पाण्डुनन्दन धनञ्जय मेरे पिता हैं और विशेष कर एकाकी हैं। अतः इनका वध कर, मैं पाप से कैसे छूट सकता हूँ। हे नरनाथ ! महाबुद्धिमान् अर्जुन के पुत्र बभ्रुवाहन ने यह कह आचमन किया और मौनावलम्बन कर, शरीर-त्याग-पर्यन्त खान पान त्याग बैठा।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय ! उस समय पितृशोक से विकल मणिपुरेश्वर बभ्रुवाहन ने जब माता सहित अनशन व्रत धारण किया; तब उलूपी ने सञ्जीवन मणि से क्या किया ? ध्यान करते ही वह पन्नग-परायण-मणि तुरन्त वहाँ उपस्थित हुई। हे कौरव्य ! उस मणि को ले कर, पन्नगराजपुत्री उलूपी सैनिकों को आनन्ददायी वचन सुनाने लगी। उसने राजा बभ्रुवाहन से कहा—हे पुत्र ! अब तुम शोक परित्याग कर उठो। अर्जुन तुम्हारे द्वारा निर्जित नहीं हुए। क्योंकि इन्हें देवताओं सहित इन्द्र भी नहीं जीत सकते। यह सब से अजेय हैं। किन्तु मैंने यह मनोमुग्ध-कारिणी माया तुम्हारे यशस्वी पिता की प्रीति सम्पादन करने के लिये प्रदर्शित की है। तुम्हें पुत्र समझ, तुम्हारा बल जानने के लिये शत्रुनाशन अर्जुन तुम्हारे साथ युद्ध करने को आये थे। हे वत्स ! इसी लिये मैंने तुम्हें उनके साथ युद्ध करने के लिये भेजा था। अतएव तुम इस विषय में पाप की आशङ्का ज़रा भी मत करो। हे राजन् ! यह महात्मा पुराण ऋषि शाश्वत तथा अक्षर हैं। हे पुत्र ! अतएव इन्द्र भी इन्हें युद्ध में पराजित नहीं

कर सकते। हे प्रजानाथ! जो सदा मृत पन्नगों को बारंबार जीवित किया करती है, मैंने वहीं मणि मँगवायी है। तुम इस मणि को ले कर, अपने पिता के वक्षःस्थल पर रखो। इसके रखते ही वे जी उठेंगे।

उलूपी के इन वचनों को सुन, अमित तेजस्वी एवं निर्दोष बभ्रुवाहन ने पितृस्नेह के वशवर्त्ती हो, तुरन्त वह मणि अर्जुन के वक्षःस्थल पर रखी। मणि के वक्षःस्थल पर रखते ही वीरवर अर्जुन बहुत समय से सोये हुए पुरुष की तरह जीवित हो, उठ बैठे। तब बभ्रुवाहन ने अपने पिता को प्रणाम किया। इन्द्र ने पुष्पों की वृष्टि की। आकाश में नगाड़े बजाये गये और धन्य धन्य का शब्द सुन पड़ा। अर्जुन ने बभ्रुवाहन का स्नेहवश शिर सूँघा। फिर शोककर्षिता चित्राङ्गदा को देखा। तदुपरान्त अर्जुन ने बभ्रुवाहन से पूँछा—हे शत्रुनाशन वत्स! इस रणभूमि में लोग शोकान्वित, विस्मित तथा हर्षित दिखलायी पड़ते हैं। इसका क्या कारण है? यदि तुम्हें मालूम हो तो बतलाओ। तुम्हारी माता चित्राङ्गदा और नागेन्द्रपुत्री उलूपी रणभूमि में क्यों आयी हैं? तुम तो मेरे कथनानुसार युद्ध करने में प्रवृत्त हुए थे। फिर इन स्त्रियों के यहाँ आने का क्या कारण है?

इस पर मणिपुरपति विद्वान् बभ्रुवाहन ने अर्जुन के ये वचन सुन, सिर नीचा कर लिया और पिता को प्रसन्न करने के लिये कहा—आप उलूपी से सारा वृत्तान्त पूँछ लीजिये।

इक्यासीवाँ अध्याय

अर्जुन-उलूपी-संवाद

अर्जुन ने कहा—हे कौरव-कुल-नन्दिनी उलूपी! तुम्हारा और राजा बभ्रुवाहन के रणक्षेत्र में आने का क्या प्रयोजन है? हे चपलाङ्गि! हे भुजगात्मजे! क्या तुम इस राजा बभ्रुवाहन की कुशल कामना से यहाँ आयी हो अथवा मेरे मङ्गल की इच्छा रख तुम्हारा यहाँ आना हुआ है?

हे प्रियदर्शने ! मुझसे या बभ्रुवाहन से अनजान में तुम्हारे विरुद्ध कोई अप्रिय कार्य तो नहीं बन पड़ा ! तुम्हारी इस वरारोहा सौत चैत्रवादिनी चित्राङ्गदा ने तुम्हारा कोई अपराध तो नहीं किया ।

उरगराज पुत्री उलूपी अर्जुन के इन वचनों को सुन, हँस पड़ी और उनसे बोली—आपने बभ्रुवाहन ने तथा चित्राङ्गद ने मेरे प्रति कोई अपराध नहीं किया । किन्तु जो कुछ और जिस प्रकार मैंने किया है, उसका वृत्तान्त आप अब सुनें । हे विभो ! मैं सीस झुका आपको प्रणाम करती हूँ । आप मेरे ऊपर कुपित न हों । हे कौरव्य ! मैंने जो कुछ किया है—सो सब आपकी प्रसन्नता के लिये और प्रीति के वश किया है । हे महाबाहो ! पहले जो घटना हुई थी, उसे आप सुनें । हे धनञ्जय ! महाभारत युद्ध में आपने अधर्म युद्ध कर भीष्म पितामह का वध किया था, जिससे आप पापग्रस्त हो गये थे । उस पाप से आप आज छूट गये । वे वीरवर ! आप सम्मुख युद्ध कर, भीष्म को नहीं मार सकते थे । इस लिये शिखण्डी को सामने कर आप उनका वध कर सके । यदि आप इस पापकर्म की शान्ति किये बिना शरीर त्याग करते तो निश्चय ही उस कर्म रूपी पाप के कारण तुम्हें नरक में गिरना पड़ता । भीष्म के मरने पर गङ्गा और वसुगण ने तुम्हारे लिये उस पापकर्म का यही प्रायश्चित्त निर्धारित किया था कि तुम पुत्र के हाथ से मारे जाओ । इसीलिये पुत्र द्वारा आप पीड़ित किये गये । शान्तनुपुत्र भीष्म के मारे जाने पर, जिस समय गङ्गा तट पर आ, वसुओं ने तुम्हें शाप दिया था, उस समय मैं वहीं थी और मैंने वह शाप सुना था । वसुओं ने गङ्गानदी के तट पर आ यह घोर वाक्य कहा था—हे भाविनी ! सव्यसाची ने रणक्षेत्र में धर्मयुद्ध न कर, अधर्म युद्ध कर, शान्तनुनन्दन का वध किया है । अतः हमने आज अर्जुन को शाप दिया है । गङ्गा ने वसुओं की इस बात का समर्थन किया । तब मैंने यह बात जा कर अपने पिता से कही और इससे मुझे बड़ा दुःख हुआ । मेरे पिता को भी शाप की बात सुन

बड़ा दुःख हुआ। अनन्तर पिता जी ने वसुओं के निकट जा और उन्हें प्रसन्न करने के लिये बारंबार प्रार्थना की। तब उन लोगों ने मेरे पिता से कहा—हे महाभाग! जब अर्जुन का पुत्र मणिपुर का युवराज बभ्रुवाहन, बाण से मार कर उसे धराशायी करेगा; तब हमारा शाप छूट जायगा। आपको तो वैसे देवराज इन्द्र भी परास्त नहीं कर सकते; किन्तु पुत्र रूप से आत्मा ही उत्पन्न होता है। अतः अपने पुत्र के द्वारा आपको पराजित होना पड़ा है। इससे आप जान सकते हैं कि, मैं इसमें सर्वथा निर्दोष हूँ; किन्तु आप इसे कैसा समझेंगे—यह मैं नहीं कह सकती।

अर्जुन उलूपी का ऐसा वचन सुन कर, प्रसन्न हुए और कहने लगे—हे देवि! तुमने जो कुछ किया वह मेरी भलाई के लिये ही तो किया है, अतः मुझे तुम्हारा काम प्रिय जान पड़ता है।

उलूपी से यह कह अर्जुन ने चित्राङ्गदा के सामने अपने पुत्र बभ्रुवाहन से कहा—बेटा! आगामी चैती पूर्णमासी को महाराज युधिष्ठिर अश्वमेध यज्ञ करेंगे। सो तुम अपनी माता को साथ ले, मंत्रियों सहित वहाँ आ जाना। यह सुन बभ्रुवाहन ने आँखों में आँसू भर कर पिता से कहा—आपके आदेशानुसार मैं यज्ञ में अवश्य उपस्थित होऊँगा और ब्राह्मणों को भोजन परोसने का कार्य भी मैं करूँगा। किन्तु मेरी आपसे यह प्रार्थना है कि, आप मेरी इन दोनों माताओं सहित मेरी राजधानी में प्रवेश करें। इसके लिये अपने मन में कुछ भी सोच विचार न करें। प्रभो! निज भवन में सुख से एक रात रह कर, अगले दिन पुनः घोड़े के पीछे हो लेना।

कपिध्वज कुन्तीनन्दन धनञ्जय ने पुत्र के इन वचनों को सुन, उससे कहा—हे महाबाहो! मुझे तुम्हारा अभिप्राय अवगत हो गया। हे पृथुलोचन! मैंने जिस प्रकार दीक्षा ग्रहण की है, तदनुसार ही मैं परिभ्रमण करूँगा। इसलिये इस समय मैं तुम्हारी राजधानी में नहीं जाऊँगा। हे नरेंद्र! यह यज्ञीय घोड़ा इच्छानुसार विचरेगा। इसकी गति रुद्ध न

होगी। अतः घोड़े के न रहने से, मैं भी नहीं रह सकूँगा। तुम्हारा मङ्गल हो। मैं अब जाता हूँ।

इसके बाद पुत्र से पूजित और दोनों पत्नियों से आज्ञा ले अर्जुन घोड़े के पीछे हो लिये।

बयासीवाँ अध्याय

मगध—पराजय

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! आसमुद्रान्त धराधाम पर भ्रमण करता हुआ वह घोड़ा हस्तिनापुर की ओर लौटा। उस इच्छाचारी घोड़े का अनुगमन करते हुए अर्जुन क्रमशः मगधदेश के राजभवन के निकट पहुँचे। हे प्रभो! क्षात्र धर्मानुसार महावीर सहदेवपुत्र मेघसन्धि ने अर्जुन का आगमन सुन, अर्जुन को रण के लिये ललकारा। वह रथी धनुष और बाण लिये और चाम के दस्ताने पहिने हुए मेघसन्धि अपने नगर के बाहिर आया और पैदल चलते हुए अर्जुन के निकट जा पहुँचा। महातेजस्वी मेघसन्धि बाल-स्वभाव-सुलभ मूर्खतावश अर्जुन से बोला—हे पार्थ! क्या आप स्त्रियों में विचरने वाले पुरुष की तरह इस घोड़े को जगत् में घुमावेंगे? मैं इस घोड़े को पकड़ता हूँ। आप इसे छुड़ाने के लिये प्रयत्नवान् हों (मेरे पिता पितामहादि तो तुम्हें शिक्षा न दे सके; किन्तु) मैं आपका वीरोचित आतिथ्य किये बिना न रहूँगा। अतः आप मेरे ऊपर प्रहार कीजिये। मैं भी आप पर प्रहार करूँगा।

मेघसन्धि के इन वचनों को सुन, अर्जुन ने उससे हँस कर कहा—मेरे कार्य में जो विघ्न डाले, उसका निवारण करना ही मेरा व्रत है। राजन्! तुम जानते हो मेरे ज्येष्ठ भ्राता ने यह कार्य मुझे सौपा है। तुम अपनी शक्ति के अनुसार मेरे ऊपर प्रहार करो। इसके लिये मैं तुम्हारे ऊपर अप्रसन्न न होऊँगा। अर्जुन की इस बात को सुन, मगधेश्वर ने इन्द्र की तरह, अर्जुन

के ऊपर असंख्य बाण बरसाये। किन्तु अर्जुन ने उस बाणवृष्टि को अपने बाणों की मार से व्यर्थ कर डाला। फिर उन्होंने प्रदीप्त मुख वाले सूर्य की भाँति चमचमाते भयङ्कर बाण छोड़े। परन्तु अर्जुन के यह बाण मगधेश्वर और उसके सारथी के शरीर में न लग, उसके रथ की ध्वजा, पताका, दण्ड, घोड़ों तथा रथ के अन्य भागों में जा कर लगे।

मगधेश्वर का शरीर अर्जुन द्वारा रक्षित होने पर भी मगधेश्वर ने समझ लिया कि, मैं बड़ा बली और वीर्यवान् हूँ। यह समझ उसने अर्जुन पर पुनः बाणवृष्टि की। इस बाणवृष्टि से अर्जुन का शरीर क्षत विक्षत हो ऐसा जान पड़ने लगा, मानों फूला हुआ पलाश का पेड़ हो। हे कुरु-वंश-वतंस! मगधराज को मारना अर्जुन को अभीष्ट न था—इसीसे वह राजा, लोकवीर अर्जुन के सामने खड़ा रह सका। किन्तु अब अर्जुन ने विलंब न कर मगधराज के रथ के घोड़ों को मार डाला और सारथी का सिर काट डाला। फिर क्षुर नामक बाण से उसके अपूर्व धनुष को काटा। फिर उसके दस्तानों को काट उसकी ध्वजा भी काट डाली। घोड़ों और सारथि के मारे जाने पर तथा धनुष के कट जाने पर, मगधराज विकल हुआ और बड़ी फुर्ती से गदा उठा अर्जुन के सामने जा पहुँचा। तब गीध के पंखों से युक्त बाण चला अर्जुन ने उसकी स्वर्णमयी गदा के टुकड़े टुकड़े कर डाले। टुकड़े टुकड़े हो कर वह गदा भूमि पर वैसे ही गिर पड़ी जैसे साँपिन की केंचुल गिरती है। तब निहत्थे हो खड़े हुए मगधराज से अर्जुन ने कहा—राजन्! तुमने बालक हो कर भी युद्ध में अच्छा पराक्रम प्रदर्शित किया है। तुमने क्षात्रधर्म का भलीभाँति पालन किया है। बस तुम्हारे लिये इतना ही बहुत है। अब तुम लौट जाओ। क्योंकि धर्मराज ने राजाओं के प्राण लेने का निषेध कर दिया है। यही कारण है कि, इतनी अवहेला करके भी तुम जीवित हो।

उस समय मगधराज ने अपने को यथार्थ में निराकृत समझा और हाथ जोड़ कर अर्जुन से सम्मान पूर्वक कहा—हे पार्थ! मैं आपसे हारा।

अब आपके साथ लड़ने की साध मेरे मन में नहीं रह गयी। अब आप जो आज्ञा दें—सो मैं करूँ।

अर्जुन, मगधपति को धैर्य, बँधा, उससे बोले—आगामी चैत्र की पूर्णिमा को महाराज युधिष्ठिर अश्वमेध यज्ञ करेंगे। उस समय तुम यज्ञ में उपस्थित होना।

हे जनमेजय! सहदेव पुत्र मेघसन्धि ने अर्जुन की इस बात को सुन यज्ञ में आना स्वीकार किया। फिर उसने अर्जुन की तथा उनके यज्ञीय अश्व की विधिपूर्वक पूजा की। फिर वहाँ से अर्जुन समुद्र के तट पर होते हुए, क्रम से वङ्ग, पुण्ड्र और कौशल आदि देशों में पुनः घोडे के साथ गये। हे महाराज! अर्जुन ने अपने गाण्डीव धनुष के सहारे इन देशों के राजाओं की म्लेच्छ सेनाओं को भली भाँति पराजित किया।

तिरासीवाँ अध्याय

चेदिराज और गान्धारराज के साथ अर्जुन का युद्ध

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! श्वेतवाहन अर्जुन मगधराज का सम्मान ग्रहण कर, घोड़े के साथ दक्षिण प्रान्त में गये। वहाँ से लौट कर महाबली घोड़ा चेदिराज की रमणीक शुक्ति नाम्नी नगरी में पहुँचा। वहाँ महाबली अर्जुन ने शिशुपाल के पुत्र शरभ द्वारा वीरोचित आतिथ्य ग्रहण किया। फिर वह घोड़ा, काशी, अङ्ग, कौशल, किरात और तेङ्गन देशों में गया। कुन्तीपुत्र अर्जुन ने वहाँ यथाक्रम सम्मान पा, दशार्ण देश की यात्रा की। वहाँ पर चित्राङ्गद के साथ अर्जुन का बड़ा भयानक युद्ध हुआ।

चित्राङ्गद को हरा अर्जुन निषादराज एकलव्य के राज्य में पहुँचे। वहाँ एकलव्य के पुत्र ने घोड़ों को पकड़ा। तब निषादों के साथ अर्जुन का रोमहर्षणकारी युद्ध हुआ। युद्ध में दुर्द्धर्ष एकलव्य के पुत्र को अर्जुन ने परास्त किया। एकलव्य के पुत्र को परास्त कर और उससे अपने को पुजवा, अर्जुन

दक्षिण समुद्र की ओर गये। वहाँ द्राविड़, आन्ध्र, रौद्रकर्मा माहिषक और कालगिरेय लोगों के साथ अर्जुन की लड़ाई हुई। उन लोगों को जीत कर अर्जुन घोड़े के साथ सौराष्ट्र देश में गये। वहाँ से घोड़ा गोकर्ण गया। वहाँ से वह प्रभासक्षेत्र में जा, वृष्णिवंशियों की रमणीय द्वारका पुरी में गया।

द्वारका में कुरुराज के यज्ञीय अश्व को आया हुआ देख, यादव कुमारों ने अर्जुन के साथ युद्ध करना चाहा, किन्तु उग्रसेन ने लड़ाई न होने दी। महाराज उग्रसेन, अर्जुन के मामा वसुदेव जी सहित, अर्जुन के पास गये और बड़ी प्रीति जना विधिपूर्वक उनका आगत स्वागत किया। फिर उनसे आज्ञा ले अर्जुन वहाँ से चल दिये और घोड़े के पीछे हो लिये। वहाँ से वह घोड़ा पश्चिम दिशास्थ देशों में होता हुआ, पञ्चनद (पंजाब) देश में पहुँचा। वहाँ से वह गान्धार देश में गया। वहाँ पर पूर्व वैर के अनुसार गान्धारराज शकुनि के पुत्र के साथ अर्जुन का तुमुल युद्ध हुआ।

चौरासीवाँ अध्याय

शकुनिनन्दन के साथ अर्जुन का युद्ध

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! गान्धारराज महारथी एवं वीर श्रेष्ठ शकुनिनन्दन ने, हाथियों, घोड़ों और रथों से युक्त एक बड़ी भारी सेना ले, अर्जुन का सामना किया। महाभारत के युद्ध में शकुनि के मारे जाने का स्मरण कर, योद्धा लोग धनुष बाण ले ले कर, अर्जुन से लड़ने के लिये निकले। तब अजेय अर्जुन ने उन सब को धर्मराज की आज्ञा सुनायी। किन्तु जब उन लोगों ने उस आज्ञा पर ध्यान न दिया और घोड़े को पकड़ा; तब अर्जुन ने क्रोध में भर, चमचमाते क्षुर नामक बाण छोड़, उन लोगों के सिर काटना शुरू किया। थोड़ी ही देर में अर्जुन के बाणों से घायल और अत्यन्त पीड़ित प्रतिपक्षी योद्धा, घोड़े को छोड़, घबड़ा कर भाग

खड़े हुए। तदनन्तर पुनः गान्धार योद्धाओं ने जब अर्जुन का मार्ग रोका, तब पुनः अर्जुन ने बाण छोड़, उन योद्धाओं के सिर काटने शुरू किये।

जब अर्जुन ने गान्धार सैन्य का भली भाँति संहार करना आरम्भ किया; तब राजा शकुनि के पुत्र ने युद्ध में प्रवृत्त अर्जुन का सामना किया। क्षात्र धर्मानुसार युद्ध करने में प्रवृत्त शकुनि-पुत्र से अर्जुन बोले—महाराज युधिष्ठिर के आदेशानुसार मैं राजाओं का वध नहीं करना चाहता। अतः अब लड़ने की आवश्यकता नहीं है। मैं नहीं चाहता कि, अब युद्ध हो और तुम मुझसे पराजित होवो। अर्जुन के इस प्रकार कहने पर अज्ञान से मोहित शकुनिपुत्र ने अर्जुन के वचन का तिरस्कार कर, अपने शत्रु अर्जुन को बाण चला कर, छिपा दिया। अमेयात्मा पृथापुत्र अर्जुन ने, जिस प्रकार जयद्रथ का सिर काटा था, उसी प्रकार कङ्कपत्र विभूषित अर्द्धचन्द्राकार बाण से शकुनिपुत्र का शिरस्त्राण काट गिराया। अर्जुन के इस हस्तकौशल को देख, गान्धार देशीय सेना परम विस्मित हुई। अर्जुन ने इच्छा रहने पर भी शकुनि-पुत्र का वध नहीं किया।

गान्धारराज का नीच पुत्र भयभीत हो, डरी हुई अपनी सेना सहित भाग खड़ा हुआ। तब अर्जुन ने सन्नतपर्वयुक्त भल्लास्त्र से उन भागने वालों के सिर काटने शुरू किये। अर्जुन के गाण्डीव धनुष से छूटे हुए बाणों से लोगों की भुजाएँ कटने लगीं। अर्जुन ऐसी फुर्ती से यह काम करते थे कि, लोगों को मालूम ही नहीं पड़ता था कि, उनकी भुजाएँ कब कटीं। उस सेना के मनुष्य, हाथी, घोड़े घबड़ा कर भाग रहे थे। भागते भागते उनमें से कोई लड़खड़ा कर गिर भी पड़ते थे। विपद्ग्रस्त हो इस प्रकार वह सेना लौटी जा रही थी। उस शत्रुपक्षीय सैन्य में ऐसा एक भी वीर न था, जो अर्जुन के प्रहार को सह सकता।

तदनन्तर गान्धारराज की जननी भयभीत हो कर, बूढ़े मंत्रियों सहित हाथ में अर्घ्यादि ले अर्जुन के पास गयी। वह अपने युद्धदुर्मद पुत्र को युद्ध करने का निषेध करती हुई अर्जुन को प्रसन्न करने लगी। तब अर्जुन उसे

सन्तुष्ट करने के लिये, उसके प्रति सम्मान प्रदर्शित कर, शकुनिपुत्र को धैर्य्य बँधा बोले। हे महाबाहो! मेरा तुम्हारा भ्रातृसम्बन्ध है। अतः जिस बुद्धि के वशवर्त्ती हो तुमने मेरे विरुद्ध युद्ध करने का ठान ठाना—उससे मैं सन्तुष्ट नहीं हूँ। हे अनघ! धृतराष्ट्र का और माता गान्धारी का स्मरण कर के ही तुम आज जीते जागते बच सके हो—तुम्हारे अनुचर तो सब मारे ही जा चुके हैं। जो हुआ सो हुआ। अब तुम अपने मन से मेरे प्रति शत्रु-भाव को निकाल डालो और अगली चैत्री पूर्णिमा के दिन होने वाले महा-राज युधिष्ठिर के अश्वमेध यज्ञ में तुम सम्मिलित होना।

पचासीवाँ अध्याय

यज्ञारम्भ

श्रीवैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! गान्धारराज से यह कह, अर्जुन उस इच्छाचारी घोड़े के पीछे हो लिये। अब वह घोड़ा लौट कर हस्तिनापुर की ओर चला।

महाराज युधिष्ठिर को, दूत के मुख से यह सुन कर कि, अर्जुन घोड़े के साथ सकुशल लौटे आ रहे हैं, बड़ी प्रसन्नता हुई। वे अर्जुन के गान्धार-राज तथा अन्य देशाधिपतियों को जीतने का संवाद सुन कर, अत्यन्त प्रसन्न हुए।

महातेजस्वी धर्मराज युधिष्ठिर ने इस बीच में माघी द्वादशी और इष्ट पुष्य नक्षत्र पा कर, भीमसेन, नकुल और सहदेव को बुलाया। उनके आ जाने पर युधिष्ठिर ने भीमसेन को सम्बोधन कर यह कहा—अर्जुन के साथ गये हुए उनके अनुचरों से मुझे मालूम हुआ है कि, तुम्हारा भाई धनञ्जय घोड़े के साथ आ रहा है। सो यज्ञकाल भी उपस्थित है और घोड़ा भी आ रहा है। माघी पूर्णिमा के बाद माघ व्यतीत हो जायगा। अतः तुम

यज्ञविधि जानने वाले विद्वानों को भेज, यज्ञ करने योग्य स्थान का ठीक ठाक करा लो और यज्ञ की तैयारी करवाओ।

भीमसेन ने, महाराज युधिष्ठिर के कथनानुसार व्यवस्था की और अर्जुन के आने का संवाद सुन वे परम प्रसन्न हुए। तदनन्तर भीमसेन यज्ञ-कर्म-निपुण ब्राह्मणों को आगे कर के चतुर मैमारो सहित प्रस्थानित हुए। भीमसेन ने ब्राह्मणों की निर्दिष्ट की हुई यज्ञभूमि की नाप जोख करवायी। फिर वे उस भूमि पर यज्ञमण्डप तथा यज्ञ में सम्मिलित होने वाले लोगों के ठहरने के लिये भवन आदि निर्माण करवाने लगे। देखते देखते सैकड़ों भवन खड़े हो गये। वे भवन सुनहले काम से अलङ्कृत थे और उनमें मणियाँ जड़ी हुई थीं। यज्ञमण्डप के स्तम्भ आदि तथा उसके बड़े बड़े तोरणद्वार सुवर्ण से चित्रित थे। यज्ञस्थान पर शुद्ध सुवर्ण जड़ा गया था। तदनन्तर भिन्न भिन्न देशों से आये हुए राजाओं के ठहरने के लिये स्थानों की रचना करवायी गयी। ब्राह्मणों के ठहरने के लिये भी भवन बनवाये गये। फिर भवनों को तैयार करवा, भीम ने बड़े बड़े राजाओं के पास दूतों द्वारा निमंत्रण भिजवाया।

हे जनमेजय! निमंत्रण पाते ही वे राज लोग युधिष्ठिर को प्रसन्न करने के लिये बहुत से रत्न, स्त्रियाँ और अश्व तथा विविध प्रकार के अस्त्रों को ले कर हस्तिनापुर के यज्ञमण्डप में उपस्थित हुए। जब राजा लोग शिविरों में प्रविष्ट होने लगे, तब शब्दायमान समुद्र जैसा शब्द, उन लोगों के साथियों के कोलाहल का हुआ, जो सारे आकाश में व्याप्त हो गया।

कुरुनन्दन धर्मराज महाराज युधिष्ठिर ने आये हुए राजाओं को उत्तम अन्न जल और बढ़िया पलंग देने की नौकरों को आज्ञा दी। उनके वाहनों के चारे पानी तथा ठहरने का भी प्रबन्ध करवाया। महाराज युधिष्ठिर के इस यज्ञ में बहुत से ब्रह्मवादी ब्राह्मण मुनि भी आये। उनके साथ उनके शिष्य भी थे। महाराज युधिष्ठिर ने आदर पूर्वक उन सब के ठहरने की भी

समुचित व्यवस्था करवायी। महातेजस्वी महाराज युधिष्ठिर, दम्भ त्याग, स्वयं सब के डेरों पर उन लोगों के पीछे पीछे उन्हें पहुँचाने जाते थे।

जब यज्ञमण्डप बन कर तैयार हो चुका, तब मैमारों ने महाराज को इसकी सूचना दी। आलस्य रहित माननीय महाराज युधिष्ठिर को तथा उनके भाइयों को यज्ञमण्डप के तैयार होने का समाचार सुन प्रसन्नता हुई।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय ! जब यज्ञकार्य आरम्भ हुआ तब हेतुवादी वाग्मी ब्राह्मण, आपस में शास्त्रार्थ में एक दूसरे को जीतने की कामना से, हेतुवाद को ले शास्त्रार्थ करने लगे। भीमसेन के पर्यवेक्षण में बनाये गये उस यज्ञमण्डप के सुनहले तोरणों को, जो देवेन्द्र इन्द्र के यज्ञ-मण्डप जैसा था, समागत राजा लोग, घूम फिर कर देखने लगे। उस यज्ञ-मण्डप में तथा यज्ञमण्डप के आस पास भवनों में जो सामान था—वह सब सोने का था। यहाँ तक कि पलंग, बरतन, कलसे और कटोरे सब सोने के थे। सोने को छोड़ वहाँ अन्य धातु दिखलायी ही नहीं पड़ती थी। राजाओं ने वहाँ यथाविधि बने हुए सुवर्णभूषित, दारुमय तथा मंत्र से संस्कारित खंभों को तथा वहाँ जमा किये गये जलजन्तुओं तथा स्थलचारी पशुओं को देखा। गौएँ, भैंसे, बूढ़ी स्त्रियाँ, जलजन्तु, पशु, पक्षी, जरायुज, अण्डज, स्वेदज, उद्भिज्ज, ओष-धियाँ, पर्वत, तथा अनूप देशों में उत्पन्न होने वाले जीवों को समागत राजाओं ने वहाँ देखा। इस प्रकार गोधन और धान्य से परिपूर्ण यज्ञशाला को देख, राजा लोग बड़े विस्मित हुए। जो स्थान ब्राह्मणों और वैश्यों के ठहरने के लिये निर्दिष्ट थे, वे बड़े स्वच्छ थे और उनमें यथास्थान खाने पीने की वस्तुएँ तथा धन भरा हुआ था। उस यज्ञ में ब्राह्मणों तथा मुनियों को बढ़िया बढ़िया माल खिलाये जाते थे। जब एक लक्ष ब्राह्मणों की पङ्क्ति उठती, तब बादल जैसी गड़गड़ाहट का शब्द करने वाला नगाड़ा बजाया जाता था। सो यह नगाड़ा दिन में कितने ही बार बजाया जाता था। अर्थात् कई लक्ष ब्राह्मणों को नित्य भोजन कराये जाते थे। महाराज युधिष्ठिर का वह यज्ञ इस प्रकार बड़ी धूमधाम से होने लगा। वहाँ दही के कुण्ड, घी के तालाब और अन्न

के पहाड़ देख पड़ते थे। राजन् ! युधिष्ठिर के इस महायज्ञ में जम्बूद्वीप का एक भी प्रदेश ऐसा न था, जहाँ के अधिवासी इस महायज्ञ में उपस्थित न हुए हों। वहाँ पर हर देश और हर जाति के ऐसे लोग जमा हुए थे, जिनके पास विविध प्रकार के पात्रादि सामान था। मणिमय कुण्डल धारण किये और मालाएँ पहिने हुए हज़ारों आदमी, बढ़िया स्वादिष्ट भोज्य पदार्थ द्विजातियों को परोसा करते थे। यज्ञ में जमा हुए (स्वयं) सेवक, ब्राह्मणों के सामने वे माल परोसते थे, जो राजा लोग खाया करते हैं।

छियासीवाँ अध्याय

युधिष्ठिर द्वारा यज्ञ का किया जाना

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! समागत ब्राह्मणों और राजाओं को देख महाराज युधिष्ठिर ने भीमसेन से कहा—हे पुरुषश्रेष्ठ! ये समागत समस्त पृथिवीपाल पूजनीय हैं। अतः इन सब की यथोचित ख़ातिरदारी करनी चाहिये।

महातेजस्वी भीमसेन ने, यशस्वी धर्मराज के यह वचन सुन तथा नकुल और सहदेव को अपनी सहायता के लिये अपने साथ ले, उन राजाओं की भली भाँति ख़ातिरदारी की। फिर वे सर्वश्रेष्ठ श्रीकृष्ण, बलदेव को आगे कर और सात्यकि, प्रद्युम्न, गद, निशठ, साम्ब और कृतवर्मा आदि वृष्णिवंशियों को साथ लिये हुए धर्मराज युधिष्ठिर के निकट गये। वहाँ इन सब की यथोचित्त ख़ातिरदारी की और फिर ये सब लोग उत्तम पदार्थों से परिपूर्ण अपने अपने डेरों को चले गये। श्रीकृष्ण ने बातचीत करते समय युधिष्ठिर को, उन अनेक युद्धों का वृत्तान्त सुनाया, जिनमें यज्ञीय अश्व की रक्षा के लिये अर्जुन को अनेक राजाओं के साथ प्रवृत्त होना पड़ा था। हे राजन्! एक द्वारका-वासी बड़ा विश्वस्त मनुष्य उस मण्डली में ऐसा भी था, जिसने अर्जुन को अनेक राजाओं से युद्ध करते समय देखा था। श्रीकृष्ण ने उसके कथन के

आधार पर युधिष्ठिर से कहा कि—अर्जुन हस्तिनापुर के निकट आ पहुँचे हैं और यहाँ आने ही वाले हैं। अब आप अश्वमेध यज्ञ की सिद्धि के लिये, करने योग्य कार्य करें।

जब श्रीकृष्ण ने यह कहा, तब धर्मराज युधिष्ठिर उनसे कहने लगे—हे माधव! यह मेरे लिये सौभाग्य की बात है कि, अर्जुन सकुशल लौट कर आ रहा है। पाण्डव-बलाग्रणी अर्जुन ने आपके पास जो अपने समाचार भेजे हैं, उन्हें मैं जानना चाहता हूँ। इस पर श्रीकृष्ण ने धर्मराज से कहा—महाराज! अर्जुन ने मुझसे यह कहला भेजा है कि, मौक़ा पा, तुम महाराज युधिष्ठिर से मेरी ओर से यह कहना कि—हे कौरवर्षभ! इस यज्ञ में जो राजा आवेंगे, उनकी ख़ातिरदारी हम लोगों को विशेष रीति से करनी चाहिये। हे मानद! इस यज्ञ में वैसा कोई बखेड़ा खड़ा न होने पावे, जैसा कि राजसूययज्ञ के समय पूजन-काल में उठ खड़ा हुआ था। प्रजाजनों के सामने राजाओं को आपस का बैर विद्वेष प्रदर्शित करने का अवसर हमारी ओर से न दिया जाय। हे कौन्तेय! धनञ्जय ने इस सँदेसे के अतिरिक्त यह भी सँदेसा भेजा है कि, मेरा बड़ा प्यारा पुत्र मणिपुर का राजा बभ्रुवाहन इस यज्ञ में आवेगा। आप मेरे अनुरोध से उसकी ख़ूब खातिरदारी करना। हे प्रभो! वह मेरा अत्यन्त भक्त और अनुरक्त पुत्र है।

धर्मराज ने युधिष्ठिर अर्जुन के इस सँदेसे का अभिनन्दन करते हुए कहा।

सतासीवाँ अध्याय

बभ्रुवाहन का आगमन

युधिष्ठिर बोले—हे कृष्ण! हे प्रभो! मैंने अर्जुन का सँदेसा सुना। आपके मुख से निकली, अमृतरस सदृश पवित्र मधुर वाणी मेरे मन को बहुत प्रसन्न करती है। हे हृषीकेश! मैंने सुना है कि, अर्जुन जिन देशों में गया

था, उन देशों के राजाओं के साथ उसे बड़ा युद्ध करना पड़ा। मेरी समझ में नहीं आता कि, अर्जुन को क्यों कभी सुख प्राप्त नहीं होता। इस बात से मेरा मन बड़ा दुःखी रहा करता है। हे जनार्दन! मैं जब एकान्त में बैठ अर्जुन के विषय में सोचता विचारता हूँ, तब मुझे उसका सारा जीवन दुःखमय और कष्टमय ही देख पड़ता है। उसे दुःखों और कष्टों से छुटकारा नहीं मिलता। हे कृष्ण! क्या अर्जुन के शरीर में कोई ऐसे अनिष्टसूचक लक्षण हैं? मुझे तो उसके शरीर में अनिष्टसूचक कोई लक्षण देख नहीं पड़ता। फिर क्यों उसे सदा दुःख भोगने पड़ते हैं? हे कृष्ण! यदि मेरे सुनने योग्य हो, तो आप मुझे इसका कारण सुनावें।

युधिष्ठिर के इन वचनों को सुन, श्रीकृष्ण सोच विचार कर कहने लगे—अर्जुन की जाँघों के नीचे का पिछला भाग माँसल अवश्य है। इसको छोड़ और तो कोई अविविक्त लक्षण मेरी दृष्टि में नहीं पड़ा। दोनों पिंडलियाँ मोटी होने से वे सदा भ्रमण किया करते हैं; किन्तु उनके शरीर में मुझे ऐसा कोई लक्षण नहीं देख पड़ता, जिसके कारण वे सदा दुःख भोगा करें। यह सुन युधिष्ठिर ने कहा—आपका कहना ठीक है।

अनन्तर इस प्रकार गुण में दोष लगाने वाले श्रीकृष्ण की ओर द्रौपदी ने तिरछी नज़र से देखा। इससे केशी-दैत्य-निषूदन श्रीकृष्ण, ने द्रौपदी का अभिप्राय ताड़ लिया और इस विषय में फिर श्रीकृष्ण कुछ न बोले। वहाँ जो भीमसेनादि कौरव तथा याजक लोग उस समय उपस्थित थे, वे लोग अर्जुन की इस प्रकार चर्चा सुन, बहुत प्रसन्न हुए। वे लोग आपस में अर्जुन के विषय में कथोपकथन कर ही रहे थे कि, उसी समय अर्जुन का भेजा एक दूत वहाँ पहुँचा और उसने महाराज युधिष्ठिर को अर्जुन के आने की सूचना दी। दूत के मुख से अर्जुन के आगमन का समाचार सुन, मारे आनन्द के युधिष्ठिर के नेत्रों से हर्षाश्रु प्रवाहित हुए और इस शुभ संवाद को सुनाने के पुरस्कार में उन्होंने उस दूत को बहुत सा धन दिया।

तदनन्तर अगले दिन अर्जुन वहाँ पहुँचे, उस समय वहाँ लोगों ने बड़ा

हर्षनाद किया। अर्जुन के साथ साथ आने वाले घोड़ों की टापों से उड़ी हुई धूल, उच्चैःश्रवा के टापों से उड़ी हुई धूल के समान जान पड़ी। अर्जुन ने हर्ष में भरे लोगों को यह कहते सुना कि—हे पार्थ! यह सौभाग्य की बात है कि, तुम सकुशल लौट आये। तुम और युधिष्ठिर—दोनों ही धन्य हो। अर्जुन को छोड़ और कौन है जो युद्ध में राजाओं को जीत कर आसमुद्रान्त पृथिवी पर यज्ञीय अश्व के साथ घूम फिर कर सकुशल लौट आवें। पूर्वकालीन सगर आदि राजाओं के यज्ञ में भी ऐसा कठिन कार्य करते हुए, हमने किसी को नहीं सुना। हे कुरुकुलश्रेष्ठ! तुमने यह जैसा दुष्कर कार्य किया है—हमारी समझ में तो, ऐसा दुष्कर कार्य, आगे अब कोई राजा न कर सकेगा।

धर्मात्मा अर्जुन ने ऐसे कर्णमधुर वचन सुनते हुए यज्ञमण्डप में प्रवेश किया। तब धृतराष्ट्र को आगे कर, युधिष्ठिर और श्रीकृष्ण ने उनकी अगवानी की।

अर्जुन ने धृतराष्ट्र और युधिष्ठिर के चरण छू कर उन्हें प्रणाम किया। फिर भीम के प्रति सम्मान प्रदर्शित कर, अर्जुन श्रीकृष्ण को गले लगा कर मिले। फिर अर्जुन ने वैसे ही विश्राम किया, जैसे कोई पार जाने वाला पुरुष परले पार पहुँच विश्राम करता है। इसी बीच में दोनों माताओं को लिये हुए मणिपुराधीश बभ्रुवाहन वहाँ पहुँचे। बभ्रुवाहन बड़े बूढ़े कौरवों तथा अन्य राजाओं को प्रणाम कर और उनसे आशीर्वाद प्राप्त कर, अपनी दादी कुन्ती के महल में चले गये।

अट्ठासीवाँ अध्याय

यज्ञ-विधान

वैशम्पायन जी बोले—महाबाहु बभ्रुवाहन ने पाण्डवों के उत्तम एवं अलंकृत भवन में प्रवेश कर, शान्त भाव से अपनी दादी कुन्ती को प्रणाम

किया। फिर देवी चित्राङ्गदा तथा कौरव्य नाग पुत्री उलूपी ने कुन्ती तथा द्रौपदी को प्रणाम किया। फिर उन दोनों ने सुभद्रा आदि अन्यान्य कुरु स्त्रियों को यथाविधि प्रणाम किया।

तदनन्तर कुन्ती, द्रौपदी, सुभद्रा तथा अन्यान्य कुरुस्त्रियों ने उन्हें विविध रत्नादि दिये। तब वे दोनों बहुमूल्य विस्तरों से युक्त पर्यंक पर बैठीं। अर्जुन की प्रसन्नता के लिये कुन्ती ने स्वयं उन दोनों की बड़ी ख़ातिर-दारी की।

उधर महातेजस्वी राजा बभ्रुवाहन ने कुरुवृद्ध जनों से आदर पा, महाराज धृतराष्ट्र के प्रति यथाविधि सम्मान प्रदर्शित किया। फिर युधिष्ठिर भीम आदि के निकट जा, विनम्रभाव से उनको प्रणाम किया। पाण्डवों ने बड़े स्नेह के साथ बभ्रुवाहन को अपने गले लगाया और उसका आदर किया। फिर हर्षित हो पाण्डवों ने उसे धन दिया। तदनन्तर बभ्रुवाहन ने चक्र-गदा-धारी श्रीकृष्ण के प्रति प्रद्युम्न की तरह सम्मान प्रदर्शित किया। इस पर श्रीकृष्ण ने उसे सुवर्ण भूषित और उत्तम घोड़ों से युक्त एक रथ दिया। धर्मराज, भीमसेन, नकुल और सहदेव ने भी पृथक् पृथक् बड़े आदर के साथ बहुत बहुत सा धन दिया।

तदनन्तर तृतीय दिवस, महर्षि सत्यवती-नन्दन वेदव्यास जी युधिष्ठिर के पास आ, उनसे बोले—हे कौन्तेय! आज से तुम यज्ञारम्भ करो। यज्ञ करने का मुहूर्त्त आज ही है। अतः यज्ञ कराने वाले पुरुष यज्ञ करने की तुम्हें आज्ञा दे रहे हैं। हे राजेन्द्र! बहुत सा सुवर्ण सञ्चित होने के कारण तुम्हारा यह यज्ञ बहुसुवर्णान्वित कह कर प्रसिद्ध हुआ है। अतः यह यज्ञ पूर्ण रीति से सिद्ध होगा। इस यज्ञ में तुम निर्दिष्ट संख्या से तिगुने ब्राह्मणों को नियुक्त कर उन्हें तिगुनी यज्ञदक्षिणा दो। हे नरनाथ! इससे तुम्हें तीन अश्वमेध यज्ञ करने का फल मिलेगा और तुम स्वजन-वध-जन्य पाप से निर्मुक्त हो जाओगे।

तदनन्तर तेजस्वी धर्मात्मा धर्मराज ने अमित बुद्धिमान् व्यासदेव के इन वचनों को सुन, अश्वमेध की सिद्धि के लिये दीक्षा ली। फिर महाराज युधिष्ठिर ने अपने उस अश्वमेध महायज्ञ को अनेक दक्षिणाओं, सर्वकाम तथा सर्वगुणों से युक्त किया। हे राजन्! उस यज्ञ में समग्र वेदों को जानने वाले याजक वृन्द परिक्रमा कर उत्तम शिक्षा तथा विधि के अनुसार यज्ञकार्य करने लगे। उनके कार्य न तो स्खलित हुए और न अधूरे ही रहे। प्रत्युत लोगों ने यथारीति समस्त कार्य बड़ी योग्यता के साथ सम्पादन किये।

हे राजन्! यज्ञ कराने वालों ने अश्वमेध विहित धर्माख्य समस्त ऋक् एकत्र कर, यथाविधि सोमवल्ली को कूटा। फिर सोमपान करने वाले ब्राह्मणों ने शास्त्रोक्त विधि से सोमवल्ली का रस निकाला। फिर वे आनुपूर्विक उसका प्रातः सेवन करने लगे। उस यज्ञ में जितने लोग उपस्थित थे, उनमें कोई भी कृपण, दरिद्र, भूखा, दुःखी या गँवार न था। शत्रुनाशी महातेजस्वी भीमसेन को भोजन कराने का काम महाराज युधिष्ठिर ने सौंपा था। सो वे भोजनार्थी पुरुषों को भोजन कराने के लिये सदा प्रस्तुत रहते थे। इष्टका सञ्चालनाख्य स्थण्डिल रचना में निपुण याजक, नित्य शास्त्रोक्त विधि के अनुसार समस्त कार्य करने लगे। उस यज्ञ में षडङ्गवेदानभिज्ञ, व्रतविहीन और निर्गुण उपाध्याय कोई न था।

हे भरतर्षभ! तदनन्तर स्तम्भ खड़े करने का समय उपस्थित होने पर, याजकों ने छः बेल की लकड़ी के, छः खदिर (कत्था) की लकड़ी के और छः पलाश की लकड़ी के, दो देवदारु की लकड़ी के और एक श्लेष्मान्तक की लकड़ी का स्तम्भ खड़ा किया। फिर धर्मराज से पूँछ, भीमसेन ने बहुत से सोने के खंभे, यज्ञमण्डप की शोभा के लिये खड़े करवाये। वस्त्रों से अलंकृत वे स्तम्भ वैसे ही शोभित हुए, जैसे सुरलोक में सप्तर्षियों से घिरे हुए महेन्द्र के अनुगत देवता सुशोभित होते हैं। चयन कर्म के लिये सुवर्ण की ईंटे बनवायी गयी थीं। अतः चयन कर्म की वैसी ही शोभा हुई

जैसी शोभा दक्ष प्रजापति के चयन कर्म की हुई थी। चार स्थण्डिलों से युक्त इस महायज्ञ की वेदी आठारह हाथ परिमित रुक्म पक्ष युक्त त्रिकोण तथा गरुडाकार से बनायी गयी थी।

अनन्तर मनीषियों के द्वारा शास्त्र के अनुसार देवताओं के उद्देश्य से जो समस्त पशु, पक्षी, ऋषभ तथा जलचर नियुक्त हुए थे; ऋत्विजों ने अग्निचयन कर्म में उन पशुओं को भेंट किया। युधिष्ठिर के यज्ञ में अश्वादि तीन सौ पशु खंभों में बंधे हुए थे। युधिष्ठिर का यज्ञमण्डप, देवताओं और ऋषियों की उपस्थिति, गन्धर्वों के सङ्गीत और अप्सराओं के नृत्य से शोभायमान हो रहा था। किम्पुरुषों से युक्त, किन्नरों से शोभित, सिद्ध और ब्राह्मणों से परिवेष्टित उस यज्ञमण्डप की शोभा देखते ही बन आती थी।

उस महामण्डप में सर्वशास्त्रप्रणेता, यज्ञसंस्कार में निपुण द्विजश्रेष्ठ व्यासशिष्यों के बैठने पर, महातेजस्वी गीतकोविद नारद, तुम्बुरु, विश्वावसु, चित्रसेन तथा नृत्य गीत जानने वाले गन्धर्व गण उपस्थित ब्राह्मणमण्डली को हर्षित करने लगे।

नवासीवाँ अध्याय

यज्ञ-समाप्ति

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय ! द्विजाति याजकों ने अन्यान्य सुन्दर पशुओं का विधि पूर्वक संस्कार कर के शास्त्रोक्त विधि से उस यज्ञीय अश्व का वध किया। तदनन्तर याजकों ने पवित्र मन वाली द्रौपदी को वहाँ बैठाया। फिर घोड़े की चर्बी निकाल ब्राह्मणों ने विधि के अनुसार उसे तपाया। तब युधिष्ठिर ने अपने समस्त भाइयों सहित तपायी हुई चर्बी से निकलते हुए धुए को विधि पूर्वक सूँघा। यह धुए की गन्ध सब पापों को दूर करने वाली थी। राजन् ! घोड़े के जो अङ्ग बच गये थे, उनको

ऋत्विजों ने शास्त्रोक्त विधि से अग्नि में हौम दिया। इन्द्र तुल्य तेजस्वी राजा युधिष्ठिर के यज्ञ को इस प्रकार करवा शिष्यों सहित वेदव्यास जी ने युधिष्ठिर को आशीर्वाद दिया। तदनन्तर युधिष्ठिर ने विधि के अनुसार ब्राह्मणों को सात हज़ार कोटि निष्क दक्षिणा में दिये और व्यास जी को पृथिवी दी। हे राजन्! सत्यवतीसुत व्यास ने पृथिवी का प्रतिग्रह ले, युधिष्ठिर से कहा—हे राजसत्तम! मैं इस पृथिवी को त्यागता हूँ। यह तुम्हारी ही हो। मुझे इसका मूल्य दे दो। क्योंकि ब्राह्मण तो धन पा कर ही सन्तुष्ट होते हैं।

महामना युधिष्ठिर भाइयों की उपस्थिति में इन ब्राह्मणों से बोले—अश्वमेध यज्ञ की दक्षिणा में पृथिवी ही दी जाती है। अतएव अर्जुन द्वारा निर्जित यह वसुन्धरा मैंने ऋत्विजों को प्रदान की है। हे विप्रगण! आप लोग इसको आपस में बाँट लें। मैं अब वन को जाऊँगा। तुम चातुर्होत्र के प्रमाण से पृथिवी के चार भाग कर के बाँट लो। यह अब ब्रह्मस्व है। अतः मैं ब्राह्मणों का धन लेना नहीं चाहता। हे विप्रो! मैंने जो कहा है, उससे मेरे भाई भी सहमत हैं।

जब युधिष्ठिर ने यह कहा, तब द्रौपदी सहित उनके सब भाइयों ने एक स्वर से कहा—महाराज ने जो कहा है, उससे हम पूर्णतया सहमत हैं। पाण्डवों के इन वचनों को सुन, वहाँ उपस्थित समस्त लोगों के रोंगटे खड़े हो गये।

हे राजन्! तदनन्तर आकाशस्थ लोगों के साधुवाद और प्रशंसावाद से वह स्थान व्याप्त हो गया। तब महर्षि वेदव्यास और श्रीकृष्ण ने ब्राह्मणों के मध्य बैठे हुए युधिष्ठिर की प्रशंसा कर कहा—तुमने मुझे यह पृथिवी दी, मैं अब इसे आपको लौटाये देता हूँ। इसके बदले तुम ब्राह्मणों को सुवर्णदान करो। यह वसुन्धरा तुम्हारी ही रहे।

अनन्तर श्रीकृष्ण ने धर्मराज युधिष्ठिर से कहा—भगवान् वेदव्यास के कथनानुसार ही आपको करना चाहिये।

कुरुराज युधिष्ठिर ने व्यासदेव और श्रीकृष्णचन्द्र के कथन को सुन, ब्राह्मणों को यज्ञ में जो दक्षिणा दी जाती है, उससे तिगुनी दक्षिणा उनको दी। इतनी दक्षिणा अन्य कोई राजा नहीं दे सकता।

मुनिसत्तम व्यासदेव ने युधिष्ठिर के दिये रत्नों को ऋत्विजों में बाँट दिया। उन लोगों ने उन रत्नों के चार भाग कर लिये। युधिष्ठिर पृथिवी के मूल्य स्वरूप, सुवर्ण का दान कर, भाइयों सहित निष्पाप हो, स्वर्गजय करते हुए अत्यन्त आनन्दित हुए।

उस समय ऋत्विजों ने असीम आनन्द और उत्साह के साथ उस सोने को आपस में बाँट लिया। यज्ञमण्डप में जो सुवर्ण, तोरण आदि को सजाने के लिये लगाया गया था, वह तथा सोने के यज्ञीय पात्र घट कलश आदि भी उन लोगों ने धर्मराज की अनुमति से आपस में बाँट लिये। ब्राह्मणों के बाद क्षत्रियों वैश्यों और शूद्रों तथा म्लेच्छों ने जो सामान बचा था वह यथाक्रम आपस में बाँट लिया। अन्त में ब्राह्मणादि सब लोग परम सन्तुष्ट हो अपने अपने घरों को चले गये।

महातेजस्वी भगवान् वेदव्यास जी के हिस्से में जो सुवर्णराशि मिली थी, वह उन्होंने कुन्ती को दे दी। अपने ससुर के उस पुरस्कार को पा, उस धन को कुन्ती ने पुण्य कार्यों में लगा दिया। महाराज युधिष्ठिर ने भाइयों सहित यज्ञान्त स्नान किये। उस समय भाइयों के साथ उनकी वैसी ही शोभा हुई जैसी देवताओं के साथ इन्द्र की होती है। पाण्डव राजाओं के बीच वैसे ही शोभित हुए जैसे ग्रह, नक्षत्रों से घिर कर शोभित होते हैं। तदनन्तर युधिष्ठिर ने समागत राजाओं को विविध रत्न, हाथी, घोड़े, आभूषण, स्त्री, वस्त्र तथा सुवर्ण प्रदान किया। हे राजन्! उस राजमण्डली के बीच अपर्याप्त धन देने के समय युधिष्ठिर विश्रवापुत्र कुबेर की तरह शोभित हुए।

उसी समय वीरश्रेष्ठ राजा बभ्रुवाहन को समीप बुला, युधिष्ठिर ने उन्हें बिदा किया। फिर अपनी बहिन दुःशला के पौत्र को प्रीतिपूर्वक उसके राज्य

पर अधिष्ठित किया। तदनन्तर कुरुराज युधिष्ठिर ने भाइयों सहित आये हुए राजाओं का पूजन कर उन्हें बिदा किया। फिर श्रीकृष्ण, महाबली बलदेव जी, प्रद्युम्न आदि वृष्णिवंशियों की विधिपूर्वक पूजा की और उनको बिदा किया।

हे जनमेजय ! धर्मराज युधिष्ठिर के यज्ञ में भोजन सामग्री के पर्वत लगे थे और सुरा तथा मैरेय नामक आसवों के सागर भरे थे। उस यज्ञ में घृत के तालाब थे, पकवानों के पहाड़ थे और रसों की नदियाँ भरी थीं। कहाँ तक कहैं—उस यज्ञ में इतनी मिठाइयाँ और पकवान बनवाये गये थे और इतने पशुओं का वध किया गया था कि, उनकी नाप तौल और गिनती नहीं बतलायी जा सकती। मत्त, प्रमत्त एवं मुदित ललनाओं और गान वाद्य से पूरित वह स्थान, अत्यन्त मनोरम हो गया था। वहाँ पर नाना देशीय लोगों के "दीयतां" और परिचर्या में नियुक्त लोगों के मुख से निकले "भुज्यतां" शब्दों के कोलाहल से गगनमण्डल व्याप्त हो रहा था। इस प्रकार रत्नों और खाद्य पदार्थों की वर्षा कर, धर्मराज युधिष्ठिर ने निष्पाप हो, राजधानी के भीतर प्रवेश किया।

नब्वे का अध्याय

न्योले का उपाख्यान

राजा जनमेजय ने पूँछा—हे ब्रह्मन् ! मेरे पितामह के इस महायज्ञ में यदि कोई अपूर्व अथवा अद्भुत घटना हुई हो, तो आप उसका भी वर्णन करें।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय ! अश्वमेध यज्ञ पूर्ण होने के बाद जो एक अद्भुत घटना हुई थी, उसे अब सुनो। ऋषियों, ब्राह्मणों, दीन, दुःखियों तथा दरिद्रियों के तृप्त हो जाने पर तथा चारों ओर महाराज युधिष्ठिर की कीर्ति फैल जाने पर, धर्मराज के ऊपर आकाश से फूलों की वर्षा हुई।

उस समय नीले नेत्र और सुवर्ण और सोने का आधा शरीर रखने वाले एक न्योले ने वज्र सदृश एक शब्द किया। एक बार वज्रपात जैसा भयानक शब्द कर और उस शब्द से पशु पक्षियों को भयत्रस्त कर, वह न्योला मनुष्य जैसी बोली में बोला—हे नराधिपो ! आपने जो अश्वमेध यज्ञ किया है वह कुरुक्षेत्रवासी वदान्य एवं उञ्छवृत्तिवाले ब्राह्मण के सत्तूप्रस्थ के बराबर भी नहीं है। हे नरनाथ ! उस नेवले के यह वचन सुन वहाँ उपस्थित ब्राह्मणों को बड़ा आश्चर्य हुआ। तदनन्तर उन सब ने मिलकर उस नेवले से पूँछा, इस साधु समागम युक्त यज्ञ में तुम कहाँ से आये हो ? तुम्हारा बल, बुद्धि और अवलम्ब क्या है ? हम लोग किस प्रकार से तुम्हारा परिचय पा सकते हैं ? हमने शास्त्रोक्त विधि से और यज्ञीय सामग्री द्वारा, उत्तम रीति से इस यज्ञ को सुसम्पन्न किया है। फिर इसमें पूज्यों का पूजन किया गया है और मंत्र पढ़ पढ़ कर आहुतियाँ दी गयी हैं। फिर ईर्ष्या त्याग देने योग्य दान दिये गये हैं। अतः विविध प्रकार के दानों से ब्राह्मण तृप्त हुए हैं। इस यज्ञ में युद्ध से क्षत्रियगण और श्राद्ध कर्म से पितर तृप्त किये गये हैं। इसी प्रकार पालन से वैश्य, काम से वरस्त्रियाँ, कृपा प्रदर्शन तथा पारितोषिक प्रदान से शूद्र और दानशेष द्वारा साधारण जन परितुष्ट किये गये हैं। हमारे महाराज की वाह्याभ्यन्तरीय पवित्रता से बिरादरी वाले और नाते रिश्तेदार प्रसन्न हुए हैं। देवतागण पवित्र हव्य प्रदान से और शरणागत रक्षण द्वारा तृप्त किये गये हैं। तुमने इस यज्ञ में जो कुछ देखा सुना हो, उसे ब्राह्मणों के बीच ठीक ठीक वर्णन करो। क्योंकि तुम श्रद्धायुक्त वचन कहने वाले हो, बुद्धिमान् हो और तुम्हारा दिव्यरूप है। यहाँ आज तुम्हारा ब्राह्मणों से समागम हुआ है। अतः तुम जो कुछ कहोगे, उस पर हम लोगों को पूर्ण विश्वास होगा।

ब्राह्मणों के इन वचनों को सुन, न्योले ने हँस कर कहा—हे द्विजगण ! मैं न तो झूठ बोलता हूँ, न कभी अभिमान भरे वचन ही कहता हूँ। हे द्विजोत्तम ! मैंने जो कहा कि, तुम्हारा यह यज्ञ सत्तुप्रस्थ के तुल्य नहीं

हुआ—सो तुम लोग सुन ही चुके हो; किन्तु अब मैं तुम्हें विस्तार से इसका वर्णन सुनाता हूँ। तुम लोग सावधान हो कर सुनो। कुरुक्षेत्र वासी उञ्छ-वृत्ति से जीवन व्यतीत करने वाले—उस ब्राह्मण का अपूर्व वृत्तान्त जैसा मैंने देखा और समझा है और जिस प्रकार उस ब्राह्मण को स्त्री, पुत्र और पुत्र-वधू सहित स्वर्ग की प्राप्ति हुई और मेरा आधा शरीर सोने का हो गया—सो सब मैं तुम लोगों को सुनाता हूँ। उस वेदपाठी ब्राह्मण के अत्यल्प सत्तू प्रदान के अत्युत्तम फल का मैं वर्णन तुम लोगों को सुनाता हूँ।

कुरुक्षेत्र में बहुत से धर्मात्मा पुरुष रहा करते हैं। उन्हीं धर्मात्माओं में एक उञ्छवृत्ति ब्राह्मण था जो कपोतवृत्ति द्वारा अपना निर्वाह किया करता था। वह ब्राह्मण जितेन्द्रिय सदाचारी था और अपनी पत्नी, पुत्र तथा पुत्र-वधू सहित सदा तप में निरत रहता था। दिन के छठवें भाग में वह अपने आश्रित जनों के साथ भोजन करता था। एक बार उस प्रान्त में बड़ा विकट दुर्भिक्ष पड़ा। उसे जब भोजन सामग्री न मिलने लगी, तब दिन के छठवें भाग में भोजन करने का नियम भी वह पालन न कर सका।

हे द्विजो! उस समय खेतों में अन्न न होने के कारण उसके पास जो सञ्चित अन्न था, वह चुक गया। उसके पास अब कुछ भी आहारोपयोगी सामान न रहा। एक दिन वह अपने आश्रित जनों सहित क्षुधा से बहुत पीड़ित हुआ। शुक्लपक्ष था, किन्तु ठीक दोपहर को वह थका माँदा और भूखा प्यासा खेतों में जा वहाँ पड़े हुए अन्न के दाने बीन कर जमा करने लगा। किन्तु वहाँ इतने अन्न के दाने उसे न मिले, जो उसके परिवार की क्षुधा मिटाने के लिये पर्याप्त होते। अतः वह परिवार सहित भूख से तड़-फड़ाता रहा और उसने बड़े कष्ट से समय बिताया। अन्त में उसे अञ्जलि भर यव मिले। उन यवों को पीस कर उसके घर वालों ने सत्तू तैयार किये, तदनन्तर जप होमादि नित्य कर्मों से निश्चिन्त हो, जब वे लोग सत्तू को आपस में बाँट कर खाने को बैठे, तब एक अतिथि ब्राह्मण उस ब्राह्मण के निकट जा कर, बोला—मैं भूखा हूँ। मुझे भोजन कराओ।

हे द्विजसत्तम ! उस ब्राह्मण का मन बड़ा पवित्र था । अतः वह दान्त, श्रद्धावान्, दम-शम-युक्त, असूया, क्रोध, मत्सर, अभिमान और अहङ्कार से रहित था । उस साधु तपस्वी ब्राह्मण ने उस अतिथि को देख, श्रद्धापूर्वक उसे प्रणाम किया तथा उसका स्वागत कर, उसका गोत्रादि पूँछा । वे लोग आपस में एक दूसरे के गोत्रादि को जान, वह ब्राह्मण उस क्षुधार्त्त अतिथि को अपनी झोपड़ी के भीतर ले गया और उससे बोला—हे अनघ ! लीजिये यह पाद्य, अर्घ्य और आसन है । इस पर आप बैठें । यह मेरे उपार्जित (पवित्र धान्य) सत्तू हैं । आप कृपया इन्हें अङ्गीकार करें ।

हे राजेन्द्र ! उस द्विजवर्य ब्राह्मण के इन वचनों को सुन, उस अतिथि ने वे सत्तू खाये, किन्तु उतने सत्तू से उसका पेट न भरा । तब उस अतिथि को क्षुधार्त्त देख, उसके लिये वह और भोज्य पदार्थ ढूँढ़ने लगा । अपने पति को चिन्तित देख, उसकी पत्नी ने अपने पति से कहा—आप मेरे हिस्से के सत्तू भी अतिथि को खिला दें । ऐसा करने से अतिथि देव सन्तुष्ट हो अपने घर चले जाँयगे । किन्तु वह ब्राह्मण उस क्षुधार्त्ता अपनी पत्नी के हिस्से के सत्तू लेने के लिये राज़ी न हुआ । वह अपनी उस क्षुधार्त्ता वृद्ध पत्नी जिसके शरीर में चाम के नीचे केवल हड्डियाँ ही हड्डियाँ रह गयी थीं और जिसका शरीर मारे भूख प्यास के थरथर काँप रहा था, बोला—हे शोभने ! कीट, पतङ्ग, पशु पक्षी भी अपनी पत्नी की रक्षा तथा पालन पोषण किया करते हैं । अतः तुम्हें ऐसा कहना उचित नहीं । क्योंकि पुरुष को स्त्री पर सदा दया करनी चाहिये । धर्म, अर्थ, काम—समस्त सांसारिक कर्म, सेवा, कुल, सन्तति अपना तथा पुरखों का धर्म—ये सब पत्नी के अधीन हैं । जो पुरुष निज कर्त्तव्य- विमुख हो, अपनी भार्या की रक्षा नहीं करता, उस पुरुष की बड़ी बदनामी होती है और मरने पर वह नरकगामी होता है । उसका यश नष्ट होने के कारण उसे उत्तम लोकों की प्राप्ति नहीं होती ।

यह सुन उस तपस्विनी ब्राह्मणी ने अपने पति से कहा—हे द्विज ! हम दोनों का धर्म और अर्थ समान है । अतः आप मुझ पर प्रसन्न हों,

और मेरे हिस्से के सत्तू ले लें। सत्य, प्रीति, धर्म, स्वर्ग तथा पति का विश्वास—ये सब पातिव्रत धर्म से स्त्रियों को प्राप्त होते हैं। स्त्री के लिये उसके माता पिता और पति परम देवता हैं। पति के सन्तुष्ट रहने ही से स्त्रियों को रतिसुख तथा पुत्र रूपी फल प्राप्त होता है। आप मेरा पालन करने से मेरे पति और मेरा भरण करने से आप मेरे भर्त्ता हैं। पुत्र प्रदान करने के कारण आप मेरे लिये वरदाता हैं। अतः आप मेरे हिस्से के सत्तू अतिथि को दे दें। आप वृद्ध, क्षुधार्त्त, अत्यन्त दुर्बल, उपवास करते करते परिश्रान्त हो अतिकृश हो रहे हैं।

अपनी पत्नी के इन वचनों को सुन उस तपस्वी बूढ़े ब्राह्मण ने अपनी पत्नी के हिस्से के सत्तू ले जा कर उस अतिथि को दिये और कहा— हे द्विज! आप इन सत्तुओं को पा लें।

यह सुन अतिथि ब्राह्मण ने वे भी सत्तू खा लिये, किन्तु तब भी उसकी भूख न मिटी। यह देख उस उञ्छवृत्ति ब्राह्मण को बड़ी चिन्ता हुई।

पिता को चिन्तित देख, उसके पुत्र ने कहा—हे सत्तम! मैं सुकृत समझ उस अतिथि को अपने हिस्से के सत्तू देता हूँ। आप उसे यह सत्तू खिला दें। क्योंकि मेरा यह कर्त्तव्य है कि, मैं आपका प्रतिपालन करूँ। साधु पुरुष अपने बूढ़े पिता का प्रतिपालन करना अपना कर्त्तव्य समझते हैं।

तीनों लोकों में यह जनश्रुति प्रचलित है कि, वृद्ध पिता का प्रतिपालन करना पुत्र का परम कर्त्तव्य है। प्राणों की रक्षा कर के आप तप कर सकते हैं। क्योंकि देहधारियों के शरीरों में प्राण ही परम धर्म रूप से रहता है।

पिता ने कहा—हे वत्स! तुम भले ही सहस्र वर्ष के हो किन्तु मैं तो तुम्हें बालक ही समझूँगा। पिता, पुत्र को उत्पन्न कर, उससे कृतकृत्य हुआ करता है। हे बेटा! मुझे यह मालूम है कि, भूख बालकों को बहुत सताती है। मैं तो अब बूढ़ा हो गया हूँ। अतः मैं तो भूख को सह लूँगा। किन्तु तुम इन सत्तूओं को खा डालो, जिससे तुम्हारे निर्बल शरीर में कुछ बल

आ जाय । मेरा शरीर जीर्ण हो गया है—अतः भूख मुझे नहीं सता सकती । मुझे तप करते बहुत दिन बीत गये । अतः मुझे अब मरने का भी भय नहीं है ।

पुत्र बोला—ऐसी जनश्रुति है कि, पुत्र अपने पिता को पुन्नाम नरक से बचाता है । मैं आपका पुत्र हूँ । अतः जब आत्मा पुत्र रूप से उत्पन्न होता है ; तब आप ही इस लोक में अपना परित्राण कीजिये ।

पिता ने कहा—बेटा ! तुम रूप, शील और इन्द्रिय दमन में मेरे तुल्य हो । मैं विविध प्रकार से तुम्हारी परीक्षा ले चुका हूँ । अतः मैं तुम्हारे बाँट का सत्तू लिये लेता हूँ । यह कह उस ब्राह्मण ने अपने पुत्र के बाँट के सत्तू भी उठा कर, उस अतिथि ब्राह्मण को खिला दिये । किन्तु तो भी उस अतिथि का पेट न भरा । यह देख वह उञ्छवृत्ति ब्राह्मण बहुत लजाया ।

यह देख उसकी पुत्रवधू प्रसन्न चित्त से अपने बाँट के सत्तू, अपने ससुर के सामने रख बोली—आपके सन्तान से मेरे सन्तान होगी । आप ये सत्तू ले जा कर उस अतिथि ब्राह्मण को खिला दो । आपके आशीर्वाद से मुझे अक्षय्य लोक प्राप्त होंगे । मनुष्य जिन लोकों में जा—शोक चिन्ता से छूट जाते हैं, वे लोक पौत्र द्वारा प्राप्त होते हैं । धर्म, अर्थ, काम—ये त्रिवर्ग; दक्षिणाग्नि, गार्हिपत्य और आहवनीय—ये तीनों अग्नियाँ—अक्षय्य स्वर्ग-वास देने वाले हैं । पुत्र, पौत्र और प्रपौत्र ये तीनों भी वैसे ही हैं । सुनती हूँ पिता को पुत्र पितृऋण से मुक्त करता है । पुरुष सदा पुत्र और पौत्र के सहारे उत्तम लोकों के सुख भोगा करता है ।

ब्राह्मण ने कहा—हे सुव्रते ! तुम्हारे शरीर को वातातप से विशीर्ण तथा विवर्ण एवं तुम्हें क्षुधातुर तथा हतचेतन देख मैं किस प्रकार तुम्हारे बाँट के सत्तू ले, धर्म का उपघातक बन सकता हूँ । हे कल्याणी ! तुम मुझसे ऐसी बात मत कहो । हे सुभगे ! मैं, व्रत करने वाली, भीतर बाहिर शुद्ध, सुन्दर स्वभाव वाली तपश्चर्या से युक्त, दुःख सहित अपना निर्वाह करने वाली तुझको क्यों कर, भूखी प्यासी देख सकता हूँ ।

बहू ने कहा—हे प्रभो ! आप मेरे गुरु के भी गुरु होने से परम देवता स्वरूप हैं । अतः आप मेरे बाँट के सत्तू ले लें । मेरा शरीर, मेरे प्राण और मेरा धर्म गुरुसेवा में अर्पित है । अतः आपके अनुग्रह से मुझे शुभ लोक प्राप्त होंगे । आप मुझे अपना दृढ़ भक्त जान मेरे बाँट के सत्तू ले लें ।

ससुर बोले—हे साध्वी ! तुम पतिव्रता हो । तुम्हारा श्रेष्ठ स्वभाव है और तुम सच्चरित्रा हो । तुम्हारी अपने गुरुजनों में आस्था है । अतः मैं तुम्हारे बाँट के सत्तू ले लूँगा । बेटी ! तुम इस योग्य नहीं कि, तुम्हें धोखा दिया जाय । यह कह उस ब्राह्मण ने वधू के बाँट के सत्तू भी उठा कर, उस अतिथि को खिला दिये ।

तदनन्तर वह अतिथि, उस ब्राह्मण के ऐसे आतिथ्य से उस पर प्रसन्न हुआ । उसने हर्षित हो, उस ब्राह्मणश्रेष्ठ से कहा—उस समय मनुष्य शरीरधारी धर्मस्वरूप उस वाग्मी द्विजवर अतिथि ने ब्राह्मण से कहा—हे द्विजोत्तम ! न्याय से उपार्जित एवं यथाशक्ति दिये हुए शुद्ध दान से तुम्हारे ऊपर मैं परम प्रसन्न हुआ हूँ । सुरलोक में स्वर्गवासी तुम्हारे इस दान को अद्भुत दान बतला घोषणा कर रहे हैं । यह देखिये, आकाश से पुष्पवृष्टि हो रही है । ब्रह्मर्षि, देवर्षि, गन्धर्व तथा देवदूत, देवताओं को आगे कर, स्तुति करते हुए, आपके इस दान से आश्चर्यचकित हो रहे हैं । हे द्विज ! आप अब अविलम्ब सुरपुर को पधारें । ब्रह्मलोकगामी विमान पर बैठे ब्रह्मर्षि आपके दर्शन करने को लालायित हो रहे हैं । पितृलोकवासी पितृगण आपके द्वारा तर गये । बहुत लोग कई युगों तक ब्रह्मचर्य, दान, यज्ञ, तथा तप करके भी स्वर्ग प्राप्त नहीं कर पाते । हे द्विज ! आपने परम श्रद्धा से असङ्कर धर्माचरण कर जो तप किया है, उसके फल से आप स्वर्ग में जाँय । हे ब्राह्मण सत्तम ! जब शुद्ध चित्त से आपने यह दान दिया है, तब आपके इस दान से देवगण परम सन्तुष्ट हो गये हैं । क्षुधा, प्रज्ञा तथा धर्मबुद्धि को नष्ट करने वाली है । क्षुधा से युक्त ज्ञान भी धैर्य को त्याग देता है । किन्तु आपने ऐसे कष्टप्रद समय में भी निज कर्त्तव्य द्वारा स्वर्ग को जीत लिया है । अतः मुझे

जान पड़ता है कि, जो लोग भूख को जीत सकते हैं, वे निश्चय ही स्वर्ग को भी जीत सकते हैं । जब कोई पुरुष कोई वस्तु दान करना चाहता है, तब उसका धर्म कभी भी अवसन्न नहीं होता । आपने इसी विचार से पुत्र कलत्र का अनुराग त्याग कर और धर्म को सब से बड़ा जान, तृष्णा को तुच्छ समझा है । मनुष्यों का द्रव्यागम अति सूक्ष्म है । सत्पात्र को दान देना उससे भी सूक्ष्म है । सत्पात्र को दान देने की अपेक्षा, काल, काल की अपेक्षा श्रद्धा और श्रद्धा की अपेक्षा स्वर्गद्वार अत्यन्त सूक्ष्म हैं । इसीसे जो लोग मोह में फँस जाते हैं, वे स्वर्ग का दर्शन नहीं कर पाते । स्वर्गद्वार की जो अर्गला (रोक) है, उसका उत्पत्ति स्थान लोभ है । वह अर्गला, इन्द्रिय जन्य विषयों के अनुराग से रक्षित एवं दुष्प्राप्य है । अतः स्वर्ग की प्राप्ति उन्हीं लोगों को होती है जो क्रोध और इन्द्रियों को जीत लेते हैं । जो ब्राह्मण अपनी शक्ति के अनुसार दान देते हैं, अर्थात् एक हज़ार की हैसियत का आदमी सौ दान में देता है और सौ की हैसियत वाला दस दान में देता है, अथवा अपनी शक्ति के अनुसार जो जल का ही दान करता है—वे सब लोग समान फल पाते हैं । हे विप्र ! अकिञ्चन राजा रन्तिदेव ने शुद्ध चित्त से जलदान दे कर ही स्वर्गलोक पाया था । न्याय से प्राप्त एवं श्रद्धा के साथ दिये हुए अत्यल्प पदार्थ से धर्मदेव जैसे सन्तुष्ट होते हैं, वैसे वह अश्रद्धा से दिये हुए महादान से सन्तुष्ट नहीं होते । राजा नृग ने ब्राह्मणों को हज़ारों गायें दान में दीं; किन्तु अनजान में दूसरे की एक गाय दान कर दी । इससे उन्हें नरक भोगना पड़ा । हे सुव्रत ! उशीनर पुत्र राजा शिवि ने अपने शरीर का माँस दान कर, स्वर्ग में जा विविध सुख भोगे थे । हे विप्र ! यथारीति सञ्चित विविध यज्ञ फल, तथा निज शक्त्यानुसार उपार्जित पुण्य ही साधु जनों का वैभव है । दान देने के समय क्रोध करने से पुरुष के दान का फल नष्ट होता है । लोभ से स्वर्गगति का रोध होता है । न्यायवृत्त और दानवित् मनुष्य केवल तपस्या ही से स्वर्ग भोग करते हैं । किन्तु अन्य लोग अनेक दक्षिणा युक्त राजसूय प्रभृति विविध यज्ञानुष्ठान कर के भी, स्वर्गसुख नहीं

भोग पाते। हे विप्र ! आपने सत्तूप्रस्थ से जो अक्षय्य ब्रह्मलोक उपार्जित किया है वह आपको सैकड़ों अश्वमेध यज्ञ करने पर भी नहीं मिल सकता। हे द्विजवर ! आप निष्पाप हो गये हैं। अतः आज से आप मुख्य समझे जाँयगे। यह दिव्य विमान आ गया है। आप इस पर सवार हो बेरोक-टोक ब्रह्मलोक को चले जाइये। आप इस पर आनन्द से सवार हो लें। हे द्विजवर ! मैं धर्म हूँ। आप और दर्शन कर लें। आपने अपने शरीर को शुद्ध किया है। इससे आपकी कीर्ति लोकों में व्याप्त होगी। अब आप अपनी पत्नी पुत्र और पुत्रवधू सहित इस विमान पर सवार हो सुरपुर को चले जाइये।

धर्म के इस प्रकार कहने पर, वह द्विजश्रेष्ठ अपनी भार्या, अपने पुत्र और अपनी पुत्रवधू सहित उस दिव्य विमान में बैठ सुरपुर को सिधारा। उसके जाने के बाद मैं बिल के बाहिर आया। सत्तू की सुगन्धि, जल की तरी, दिव्य पुष्पों के मर्दन और साधुओं के सत्तुए के कण से और उस ब्राह्मण के तप से मेरा सिर सोने का हो गया। उस ब्राह्मण के तप का यह महत् फल तो देखो। मैं बड़े उत्साह के साथ प्रसन्न होता हुआ, इस इच्छा से कि, मेरा बाक़ी का आधा अंग भी सोने का हो जाय ; बारंबार तपोवनों और यज्ञों में जाया करता हूँ। तदनुसार महाराज युधिष्ठिर के यज्ञ का वृत्तान्त सुन मैं बड़ी आशा लगा यहाँ भी आया था। किन्तु यहाँ भी मेरा आधा शरीर सोने का न हुआ। इसीसे मैंने हँस कर कहा था कि, तुम्हारा यह यज्ञ सब प्रकार सत्तूप्रस्थ के समान नहीं है। क्योंकि उस सत्तूप्रस्थ का कण मात्र खा मेरा सिर सोने का हो गया था। इसीसे मेरी समझ में यह यज्ञ उस सत्तूप्रस्थ के समान नहीं है।

इस प्रकार कह वह न्योला उन सब के देखते ही देखते अदृश्य हो गया। तब ब्राह्मण लोग भी अपने अपने घरों को चले गये।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय ! उस महायज्ञ में, जो अपूर्व घटना हुई थी—वह सब मैंने आपको सुनायी। आपको उस यज्ञ के विषय में

किसी प्रकार का आश्चर्य न होना चाहिये। तपोबल ऐसा है जिसके प्रभाव से असंख्य ऋषियों ने स्वर्ग प्राप्त किया है। प्राणीमात्र में अद्रोह, सन्तोष, शील, आर्जव, तप, दम, सत्य और दान—ये सब साधुसम्मत कर्म हैं, और ये सब स्वर्ग देने वाले हैं।

इक्यानवे का अध्याय

यज्ञफल

राजा जनमेजय ने कहा—हे ब्रह्मन्! जब राजा लोग यज्ञ, महर्षिगण तप और ब्राह्मण लोग शम, दम तथा शान्ति करने में समर्थ हैं; तब मेरी समझ में ऐसा निश्चय होता है कि, इस लोक में यज्ञ के फल के समान और कुछ भी नहीं है। हे द्विजसत्तम! अनेक राजाओं ने अनेक यज्ञ करते हुए इस लोक में परम यश पा वे परलोक तथा सुरपुर में सिधारे हैं। महा-तेजस्वी देवराज इन्द्र को दक्षिणायुक्त अनेक यज्ञ करने पर ही अखिल सुर-राज्य मिला है। हे द्विजवर! समृद्धि और विक्रम में देवराज इन्द्र के समान भीमार्जुन सहित महाराज युधिष्ठिर ने जो अश्वमेध नामक महायज्ञ किया था; उस यज्ञ को उस नेवले ने क्यों सत्तूप्रस्थ से अपकृष्ट बतलाया?

वैशम्पायन जी बोले—जनमेजय! सुनिये मैं अब आपको यज्ञ की मुख्य विधि और उसका फल सुनाता हूँ।

पहले यज्ञकर्त्ता देवराज के महायज्ञ में, ऋत्विजों के कार्य में व्यग्र रहने पर, उस यज्ञ में अग्नि आदि देवगण बुलाये गये और परमर्षिगण उपस्थित हुए। तदनन्तर जब पशुघात का समय उपस्थित हुआ; तब ऋषियों ने पशुओं को दीनभाव युक्त देख, उन पर दयालु हो, इन्द्र से जा कर कहा—यज्ञ की यह विधि शुभ नहीं है। हे इन्द्र! आपकी इच्छा महान् धर्मफल सम्पादन करने की है। किन्तु आप धर्म का रहस्य नहीं जानते।

पशुवध कर यज्ञ करना विधि-विहित कर्म नहीं है। जब अहिंसा को परम धर्म माना है, तब हिंसायुक्त यह यज्ञ धर्मयुक्त कर्म कैसे कहा जा सकता है? अतः आपका यह यज्ञ का आयोजन धर्म का घात करने वाला है। हे सुरराज! यदि आप धर्मफल सम्पादन करने के अभिलाषी हैं, तो ऋत्विजों को उचित है कि, वे वेदोक्तविधि से यज्ञकर्म करें। उस विधिदृष्टयज्ञ कर्म के सहारे आप उत्तम पुण्य फल पा सकेंगे। हे सहस्राक्ष! आप यज्ञ में हिंसा कर्म को छोड़ कर तीन वर्ष के पुराने अन्न से यज्ञ करें। ऐसा कर्म ही महाफलजनक है।

इन्द्र ने मान और मोह के वश में हो कर, उन तत्वदर्शी ऋषियों का कहना न माना। साथ ही यज्ञ में तपस्वियों में आपस ही में हिंसा अहिंसा को ले, झगड़ा उठ खड़ा हुआ। कोई कहता पशु मार कर यज्ञ करना ठीक है, कोई कहता अन्न से हवन करना चाहिये। तब इन्द्र को साथ ले ऋषि-गण राजा वसु के निकट गये और उनसे कहा—हे महाभाग! यज्ञ सम्बन्धी वेदाज्ञा क्या है? यज्ञ पशु मार कर, अथवा अन्न या रस (घृतादि) से करना ठीक है?

राजा वसु ने ऋषियों के प्रश्न को सुन और बिना सोचे विचारे ही कह दिया कि, समय पर जो मिल जाय उसीसे यज्ञ करे। चेदिराज राजा वसु ने जब इस प्रकार ऊटपटाङ्ग उत्तर दिया, तब वह रसातल में भेजा गया। अतः ब्रह्मा जी को छोड़ बहुज्ञ लोगों ने भी इस संशयग्रस्त विषय पर अपना मत प्रकट न किया। अल्पज्ञों की तो बात ही क्या है। पाप करते करते जिसकी बुद्धि बिगड़ गयी है, यदि वह दान दे तो भी उसके दान का फल नष्ट हो जाता है। अधर्मी, दुरात्मा एवं हिंसक पुरुष की इस लोक और परलोक में कीर्ति नहीं होती। जो मूर्ख धर्माभिशङ्की पुरुष निरन्तर अन्यायोपगत वस्तुएँ के सहारे यज्ञ करता है, उसे उस यज्ञ का फल नहीं मिलता। जो धर्म में सन्देह करने वाला अज्ञानी मनुष्य अनीति से प्राप्त हुए धन को सदैव यज्ञों में व्यय करता है, उसे उन यज्ञों का फल नहीं

मिलता। जो पापात्मा, नीच पुरुष धर्म बेचने वाला है और संसार को अपने धर्मात्मा होने का विश्वास दिलाने के लिये, वेदपाठी ब्राह्मणों को कुछ दान दे दिया करता है, और जो निरङ्कुश ब्राह्मण माया ममता में फँस पाप कर्मों द्वारा धनोपार्जन करता है-उसकी सदा बुरी गति होती है। धन के सञ्चय में प्रवृत्तचित्त पुरुष भी लोभ और मोह में पड़ जाता है। अपवित्र एवं पापी से सब लोग भयभीत होते हैं। जो मनुष्य इस प्रकार धन को पा कर मोह से दान करता है अथवा यज्ञ करता है, तो पाप की आमदनी से प्राप्त धन द्वारा किये हुए उस दान अथवा यज्ञ का फल परलोक उसे नहीं होता। तपोधन एवं धर्मात्मा पुरुष अपनी सामर्थ्य के अनुसार मूल, फल, शाक जलादिक का सत्पात्र को दान दे स्वर्ग प्राप्त करते हैं। यही महायोग धर्म कहलाता है। परन्तु दान, समस्त प्राणियों के विषय में दया, ब्रह्मचर्य, सत्य, अनुक्रोश, धृति, क्षमा—ये सब सनातन धर्म के सनातन मूल हैं। इतिहास के अनुसार विश्वामित्रादि का वृत्तान्त इसका समर्थन करता है। विश्वामित्र, असित, राजा जनक, कक्षसेन, अरिष्टसेन, सिन्धु द्वीप आदि अनेक राजा लोग सत्य और न्याय से प्राप्त हुए धन के दान से परम सिद्धि को प्राप्त करने में समर्थ हुए थे। हे भारत! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा अन्यान्य तपोनिष्ठ पुरुष, दान धर्मादि के सहारे पवित्र हो कर, स्वर्ग में जाया करते हैं।

[नोट—ऋषियों के इस विवादग्रस्त विषय का कि, पशुवध कर के यज्ञ करें अथवा अन्न से यज्ञ करें—उत्तर इस अध्याय में कुछ भी नहीं है। अतः आगे का अध्याय देखना चाहिये।]

बानवे का अध्याय

यज्ञ में हिंसा अहिंसा की मीमांसा

जनमेजय ने पूँछा—भगवन्! यदि धर्मतः प्राप्त धन का दान करने ही से स्वर्ग मिलता है, तो आप इस विषय को विशेष रीति से मेरे सामने

वर्णन करें। हे द्विजवर ! आप ही इस विषय को कह भी सकते हैं। हे ब्रह्मन् ! उस उञ्छवृत्ति ब्राह्मण ने सत्तूदान से जो महत् फल प्राप्त किया सो इसमें मुझे कुछ भी सन्देह नहीं है । यह ठीक ही है। किन्तु यज्ञ सम्बन्ध में हिंसा अहिंसा का निश्चय करने का क्या उपाय है—सो आप भली भाँति वर्णन करें।

वैशम्पायन जी बोले—हे अरिंदमन ! इस प्रसङ्ग में पण्डित लोग उदाहरण स्वरूप उस घटना का उल्लेख करते हैं, जो अगस्त्य जी के महायज्ञ में हुई थी।

हे महाराज ! पूर्वकाल में सर्वभूतहितैषी एवं महातेजस्वी अगस्त्य मुनि ने द्वादशवर्ष व्यापी यज्ञ दीक्षा ग्रहण की। उनके यज्ञ में होता का काम ऐसे अग्नि तुल्य ऋषियों के हाथ में था, जो फलमूलाहारी, अश्मकुट्ट और मरीचिपा थे। उस यज्ञ में परिघृष्टिक, वैघसिक, अप्रक्षाल आदि यति तथा भिक्षुक भी उपस्थित हुए थे। वे सब बड़े धर्मात्मा जितक्रोध, जितेन्द्रिय, दान्त, हिंसा-दम्भ-वर्जित, पवित्रवृत्ति-स्थित और इन्द्रियों द्वारा अपराजित थे। ऐसे लोगों ने उस यज्ञ में भाग लिया था। उस यज्ञ में अगस्त्य भगवान् ने अपने सामर्थ्यानुसार अन्न एकत्र किया था। हे भरतसत्तम ! वह यज्ञ उसी विधि से किया गया था, जिस विधि से यज्ञ होना चाहिये। उस यज्ञ के बाद अन्य अनेक मुनियों ने उसी विधि से बड़े बड़े यज्ञ किये। हे भरतर्षभ ! अगस्त्य जी के उस यज्ञ के होने पर, इन्द्र ने जलवृष्टि नहीं की। तब उस यज्ञ में भावितात्मा मुनियों में यह चर्चा छिड़ी कि, अगस्त्य मुनि मत्सरता त्याग अन्नदान कर रहे हैं, तिस पर भी बादल जलवृष्टि नहीं करते तो अन्नादि कैसे उत्पन्न होंगे ? अगस्त्य मुनि का यह यज्ञ तो बारह वर्ष तक चलेगा। यदि बारह वर्षों तक वर्षा बंद रही तो बड़ा अनर्थ होगा। अतः आप लोग अगस्त्य जी पर अनुग्रह कर, इस विषय पर विचार करें।

जब महर्षियों ने इस प्रकार कहा—तब अगस्त्य जी ने विनम्रभाव से मुनियों से कहा—यदि इन्द्र ने बारह वर्षों तक जलवृष्टि न की तो

मैं मानस यज्ञ करूँगा। क्योंकि इसकी यही सनातन विधि है। हे ऋषिगण ! यदि इन्द्र ने बारह वर्षों तक जल न बरसाया तो मैं स्पर्श यज्ञ करते हुए उपाहृत द्रव्यों को व्यय किये बिना ही देवताओं को सन्तुष्ट करूँगा। क्योंकि यही सनातन विधि है। यदि इन्द्र बारह वर्षों तक जल न बरसावेंगे तो मैं ध्यान द्वारा द्रव्यों को ला, व्रतातिरिक्त अन्य यज्ञ सम्पन्न करूँगा। मैं जो कई वर्षों से अन्न से यह यज्ञ कर रहा हूँ, सो इसमें भी कुछ बाधा न पड़ेगी। क्योंकि मेरे इस यज्ञ को कोई भी व्यर्थ नहीं कर सकता। यदि इन्द्र ने वर्षा न की तो इन्द्र की गणना देवताओं में न होगी। यदि उसने जान बूझ कर मेरी अभ्यर्थना पूरी न की तो मैं स्वयं इन्द्र बन कर, प्रजाजनों को जीवित रखूँगा। जिस समय उन लोगों को जिस भोज्य पदार्थ की आवश्यकता होगी, उस समय उन्हें वही पदार्थ मिल जाया करेगा। मैं बारंबार ऐसी ही विशेषताएँ करूँगा। पृथिवी मण्डल पर जितनी वस्तुएँ हैं और सोना है वे सब मेरे पास आ जाय। तीनों लोकों में जो वस्तु हैं, वे सब अपने आप मेरे पास चली आवें। दिव्य अप्सराएँ, गन्धर्व, किन्नर और विश्वावसु प्रभृति सब प्राणी मेरे यज्ञ में आवें। उत्तर कुरु देश में जो समस्त धन विद्यमान है, वह सब यहाँ आजाय। स्वर्गस्थित प्राणी तथा साक्षात् धर्म स्वयं चला आवे।

जब अगस्त्य जी ने यह कहा, तब उस प्रदीप्त अग्निसदृश अगस्त्य मुनि के तपः प्रभाव से उनके कथनानुसार ही हुआ। उस चमत्कार को देख समस्त उपस्थित मुनि गण विस्मित हुए और कहने लगे।

ऋषियों ने कहा—हे मुने ! आपके वचन सुन हमें बड़ी प्रसन्नता प्राप्त हुई है, किन्तु यह हम नहीं चाहते कि, तपस्या का फल बरबाद कर डाला जाय। हम न्यायानुसार तपोबल से यज्ञ कर, सन्तुष्ट होना चाहते हैं। हम लोग यज्ञ, दीक्षा, होम तथा अन्य जिस कार्य को करने की चेष्टा करते हैं, न्यायतः उपार्जित वस्तुओं का भोजन कर, उसी कार्य में निरत रहेंगे। हम लोग ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर न्यायानुमोदित देवताओं की प्रार्थना करते

हैं। तदनन्तर न्यायानुसार ही हम लोग घर त्यागते हैं। और धर्मविधि से तपस्या करते हैं। हे प्रभो! आप यज्ञ में अहिंसा पर ज़ोर दिया करते हैं, इसीसे आपकी बुद्धि पूर्णतः हिंसा-विहीन है। हे द्विजसत्तम! अतएव इस बात से हम बहुत प्रसन्न हैं और यज्ञ पूर्ण होने पर ही हम यहाँ से जाँयगे।

जब उन लोगों में इस प्रकार वार्तालाप हो ही रहा था कि, इतने में इन्द्र ने, उनके तपोबल को देख, जल वृष्टि की। हे जनमेजय! जब तक अगस्त्य जी का यज्ञ हुआ, तब तक इन्द्र ने यथेष्ट जल वृष्टि की। फिर बृहस्पति को आगे कर स्वयं देवराज इन्द्र, अगस्त्य के निकट गये और अगस्त्य जी को मनाया; फिर यज्ञ समाप्त होने पर अगस्त्य जी ने परम प्रसन्न हो कर, उन महामुनियों की विधि पूर्वक पूजा कर, उन्हें बिदा किया।

जनमेजय बोले—हे ब्रह्मन्! जिस काञ्चनशिरा नकुल रूपी प्राणी ने मनुष्य की बोली में वे बातें कही थीं, वह वास्तव में कौन था? मुझसे उसका वृत्तान्त सविस्तर कहिये। मैं उसे सुनना चाहता हूँ।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! तुमने पहले मुझसे यह बात नहीं पूँछी थी, इसीसे मैंने इसका पहले वर्णन भी नहीं किया। किन्तु अब तुमने जानने की इच्छा प्रकट की है—अतः मैं कहता हूँ कि, वह नकुल कौन था और किस प्रकार वह मनुष्य जैसी बोली बोलता था। सुनो। जब जमदग्नि ने श्राद्ध करने का सङ्कल्प किया; तब होमधेनु उनके निकट आयी। जमदग्नि ने स्वयं उसका दूध दुहा। दूध दुह, उन्होंने उसे एक पवित्र स्थान पर, नये और दृढ़ बर्तन में भर कर रख दिया। उस समय क्रोध में भर धर्म ने उस बर्तन को उठा दूध पी डाला। धर्म ने ऐसा इस लिये किया कि, वे देखें कि मुनिवर उनके ऐसा करने पर क्या करते हैं? क्रोध आने योग्य इस काम को देख कर भी जमदग्नि ने क्रोध न किया। उस समय क्रोध रूप धारी धर्म, जमदग्नि से पराजित हो और ब्राह्मण का रूप धारण कर, उनसे बोला—हे ब्रह्मन्! मैं तुमसे पराजित हुआ। हे ऋषिश्रेष्ठ! लोगों में

प्रचलित यह प्रवाद कि भृगुवंशी क्रोधी होते हैं, मिथ्या है। तुम महात्मा हो और बड़े क्षमावान् हो। अतः मैं आज से आपकी वश्यता स्वीकार करता हूँ। हे साधु! मैं आपके तपःप्रभाव से डरता हूँ। अतः आप मुझ पर प्रसन्न हों।

जमदग्नि बोले—हे क्रोध! आपके आज मुझे प्रत्यक्ष दर्शन हो गये। आपने मेरा कुछ भी बिगाड़ नहीं किया। अतः मैं आप पर अप्रसन्न नहीं हूँ। आप निश्चिन्त हो कर जाइये। मैंने पितरों के उद्देश्य से दूध का जो सङ्कल्प किया था, सो इसका रहस्य आपको पितरों के पास जाने ही से विदित हो सकेगा। अब आप जाँय।

जमदग्नि के इन वचनों को सुन क्रोध भयभीत हो, वहीं अन्तर्धान हो गया। उसने पितरों के शाप से न्योले की योनि पायी। जब उस शाप से छूटने के लिये उसने पितरों से अनुनय विनय की; तब पितर बोले—तू धर्म की निन्दा कर के इस शाप से छुटकारा पावेगा। उनके इस बचन को सुन न्योले का शरीर धारण कर, क्रोध धर्मारण्य में घूमता फिरता, उस यज्ञ में उपस्थित हुआ और उसने युधिष्ठिर के यज्ञ की निन्दा कर, ब्राह्मण के सत्तूप्रस्थ से उसे अपकृष्ट बतलाया। इस प्रकार धर्म की निन्दा करने से वह पितरों के शाप से छूट गया। उसने धर्मराज युधिष्ठिर से कहा—हे युधिष्ठिर! आप साक्षात् धर्म हैं। इस प्रकार युधिष्ठिर के यज्ञ में यह विस्मयोत्पादिनी घटना घटी। फिर हम लोगों के देखते ही देखते वह न्योला अन्तर्धान हो गया।

आश्वमेधिक पर्व समाप्त हुआ

हिन्दी

महाभारत

आश्रमवासपर्व

लेखक
चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्मा

प्रकाशक
रामनरायन लाल
पब्लिशर और बुकसेलर
इलाहाबाद

१९३०

आश्रमवासपर्व

विषय-सूची

आश्रमवासपर्व

प्रथम अध्याय

धृतराष्ट्र और गान्धारी

श्रीमन्नारायण, नरोत्तम नर और सरस्वती देवी को प्रणाम कर, जय नामक इतिहास को पढ़े।

जनमेजय बोले—हे द्विजसत्तम! मेरे पितामह महात्मा पाण्डवों ने राज्य पा कर महाराज धृतराष्ट्र के साथ कैसा व्यवहार किया? मित्रों और पुत्रों के नष्ट हो जाने पर, ऐश्वर्यहीन महाराज धृतराष्ट्र निरावलंब हो गये थे। अतः धृतराष्ट्र तथा उनकी यशस्विनी पत्नी गान्धारी की क्या दशा हुई? मेरे पूर्वज पाण्डवों ने कितने दिनों राज्य किया? ये सब वृत्तान्त आप मुझे सुनावें।

श्रीवैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! शत्रुओं के मारे जाने पर, पाण्डवों ने राज्य पा कर, धृतराष्ट्र के आधिपत्य में स्वयं राज्य किया। विदुर, सञ्जय और वैश्या गर्भसम्भूत युयुत्सु आदि सब लोग धृतराष्ट्र की सेवा किया करते थे। इस प्रकार पन्द्रह वर्षों तक पाण्डवों ने महाराज धृतराष्ट्र से पूँछ और उनके आदेशानुसार राजकाज किया। पाण्डव नित्य महाराज धृतराष्ट्र के पास जाते और उनके चरणों में सीस नवा उनको प्रणाम करते थे। उधर कुन्ती सदा गान्धारी की सेवा किया करती थी और गान्धारी जो कहती उसीके अनुसार कुन्ती कार्य किया करती थी। द्रौपदी, सुभद्रा आदि पाण्डवों की स्त्रियाँ भी महाराज धृतराष्ट्र और गान्धारी की सेवा शुश्रूषा में

लगी रहती थीं। युधिष्ठिर महाराज धृतराष्ट्र के लिये राजोचित बहुमूल्य वस्त्राभरण, शय्या तथा विविध भाँति के भक्ष्य भोज्य पदार्थों की यथा-समय व्यवस्था किया करते थे। उधर कुन्ती भी गान्धारी को अपनी पूज्या मान, उनके लिये आवश्यक वस्तुओं की व्यवस्था कर दिया करती थी। जिन महाराज धृतराष्ट्र के समस्त पुत्र युद्ध में मारे जा चुके थे; उनकी सेवा में विदुर, सञ्जय और युयुत्सु सदा संलग्न रहा करते थे। द्रोणाचार्य के साले एवं ब्राह्मणों में श्रेष्ठ धनुर्धर कृपाचार्य की भी धृतराष्ट्र के प्रति प्रगाढ़ प्रीति थी। महर्षि वेदव्यास जी धृतराष्ट्र को देवताओं, ऋषियों, पितरों तथा राक्षसों के विविध उपाख्यान सुनाया करते थे और उन्हींके निकट रहा करते थे।

विदुर जी के नीतिकौशल से थोड़े ही धनव्यय से सामन्तों द्वारा धृत-राष्ट्र के अनेक अभीष्ट पूर्ण हो जाते थे। पाण्डवों ने महाराज धृतराष्ट्र को पूर्ण स्वातन्त्र्य दे रखा था। वे जिसे चाहते कैद करते थे और जिस कैदी को चाहते छोड़ देते थे। युधिष्ठिर उनके कार्यों में हस्तक्षेप नहीं करते थे। युधिष्ठिर अम्बिकानन्दन धृतराष्ट्र की विहार-यात्राओं का समुचित प्रबन्ध किया करते थे। जो आरालक (शाक भाजी बनाने वाले), सूपकार (रसोइया), और रागखाण्डूक (सोंठ टिकिया आदि की चाट बनाने वाले) (दुर्योधन के समय में) धृतराष्ट्र के पास थे, वे सब नौकर चाकर अब भी ज्यों के त्यों उनकी सेवा के लिये नियत थे। पाण्डव नित्य नये नये बढ़िया वस्त्र और नित्य नयी नयी फूल-मालाएँ महाराज धृतराष्ट्र को भेंट किया करते थे।

मैरेय नाम्नी मदिरा, माँस, मत्स्य तथा अन्य भक्ष्य भोज्य पदार्थ पूर्व-वत् महाराज धृतराष्ट्र के थाल में परोसे जाते थे। महाराज धृतराष्ट्र के निकट जो राजा लोग आते उनकी ख़ातिरदारी पहले जैसी ही अब भी की जाती थी। उधर रनवास में कुन्ती, द्रौपदी, यशस्विनी सुभद्रा, नागकन्या उलूपी, चित्राङ्गदा और जरासन्ध की बेटी के अतिरिक्त अन्य बहुत सी स्त्रियाँ महा-रानी गान्धारी की परिचर्या में रहती थीं। सारांश यह कि, पाण्डवों ने महा-

राज धृतराष्ट्र की और पाण्डवों की माता कुन्ती तथा द्रौपदी आदि स्त्रियों ने महारानी गान्धारी की ऐसी सेवा शुश्रूषा की, जिससे इन दोनों को पुत्र-शोक व्याप्त न होने पावे। युधिष्ठिर अपने भाइयों को महाराज धृतराष्ट्र की सेवा करने का आदेश दिया करते थे। किन्तु धर्मराज युधिष्ठिर के आदेशानुसार उनके अर्जुनादि छोटे भाई तदनुसार ही कार्य किया करते; अकेले भीमसेन ऐसे थे; जो बड़े भाई के कथन के विपरीत व्यवहार किया करते थे। इसका कारण यह था कि, वे धृतराष्ट्र की दुर्मति से द्यूतद्वारा उत्पन्न दुर्घटनाओं की बातों को अभी तक नहीं भुला सके थे।

दूसरा अध्याय

धृतराष्ट्र द्वारा पुत्रों का श्राद्ध कर्म

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! अम्बिका-पुत्र धृतराष्ट्र, इस प्रकार पाण्डवों द्वारा सम्मानित और ऋषियों से समुपासित हो, पूर्ववत् विहार करने लगे। धृतराष्ट्र ने जिस समय जो वस्तु ब्राह्मणों को देनी चाही—धर्मराज ने उसी समय वह वस्तु उन्हें ला कर दे दी। तदनन्तर दयालु एवं सरल-स्वभाव कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर ने मंत्रियों और भाइयों से हर्षित हो कहा—नरनाथ महाराज धृतराष्ट्र हमारे और तुम्हारे माननीय हैं। जो लोग इनके कहे में चलेंगे और इनके पास रहेंगे—उन्हें मैं अपना सुहृद समझूँगा और जो लोग इसके विपरीत बर्त्ताव करेंगे—उन्हें मैं अपना शत्रु जानूँगा। ये अपने पुत्रों तथा अन्य नातेदारों के श्राद्धादि कर्मों में जो कुछ करना चाहें करें। इनके कामों में कोई रोकटोक नहीं है।

तदनन्तर कुरु-कुल-तिलक महामना महाराज धृतराष्ट्र ने, युधिष्ठिर की सम्मति से, ब्राह्मणों को बहुत सा द्रव्य दिया। धर्मराज, भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव ने उन्हें प्रसन्न रखने के लिये उनके कार्यों का अनुमोदन किया। क्योंकि उन लोगों ने सोचा कि, जब वृद्ध महाराज धृतराष्ट्र पुत्र एवं

पौत्रों के मारे जाने पर भी उनके शोक में व्याकुल हो नहीं मरे; तब ये उसी प्रकार सुख भोगें, जिस प्रकार ये पुत्रों के रहने पर सुख भोगा करते थे।

सारांश यह कि पाण्डव, महाराज धृतराष्ट्र को अपना बड़ा बूढ़ा मानते थे और धृतराष्ट्र भी पाण्डवों के साथ वैसा ही स्नेह युक्त व्यवहार करते थे; जैसा बड़ों को छोटों के साथ करना उचित है। उधर महारानी गान्धारी ने पुत्रों के श्राद्धकर्म में वेदपाठी ब्राह्मणों को मुँहमाँगी वस्तुएँ दे, अपने को इस ऋण से उऋण किया। जब धृतराष्ट्र ने पाण्डवों के व्यवहार में कुछ भी त्रुटि न देखी; तब वे पाण्डवों पर प्रसन्न हुए। सुबलपुत्री महारानी गान्धारी भी पाण्डवों का बर्त्ताव देख, पुत्रशोक भूल गयी और पाण्डवों को निज पुत्रवत् मानने लगी। युधिष्ठिर सदा उन दोनों बूढ़े और बूढ़ी का मन लिये बर्त्ताव करते थे। महाराज धृतराष्ट्र और गान्धारी जो कुछ कहते— युधिष्ठिर उचित अनुचित का विचार न कर, वही किया करते थे। धृतराष्ट्र तो युधिष्ठिर के बर्त्ताव से यहाँ तक सन्तुष्ट थे कि, कभी कभी वे अपने निर्बुद्धि पुत्र दुर्योधन का स्मरण कर पछताते थे।

महाराज धृतराष्ट्र नित्य बड़े तड़के जागते और स्नानादि कर तथा सन्ध्यावन्दनादि क्रियाओं से निवृत्त हो, शुद्ध हृदय से पाण्डवों को आशीर्वाद देते थे कि वे सदा समरविजयी हों। ब्राह्मणों से स्वस्तिवाचन करवा, जब महाराज हवन कर चुकते, तब वे पाण्डवों के दीर्घायु होने के लिये प्रार्थना करते थे। महाराज धृतराष्ट्र को जैसा सुख पाण्डवों के साथ रहने से मिला था, वैसा सुख उन्हें निज सन्तान के साथ रहने से नहीं प्राप्त हो सका था। धृतराष्ट्र के इस बर्त्ताव से क्या ब्राह्मण, क्या क्षत्रिय, क्या वैश्य और क्या शूद्र सभी उनसे सन्तुष्ट थे। युधिष्ठिर ने धृतराष्ट्र के पुत्रों के अत्याचारों को अपने मन से प्रायः भुला दिया था और इसीसे वे धृतराष्ट्र के आज्ञाकारी बन गये थे। जो कोई धृतराष्ट्र की बुराई करता या उनसे विद्वेष करता, उसे युधिष्ठिर अपना बैरी समझते थे। किसी की मजाल न थी, जो धृतराष्ट्र

या दुर्योधन की निन्दा करता। वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! धर्मराज के मानसिक भावों तथा बाह्य व्यवहार की शुद्धता और उनका धैर्य देख, विदुर और गान्धारी को बड़ी प्रसन्नता हुई। किन्तु ये दोनों भीम के व्यवहार से सन्तुष्ट न थे। धर्मपुत्र युधिष्ठिर, महाराज धृतराष्ट्र की इच्छा के अनुसार ही चलते थे और उनकी दशा देख, उनका मन दुःखी होता था। शत्रुनाशक, कुरुवंशावतंस युधिष्ठिर को अपना अनुवर्ती देख, धृतराष्ट्र मन ही मन सिहाते थे और उनका मन लिये हुए कार्य किया करते थे।

तीसरा अध्याय

धृतराष्ट्र का अन्नत्याग और युधिष्ठिर के सामने वन-गमन का प्रस्ताव

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! प्रजाजनों को दुर्योधन के पिता धृतराष्ट्र और युधिष्ठिर की प्रीति में कुछ भी अन्तर न देख पड़ा। धृतराष्ट्र को जब कभी अपने दुर्बुद्धि पुत्र की याद आती; तब वे मन ही मन भीमसेन को अकोसा करते थे। उधर भीमसेन को भी धृतराष्ट्र की खातिरदारी अखरती थी। वे चुपके चुपके जान बूझ कर ऐसे काम स्वयं भी करते थे तथा नौकरों चाकरों से भी करवाया करते थे, जो धृतराष्ट्र को बुरे लगें। वे धृतराष्ट्र की पुरानी बातों को स्मरण कर, धृतराष्ट्र को चिढ़ाने के लिये ताल ठोंका करते थे। एक दिन भीमसेन क्रोध के आवेश में भर, बड़े अशान्त हुए और अपने बैरी दुर्योधन, कर्ण और दुश्शासन का स्मरण कर, अपने मित्रों के बीच बैठ, धृतराष्ट्र और गान्धारी को सुना कर कहा—मेरी ये परिघ रूपिणी दोनों भुजाएँ महा दुर्जेय हैं। इन्हींके बल मैंने इस अन्धे के उन सब पुत्रों का वध किया है, जो मुझसे विविध भाँति के अस्त्रों शस्त्रों से लड़े थे। जिन मेरी पूज्य भुजाओं द्वारा, पुत्र और

बान्धवों सहित दुर्योधन मारा गया है, वे चन्दनादि से आज चर्चित हो रही हैं।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! भीमसेन ने इस प्रकार के अनेक कठोर वचन कहे, जो बाण की तरह धृतराष्ट्र और गान्धारी के मन में चुभने लगे। उनके मन में वैराग्य उदय हुआ। समय के उलटफेर को जानने वाली, सर्वधर्मज्ञा एवं बुद्धिमती गान्धारी ने भीमसेन के ये वचन सुने। पन्द्रहवाँ वर्ष व्यतीत होने पर, भीमसेन के वचनरूपी बाणों से मर्मविद्ध महाराज धृतराष्ट्र के मन में वैराग्य उत्पन्न हुआ। किन्तु कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर को इस का कुछ भी हाल मालूम न हो पाया। अर्जुन, कुन्ती, यशस्विनी द्रौपदी और धर्मात्मा नकुल तथा सहदेव तो धर्मराज युधिष्ठिर के कथनानुसार ही चलते थे। इन लोगों ने कभी उन बुड्ढे बुड्ढी से कोई ऐसी बात नहीं कही थी, जो उनको बुरी लगती।

एक दिन धृतराष्ट्र ने अपने भाईबन्धु नाते रिश्तेदारों के प्रति भली भाँति सम्मान प्रदर्शित करते हुए और शोकान्वित हो तथा आँखों में आँसू भर कर, उनसे कहा—आप लोगों को यह तो विदित ही है कि, कौरवों का नाश कैसे हुआ। उनके नाश का कारण मैं ही हूँ। क्योंकि मुझ निर्बुद्धि ही ने कुलक्षयकारी दुर्बुद्धि दुर्योधन को राजसिंहासन पर बैठाया था। वासुदेव श्रीकृष्ण ने कहा था कि "अच्छा हो यदि मन्त्रियों सहित पापी दुर्योधन पकड़ कर बन्दी बना लिया जाय।" किन्तु मैंने उनकी बात न मानी। फिर विदुर, भीष्म, द्रोणाचार्य तथा कृपाचार्यादि प्रमुख समझदारों ने मुझे बहुत समझाया और पुत्रस्नेह में फँसे हुए मुझसे अनेक हितकर वचन कहे। फिर व्यास जी तथा महारानी गान्धारी ने भी मुझे बहुतेरा समझाया। किन्तु मेरी बुद्धि पर उस समय ऐसे पत्थर पड़े कि, मैंने किसी के कहने पर ध्यान न दिया। परन्तु अब वे ही बातें मेरे मन में काँटे की तरह कसकती हैं और उनका स्मरण आने पर मुझे बड़ा पश्चात्ताप होता है। मुझे रह रह कर बार बार बड़ा पश्चात्ताप तो इस बात का होता है कि, मैंने पाण्डवों को उनका

पैतृक राज्य क्यों न दिया। श्रीकृष्ण को राजाओं के भावी नाश का हाल मालूम हो गया था। इसीसे उन्होंने राज्य के बटवारे पर ज़ोर दिया था। मैं भूतकालीन अपनी भूलों को भूला नहीं हूँ। इन बातों को हुए आज पन्द्रह वर्ष बीत चुके; किन्तु इनकी स्मृति मेरे मन में आज भी हरी बनी हुई है। अतः मेरा विचार अब अपनी उन भूलों के लिये प्रायश्चित्त करने का है। मैं आजकल कभी चौथे और कभी कभी आठवें दिन उतना ही भोजन किया करता हूँ कि, जिससे भूख प्यास मिट जाय और शरीर बना रहै। मेरे इस व्रतोपवास का हाल गान्धारी को विदित है; किन्तु अन्य लोग इसे नहीं जानते। क्योंकि यदि यह बात सब लोग जान जाँय तो युधिष्ठिर को इसके लिये बड़ा दुःख हो। मैं जप करने के मिस, मृगचर्म के ऊपर पृथिवी पर सोता हूँ। यशस्वनी गान्धारी का भी यही हाल है। हम दोनों के समर में कभी पीठ न दिखाने वाले सौ पुत्र मारे गये हैं। क्षात्र धर्म का विचार कर, मुझे इसका कुछ भी सोच नहीं है।

इतना कह धृतराष्ट्र ने युधिष्ठिर को सम्बोधन कर के कहा—हे कुन्ती-नन्दन! तुम्हारा मङ्गल हो। मैं जो कहता हूँ उसे सुनो। हे वत्स! तुम्हारी सेवा से मुझे बड़ा सुख मिला है। मैंने बड़े बड़े दान दिये हैं और श्राद्ध भी कई बार कर चुका हूँ। मैंने अपने बलानुरूप बड़ा सुकृत किया है। सौ पुत्रों की जननी यह गान्धारी अपने सौ पुत्रों को गँवा, मेरा मुख ताका करती है और धैर्य धारण किये हुए है। द्रौपदी का अपमान और तुम लोगों को दुःख देने वाले मेरे वे सब पुत्र मरखप चुके। हे कौरवनन्दन! उनके लिये मुझे प्रायश्चित्तादि कर्म करने की आवश्यकता नहीं जान पड़ती। क्योंकि सन्मुख युद्ध कर वे सब वीरगति को प्राप्त हुए हैं। मुझे तो अब अपना और गान्धारी का हित साधन करना है। हे युधिष्ठिर! तुम धर्मात्माओं में श्रेष्ठ और धर्मवत्सल हो। तुम प्राणियों के राजा और गुरु हो। अतः तुम आज्ञा देने योग्य हो। हे वीर! मैं अब तुम्हारी अनुमति से चीर वल्कल धारण कर वनवास करना चाहता हूँ। हे भरतर्षभ! मैं तुम्हें आशीर्वाद दे कर, वनवास

के लिये प्रस्थान करूँगा । फिर मैं कोई नयी चाल चलना भी नहीं चाहता। हम लोगों के कुल में बुढ़ापे में इस प्रकार वनवास करने की रीति प्राचीन काल से चली आती है। साथ ही यह उचित भी है कि, अन्त समय में हम अपने पुत्रों को राज्य दे वनवासी बनें। हे राजन् ! वन में जा, मैं वायु पी कर अथवा निराहार रह कर, गान्धारी सहित तप करूँगा। हे वीर ! मेरी इस तपस्या का फल तुमको भी मिलेगा।

यह सुन युधिष्ठिर ने कहा—हे राजन् ! आपके इस प्रकार दुःखी होने पर मुझे यह राज्य सुखप्रद नहीं जान पड़ता है। मुझ अत्यन्त दुर्बुद्धि को धिक्कार है कि, मैं राज्य के मोह में ऐसा फँस रहा हूँ कि मुझे यह न मालूम हो पाया कि, आप निराहार रहते हैं और भूमि पर सोया करते हैं। मुझे इस बात का बड़ा पश्चात्ताप है कि, मुझ अज्ञानी को आप जैसे गम्भीर बुद्धि वाले से धोखा मिला। हे राजन् ! राज्य, सुखभोग और यज्ञादि कर्मों से मुझे प्रयोजन ही क्या है; जब आप जैसे मेरे बड़े बूढ़ों को मेरे रहते इतना कष्ट भोगना पड़ा। आप इस समय दुःखी हैं। आपके इन दुःखभरे वचनों को सुन अकेला मैं ही नहीं, प्रत्युत मेरे राज्य के समस्त प्राणी, दुःखी हैं। आप मेरे पिता माता हैं और आप मेरे परम गुरु हैं। आपसे पृथक् हो कर हमारी क्या गति होगी ? हे राजन् ! आपका औरस पुत्र युयुत्सु है। आप यह राजपाट उसे अथवा अन्य जिस किसी को चाहें, दे दें और उसे राजा बना दें। मुझे यह राज्य नहीं चाहिये। मैं तो कहूँगा कि, आप राज्य करें—वन को मैं जाता हूँ, किन्तु अपकीर्ति द्वारा भस्म होते हुए मेरी आप रक्षा करें। मैं राजा नहीं हूँ। राजा तो आप ही हैं। मैं तो आपसे अपने को सनाथ समझता हूँ। मैं आप जैसे धर्मज्ञ और गुरुवत् पूज्य को किस मुँह से वनगमन की आज्ञा दे सकता हूँ। हे अनघ ! मेरे मन में दुर्योधन की ओर से कुछ भी कल्मष नहीं है। कुछ होनहार ही था जो मैं तथा अन्य लोग उस भावी के वश वैसे हो गये। हम लोग आपके वैसे ही पुत्र हैं, जैसे आपके दुर्योधनादि थे। मैं तो कुन्ती और गान्धारी में कुछ भी भेद नहीं समझता। हे राजेन्द्र !

यदि आप मुझे छोड़ कर वनगमन करेंगे तो निश्चय ही मैं आपके पीछे पीछे हो लूँगा। धनधान्य से परिपूर्ण यह ससागरा पृथिवी, आपसे पृथक् होने पर, मुझे प्रसन्न नहीं कर सकेगी। हे राजेन्द्र! यह सब राज्य आप ही का है। मैं आपको हृदय से प्रसन्न करना चाहता हूँ। हम सब आपके अधीन हैं। आप अपने चित्त का सन्ताप दूर कर डालें? हे राजन्! मैं मानता हूँ कि होनहार अमिट है; किन्तु मैं आपकी सेवा कर, अपने चित्त के ताप को मिटाऊँगा।

धृतराष्ट्र बोले—युधिष्ठिर! अब मेरे मन की प्रवृत्ति तप की ओर है और मेरा वनगमन, इस कुल की प्रथा के अनुरूप है। मैं बहुत दिनों तक राज्य सुख भोग चुका और तुम भी बहुत दिनों तक मेरी भली भाँति सेवा कर चुके। अब तुम मुझे वनगमन की आज्ञा दो।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! युधिष्ठिर से इस प्रकार कह, धृतराष्ट्र ने महारथी कृपाचार्य एवं सञ्जय से कहा—आप दोनों मेरी ओर से युधिष्ठिर को समझा दें। वृद्धावस्था के कारण बहुत बातचीत करने से मेरा कण्ठ सूखने लगता है। यह कह कर बूढ़े महाराज धृतराष्ट्र, गान्धारी का सहारा ले, अकस्मात् मूर्छित हो गये। यह देख धर्मराज को बड़ा क्लेश हुआ। वे कहने लगे—जिनके शरीर में साठ सहस्र हाथियों का बल था, वे ही महाराज धृतराष्ट्र आज अपनी स्त्री का सहारा ले मूर्छित हो पड़े हुए हैं। जिन्होंने भीम की लोहे की मूर्ति को दोनों भुजाओं से दबा चूर्ण कर डाला, वे इस समय अबला का सहारा लिये हुए हैं। धर्म से अनभिज्ञ रहने वाले मुझको धिक्कार है। मेरी बुद्धि और मेरे ज्ञान को भी धिक्कार है। यह मेरे गुरुस्थानीय हैं। अतः मैं भी इनकी तरह उपवास करूँगा। यदि महाराज धृतराष्ट्र और यशस्विनी गान्धारी भोजन नहीं करतीं, तो मैं भी भोजन करना त्यागे देता हूँ।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! तदनन्तर महाराज युधिष्ठिर ने धृतराष्ट्र के मुख और छाती पर शीतल जल के छींटे मारे। तब धृतराष्ट्र को

चेत हुआ। वे सचेत हो कहने लगे। हे युधिष्ठिर ! तुम मेरा शरीर अपने हाथ से पुनः स्पर्श करो। क्योंकि तुम्हारे हस्तस्पर्श से मेरे शरीर में सजीवता आती है। मैं तुम्हारे ऊपर हाथ फेर कर तुम्हारा मस्तक सूँघना चाहता हूँ। क्योंकि ऐसा करने से मुझे बड़ा सुख प्राप्त होता है। मुझे आहार त्याग किये आज आठवाँ दिन है। अतः मुझमें अब विशेष शक्ति नहीं रह गयी है। इसीसे मुझे मूर्छा भी आ गयी थी, और तुम्हारे अमृत तुल्य हस्तस्पर्श से मैं सजीव हो गया हूँ।

वैशम्पायन जी कहने लगे—हे जनमेजय ! अपने चाचा की इन बातों को सुन, युधिष्ठिर ने उनके समस्त अङ्गों को धीरे धीरे मसला। तदनन्तर धृतराष्ट्र ने युधिष्ठिर को अपनी भुजाओं में दबा, उनका मस्तक सूँघा। यह देख वहाँ उपस्थित विदुर आदि जो लोग थे, वे रो पड़े। उस समय उन लोगों से कुछ भी कहते न बन पड़ा। किन्तु दुःखिनी गान्धारी ने अपने को संभाल कर उनसे यह कहा—तुम लोगों का इस प्रकार दुःखी होना उचित नहीं। कुन्ती आदि स्त्रियाँ आँखों में आँसू भर, गान्धारी को घेर कर बैठ गयीं।

तब धृतराष्ट्र ने युधिष्ठिर से पुनः कहा—मुझे अनुमति दो—मैं तप करना चाहता हूँ। हे वत्स ! बहुत बोलने से मेरा मन भयभीत हो, उचटता है। अब मुझे और कष्ट न दो। धृतराष्ट्र के ये कहने पर, सब लोग पुनः रो पड़े। धर्मपुत्र युधिष्ठिर ने वनवास के लिये सर्वथा अयोग्य, उपवासादि व्रतों के कारण अत्यन्त क्षीण एवं अस्थिचर्मावशिष्ट शरीर वाले अपने चाचा को देख, शोक के आँसू गिराते हुए यह कहा—हे परन्तप ! हे नरोत्तम ! मैं आपकी प्रसन्नता के सामने सारे राज्य ही को नहीं; किन्तु अपने इस जीवन को भी तुच्छ समझता हूँ। यदि आप मुझे अपना प्यारा जानते हैं, तो प्रथम आप भोजन करें, पीछे आप जो कुछ कहेंगे, उसे मैं सुनूँगा। इस पर महातेजस्वी धृतराष्ट्र बोले कि, हे वत्स ! मैं चाहता हूँ कि, तेरी अनुमति से मैं भोजन करूँ।

महाराज धृतराष्ट्र के युधिष्ठिर से इस प्रकार कहने पर सत्यवती के पुत्र महर्षि व्यास जी ने उनके आगे जा कर, यह कहा।

चौथा अध्याय

धृतराष्ट्र के वनगमन की अनुमति देने के लिये व्यास जी का युधिष्ठिर से अनुरोध

व्यास जी बोले—हे युधिष्ठिर ! महातेजस्वी धृतराष्ट्र जो कहते हैं, उसे तुम बिना किसी प्रकार के सोच विचार के स्वीकार करो। धृतराष्ट्र बहुत बूढ़े हैं और इनके सब पुत्र भी मारे गये हैं। अतः अब इनसे यह दुःख सहन नहीं हो सकते। यह ज्ञानवती, दयावती और भाग्यवती गान्धारी भी दारुण पुत्रशोक को बड़े धैर्य से सहती हैं।

इसीसे मैं तुमसे कहता हूँ कि, तुम मेरा कहा मान कर, इन्हें आज्ञा दे दो। नहीं तो यह यहीं मर जाँयगे। इनकी प्राचीन राजर्षियों जैसी गति होनी चाहिये। वृद्धावस्था में समस्त राजर्षि वनवासी होते चले आये हैं।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय ! अद्भुतकर्मा महर्षि व्यास जी के इन वचनों को सुन, परमतेजस्वी युधिष्ठिर ने उनसे कहा—भगवन् ! आप ही हमारे बड़े बूढे हैं, आप ही हमारे गुरु हैं, और इस राज्य और इस कुल के रक्षक तथा अवलंब आप ही हैं। मैं आपका पुत्र हूँ। पिता की आज्ञा का पालन करने वाला मनुष्य ही, धर्म से पुत्र होता है।

इस पर वेद जानने वालों में श्रेष्ठ, महातेजस्वी एवं महाकवि वेद व्यास जी ने युधिष्ठिर से कहा—वत्स ! तुम जो कहते हो – सो ठीक है। किन्तु यह राजा धृतराष्ट्र अत्यन्त वृद्ध हैं और वैदिक-कर्म-निरत हैं। अतः मेरी और अपनी अनुमति से इन्हें अपना अभीष्ट पूर्ण करने दो। तुम विघ्नकर्त्ता मत बनो। हे युधिष्ठिर ! राजर्षियों का यह परम धर्म है कि, वे

या तो युद्ध में अथवा वन में अपना शरीर त्यागें। हे वत्स ! इन धृतराष्ट्र को तुम्हारे पिता पाण्डु बहुत मानते थे। वे अपने को इनका शिष्य समझ, इनकी सेवा शुश्रूषा किया करते थे। तुमने ऐसे ऐसे यज्ञ किये हैं, जिनमें पहाड़ जैसी रत्नराशि दक्षिणा में दी है, साथ ही पृथिवी का शासन कर, राज्यसुख भी भोगा है। जब तुम वनवास में थे, तब धृतराष्ट्र ने अपने पुत्र के अधीन हो, इस विशाल राज्य का तेरह वर्षों तक उपभोग किया था और बहुत सा दान पुण्य किया था। फिर राज्य पाने पर तुमने और तुम्हारे नौकरों चाकरों ने धृतराष्ट्र और गान्धारी की भली भाँति सेवा शुश्रूषा की। अब तुम्हें उचित है कि, तुम्हारे चाचा तुमसे जो कुछ कहें, उसे तुम मानो। क्योंकि यह समय इनकी तपश्चर्या का है। इस समय इनका कोई मृत्युयोग भी नहीं है।

इस प्रकार युधिष्ठिर को समझा और उनसे "हाँ" करवा तथा उन्हें आशीर्वाद दे; महर्षि वेदव्यास जी वन को चले गये। उनके चले जाने बाद, विनम्र युधिष्ठिर ने महाराज धृतराष्ट्र से कहा—व्यास जी ने जो बात कही है और जो आपकी इच्छा के अनुसार है, तथा जिसका अनुमोदन समर्थन धनुर्धर कृपाचार्य, विदुर तथा युयुत्सु एवं सञ्जय भी कर चुके हैं उसके अनुसार मैं शीघ्र ही व्यवस्था कर दूँगा। क्योंकि आप सब लोग तो इस कुल की वृद्धि चाहने वाले हैं और मेरे पूज्य हैं। मैं आप लोगों की बात टाल नहीं सकता। किन्तु हे राजन ! मेरी आपसे एक विनम्र प्रार्थना यह है कि, जब तक आप वन में न जाँय; तब तक आप पूर्ववत् खाया पिया करें।

पाँचवाँ अध्याय

धृतराष्ट्र का युधिष्ठिर को राजनैतिक उपदेश

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय ! युधिष्ठिर से विदा हो महाराज धृतराष्ट्र अपने महल को गये। उनके पीछे गान्धारी थी। बूढ़े हाथी की तरह शिथिलेन्द्रिय एवं बुद्धिमान् धृतराष्ट्र को चलने में बड़ा कष्ट हो रहा था। उनके पीछे पीछे उस समय ज्ञानवान् विदुर, सूतपुत्र सञ्जय और धनुर्धर कृपाचार्य भी चले जा रहे थे। अपने महल में पहुँच धृतराष्ट्र ने प्रातः सन्ध्योपासन कर, ब्राह्मणों को भोजन करा स्वयं भोजन किये। तदनन्तर कुन्ती तथा अन्य बन्धु बान्धवों सहित गान्धारी ने भोजन किये। विदुर तथा पाण्डव भोजनादि से निवृत्त हो, पुनः धृतराष्ट्र की सेवा में उपस्थित हुए। तदनन्तर निकटस्थ युधिष्ठिर की पीठ पर हाथ फेर, धृतराष्ट्र ने कहा।

धृतराष्ट्र बोले—हे युधिष्ठिर ! तुम धर्म पुरस्कृत और अष्टाङ्ग युक्त राज्य में किसी प्रकार की असावधानी मत करना। बेटा ! तुम विद्वान् हो, धर्म पूर्वक राज्य की रक्षा किस प्रकार करनी चाहिये, सो मैं कहता हूँ। तुम सुनो। हे युधिष्ठिर ! तुम सदा विद्यावृद्ध पुरुषों के साथ रहना। वे जो कहें, उसे सुनना और कुछ भी विचार न कर, उनकी आज्ञा का पालन करना। प्रातः काल उठ कर, बुद्धि के अनुसार, उनका पूजन कर, यथासमय उनसे कर्त्तव्य सम्बन्धी प्रश्न करना। तब वे तुमको तुम्हारे कर्त्तव्य का उपदेश देंगे। उनका वह उपदेश, सब दशाओं में तुम्हारे अभीष्ट को पूरा करेगा। अपनी इन्द्रियों की ओर से सदा वैसे ही सावधान बने रहो, जैसे चंचल घोड़े से सारथि सावधान रहता है। इन्द्रियों द्वारा तुम्हारे मनोरथ सिद्ध करने वाले कर्म ऐसे होने चाहिये जैसे पैतृक धन की रक्षा के लिये किये जाते हैं। कपट शून्य, विशुद्ध जन्म, शिक्षित एवं ईमानदार मंत्रियों को अधिकारों पर नियत करो ; शत्रुओं को मालुम न होने पावे, किन्तु तुम जासूसों से शत्रु का हाल जानते रहो। ये जासूस तुम्हारे राज्य के रहने वाले

और परीक्षित होने चाहिये। तुम्हारे नगर की परकोटे की दीवालें मज़बूत हों। तोरण द्वार भी सुदृढ़ होने चाहिये। दुर्ग के ऊपर सञ्चाचर-स्थान के चारों ओर छः अट्टालिकाएं बनवाना। उनके समस्त द्वार यथेष्ट बड़े और सब ओर होने चाहिये। वहाँ पर सावधान लोगों को रक्षा के लिये नियत करना। खजाने के ऊपर ऐसे लोगों को रखना, एवं जिनका कुल शील तुम्हें मालुम हो। भोजन के समय तुम अपनी रक्षा स्वयं सावधानी से करना। विश्वस्त वृद्ध पुरुषों को अपनी स्त्रियों के आहार, विहार, पुष्पशय्या आदि की रखवाली सौंपना। अच्छे स्वभाव वाले, ज्ञानी और कुलीन ब्राह्मणों को तुम अपना मंत्री बनाना। जो ब्राह्मण पण्डित, विद्यावान्, शान्त स्वभाव, कुलीन, अर्थ धर्म में सावधान और सत्यभाषी हों उनके ही साथ तुम परामर्श किया करना। बहुत से लोगों से कभी सलाह मत करना। किसी बहाने से किसी निराले स्थान पर सब परामर्शदाता मंत्रियों को बुला, हरेक से अलग अलग राय लेना। वन में ऐसे स्थान पर सलाह करना जहाँ वृक्षादि न हों। रात के समय कभी परामर्श मत करना। सलाह करने की जगह पर, बंदर, पक्षी, इधर की उधर बात लगाने वाले पुरुष, कुटिल मन वाले पुरुष तथा विक्षिप्त मनुष्य को कभी मत बुलाना। मेरे मतानुसार राजाओं के मंत्रभेद सम्बन्धी दोष किसी प्रकार भी दूर नहीं हो सकते। मंत्रिमण्डल में तुम मंत्रभेद सम्बन्धी दोषों को वर्णन कर सकते हो और साथ ही वे गुण भी बतला सकते हो जो मंत्रभेद (सलाह प्रकट) न होने से सम्बन्ध रखते हैं। अर्थात् सलाह के प्रकट होने के दोष और गुण मंत्रि-मण्डल को समझा देना भी राजा का कर्त्तव्य है। तुम आप्तजनों के बीच बैठ कर, पुरजनों और जनपदवासियों का शौचाशौच (ईमानदारी बेई-मानी) जैसे बने वैसे जान लेने का प्रयत्न करना। तुम्हारा व्यवहार सदा विश्वासी कर्मचारियों के अधीन रहना चाहिये। तुम्हारे न्यायकर्त्ताओं को न्यायानुसार अपराध के परिमाण को जान कर, अपराधियों को दण्ड देना चाहिये। रिश्वती—घूसखोर, परस्त्रीगामी, कठोर दण्ड को उत्तम जानने

वाले अधिकारी, न्यायविरोधी, कलङ्क लगाने वाले, लोभी, चोर बिना समझे बूझे काम करने वाले, सार्वजनिक स्थानों को भ्रष्ट करने वाले, जाति पाँति तोड़ने वाले लोगों को देश, काल के अनुसार अर्थदण्ड अथवा शारीरिक दण्ड देना उचित है। खजाने की पड़ताल प्रातःकाल ही करनी चाहिये। तदनन्तर भोजन कर और पोशाक पहिन सेना का निरीक्षण करो। सायंकाल को जासूसों और गुप्तचरों से बातचीत किया करो। रात के अन्तिम भाग में कार्यार्थ का निर्णय करो तथा मध्यरात्रि में विहार करो। जो कार्य जिस समय करने के हों, उन्हें उसी समय करना। वस्त्र भूषण से सुसज्जित हो राजसिंहासन पर बैठना। सदा अनेक उपायों से ख़जाने को धन संग्रह से बढ़ाते रहना; किन्तु धन का संग्रह न्याय पूर्वक करना। जो राजाओं के छिद्र देखा करते हैं और राजाओं के शत्रु हैं, अपने दूतों द्वारा उनका भेद ले कर, विश्वस्त मनुष्यों द्वारा दूर ही से उन्हें मरवा देना। हे कौरव! तुम सेवाओं को देख कर सेवकों को नियत करना। न्याय से काम लेने वाले अधिकारियों से राज्य के कार्य पूरे कराना। अपनी सेना का आधिपत्य अथवा प्रधान सेनापति का पद ऐसे मनुष्य को देना जो दृढ़ व्रत धारण करने वाला, शूर, सहिष्णु, तुम्हारा शुभचिन्तक और भक्त हो। देशवासी कारीगरों से उनके वित्तानुसार अपना काम करवाना। अपने नौकरों चाकरों तथा शत्रुओं के छिद्रों पर सदा ध्यान रखना। अपने शुभचिन्तकों तथा उद्योगी देशवासियों की चेंटी की तरह रक्षा और उन पर कृपा करते रहना। हे राजन्! ज्ञानी राजा को उचित है कि, वह गुणी मनुष्यों के गुण प्रकट करता रहे। उन लोगों को अपने अपने पदों पर पर्वत की तरह अटलभाव से नियत कर देना तुमको उचित है।

छठवाँ अध्याय

नीति-निरूपण

धृतराष्ट्र ने कहा—हे भरतर्षभ ! तुम आत्मीय, परकीय, उदासीन और मध्यस्थ के शत्रु मित्रादिरूपी मण्डल का ज्ञान विशेष रूप से सम्पादन करना। हे अरिकर्षण ! चार प्रकार के शत्रुओं और आततायियों में कौन मित्र हैं और कौन शत्रु हैं—यह बात विशेष रूप से तुम्हें जान लेनी उचित है। हे कुरुश्रेष्ठ ! मंत्रियों, जनपदों विविध प्रकार के दुर्गों तथा समस्त सेनाओं में शत्रु लोग फूट फैलाया करते हैं। अतः ऐसा करना जिससे तुम्हारे शत्रु अपने इस उद्देश्य में सफल होने न पावें। हे कुन्तीनन्दन ! राजाओं के विषय रूपी विरोधादिक बारह हैं और मंत्रिप्रधान गुण बहत्तर हैं। इसीको नीतिनिपुणों ने मण्डल कहा है। इनमें राज्य की रक्षा के छः उपाय हैं। इन छः उपायों को भी समझ लेना आवश्यक है। वृद्धि, क्षय और स्थान को उन बहत्तर गुणों द्वारा जान लेना चाहिये और राज्यरक्षा रूपी उपाय से छः गुण जानने योग्य हैं। जब अपना पक्ष प्रबल और शत्रु का पक्ष निर्बल होता है, तब शत्रु से विरोध कर, राजा विजयी हो सकता है और जब शत्रु प्रबल और अपना पक्ष निर्बल होता है; तब बुद्धिमान् राजा को उचित है कि, वह शत्रु से सुलह कर ले। राजा को हर प्रकार के द्रव्य भी सञ्चित करने चाहिये। जब देखे कि, चढ़ाई करने से लाभ होगा; तब चढ़ाई की तैयारी थोड़े ही समय में कर डाले। शत्रु को ऐसी भूमि दे जिसमें पैदावार कम हो। सन्धि करने में पटु राजा को युद्ध में मारे गये अपने मित्रों, हाथियों और घोड़ों का हरजाना लेना चाहिये। साथ ही बहुत सा सोना चाँदी भी लेना चाहिये। सन्धि की ज़मानत में शत्रु के राजकुमार को अपने पास रख ले। जो इसके विपरीत काम करता है, उसकी वृद्धि नहीं होती। प्रत्युत वह किसी न किसी सङ्कट में फँस जाता है। उपाय

जानने वाला मंत्रकुशल राजा उपस्थित सङ्कट को दूर करने के लिये उपाय सोचे।

हे राजेन्द्र! अपने राज्य में बसने वाले अंधों और बहिरों तथा गूंगों का पालन पोषण राजा स्वयं करे। बलवान् राजा क्रमशः अथवा एक साथ राज्य की रक्षा के समस्त उपायों से काम लेता हुआ, शत्रुओं को पीड़ित करे। मौक़ा पावे तो शत्रु को क़ैद कर उसका ख़जाना नष्ट कर डाले। जो राजा अपनी वृद्धि चाहता हो, उसे किसी शूरवीर अपने शत्रु के काबू में आने पर, जान से मार डालना उचित नहीं है। जो राजा सारी पृथिवी को अपने वश में करने की कामना रखता हो, उसे उचित है कि, वह शरण में आये हुए लोगों की रक्षा करे—उनको मारे नहीं। शत्रुओं और उनके मंत्रियों में परस्पर फूट उत्पन्न करने का उपाय राजा को सदा सोचते रहना चाहिये। साथ ही राजा को शिष्टों के पालन पोषण की और दुष्टों को दण्ड देने की व्यवस्था करनी चाहिये। भले ही राजा बलवान ही क्यों न हो, उसे अपने निर्बल शत्रु की उपेक्षा कभी न करनी चाहिये। हे युधिष्ठिर! तुम्हें बेत की नीति का अवलंबन करना चाहिये। जब बलवान शत्रु से पाला पड़े, तब सामादि नीति से काम ले उसे पीछे लौटा दे। जो राजा सन्धि करने में असमर्थ हो, उसे शत्रु पर चढ़ाई करते समय, अपने मंत्रियों को, सेना को, पुरवासियों को, अपने हितैषियों को तथा धनराशि को साथ ले जाना चाहिये। यदि इनमें से कुछ भी न हो तो उसे स्वयं अपने शरीर ही से शत्रु के साथ युद्ध करना चाहिये। इस प्रकार युद्ध करने के समय जो राजा युद्ध में मारा जाता है, उसे मोक्ष मिलती है। यह क्षत्रियों के जुहारव्रत की नीति का उपदेश है।

सातवाँ अध्याय

पुनः राजनीति

धृतराष्ट्र बोले—युधिष्ठिर ! सन्धि और विग्रह का भी भेद समझ लो। सन्धि और विग्रह शत्रु के बलवान् अथवा निर्बल होने पर निर्भर है। अतः राजा को उचित है कि, वह अपने बलाबल पर विचार कर शत्रु से व्यवहार करे। जब शत्रु, बल एवं पराक्रम से युक्त हो तथा उसके पास सेना हो, तब अपने बलाबल को जान स्थिर भाव से, जय का उपाय सोचते हुए, जब तक जय प्राप्त न हो; तब तक शत्रु से पैग़ामबाज़ी करता रहे। सुलह के पैग़ाम जब होते रहें ; तब यदि देखे कि, शत्रु का बल प्रबल नहीं है; तब उस पर चढ़ाई कर दे। फिर जब शत्रु पर बलपूर्वक पराक्रम-प्रदर्शन का समय उपस्थित हो, तब शत्रु पर धावा बोले। तदनन्तर युद्ध करते समय शत्रु को विपत्ति में डाले, उनमें आपस में फूट डाल दे, शत्रु को भयभीत करे और शत्रु का बल नष्ट कर दे। रण-नीति-कुशल राजा जब शत्रु पर आक्रमण करे, तब उसे शत्रु की सामर्थ्य का विचार कर लेना चाहिये। उत्साह, प्रभुत्व और मंत्रशक्ति (सलाह मशवरा) से सम्पन्न हो, राजा को चढ़ाई करनी चाहिये। राजा अपने साथ धनबल, मित्रबल, अटवीबल, प्राणीबल और सैन्यबल को रखे। इन सब बलों में धनबल और मित्रबल विशेष हैं। श्रेणीबल और प्राणीबल, मेरी समझ में समान हैं। दूतबल भी इन दोनों के समान है। किन्तु राजा को हर प्रकार के बल जान लेना आवश्यक है। विविध प्रकार की आपत्तियों को पहचान लेना भी आवश्यक है। हे युधिष्ठिर ! राजाओं को जिन आपत्तियों का सामना करना पड़ता है, उन्हें सुनो। आपत्तियाँ कई प्रकार की हैं। राजा को उचित है कि, उन समस्त आपत्तियों का प्रतीकार सामादिक उपायों से करे। राजा को उचित है कि, रण-यात्रा के समय वह अपने साथ सत्पुरुषों और सैनिकों को रखे और देश तथा काल का ध्यान रखे। राज्य की वृद्धि करने की

इच्छा रखने वाले राजा को उचित है कि, वह स्वयं बलवान्, पराक्रमी और प्रसन्नचित्त हो। फिर सैन्यबल को साथ ले शिशिर आदिक अनुकूल ऋतुओं में चढ़ाई करे। शत्रुओं का नाश करने के लिये राजा ऐसी नदी बहावे जिसमें तृण रूपी पत्थर हो, रथ और घोड़े जिसका प्रवाह हों, ध्वजा रूपी वृक्षों से युक्त जिसके उभयतट हों; अनेक हाथियों और पैदल सेना द्वारा जो कर्दममय हो। फिर आवश्यकतानुसार शकट, पद्म और वज्र नामक व्यूहों से सेना को सुसज्जित करे। शुक्र-रण-नीति में इन सब को श्रेणीबद्ध करने का विशद वर्णन है। जासूसों द्वारा शत्रु की सेना का पता लगा और अपनी सेना के बलाबल को देख, अपने राज्य की पृथिवी पर और शत्रु की अधिकृत भूमि पर युद्ध करे। राजा अपने सैनिकों को प्रसन्न रखे और साहसी एवं बलवान पुरुषों को अधिकारी बनावे। फिर जैसा अवसर देखे तदनुसार सामादि नीतियों से बर्त्ताव करे। राजा को सब प्रकार से अपने शरीर की रक्षा करनी चाहिये और इस लोक और परलोक में कल्याण साधन के लिये प्रयत्नशील बना रहना चाहिये। जो राजा इन बातों को ध्यान में रख शासन करता है। उसे शरीर त्यागने पर स्वर्ग मिलता है। हे युधिष्ठिर! तुम्हें उभय लोकों का ध्यान रख कर प्रजा का पालन करना चाहिये। हे भरतर्षभ! भीष्म और श्रीकृष्ण हर प्रकार से तुम्हें समझा चुके हैं। किन्तु तुम्हारे स्नेह से प्रेरित हो, मैंने तुमको यह उपदेश दिया है। यदि तुम न्यायपूर्वक व्यवहार करोगे, तो तुम प्रजाजनों के प्रीतिपात्र बन, अन्त में स्वर्गसुख प्राप्त करोगे। भले ही कोई राजा हज़ार अश्वमेध यज्ञ करे किन्तु जो धर्मपूर्वक प्रजा का पालन नहीं करता—वह उस राजा के समान ही है जो भले ही हज़ार अश्वमेध यज्ञ न करे, किन्तु धर्मपूर्वक प्रजा पालन में निरत रहता हो। अर्थात् धर्मपूर्वक प्रजापालन का जो फल है वही दस हज़ार अश्वमेध यज्ञ करने का फल है।

आठवाँ अध्याय

युधिष्ठिर के प्रश्न–धृतराष्ट्र का वनगमन–पुरवासियों का विलाप

युधिष्ठिर ने धृतराष्ट्र से कहा—राजन् ! आपने मुझे जैसा उपदेश दिया है मैं तदनुसार ही बर्त्ताव करूँगा। किन्तु मैं आपके मुख से और उपदेश सुनने को उत्सुक हूँ। क्योंकि भीष्म जी तो अब इस धराधाम पर हैं नहीं और जब श्रीकृष्ण, विदुर और सञ्जय भी यहाँ से चले जाँयगे, तब मुझे कौन ऐसे उपदेश देगा। मेरी बढ़ती के लिये आपने मुझे जो उपदेश दिये हैं, उनके अनुसार ही मैं व्यवहार करूँगा। आप तो इस समय निवृत्ति मार्ग पर आरूढ़ हैं।

वैशम्पायन जी कहने लगे—हे जनमेजय ! जब युधिष्ठिर ने इस प्रकार कहा, तब राजर्षि धृतराष्ट्र यह कह गान्धारी के भवन में चले गये कि, हे वत्स ! थोड़ी देर ठहरो। बोलते बोलते मेरे शरीर में शैथिल्य बढ़ गया है। इधर जब धृतराष्ट्र गान्धारी के भवन में पहुँचे तब समय को परखने वाली गान्धारी ने अपने आसनासीन प्रजापति के समान पति से कहा—आपको महर्षि वेदव्यास आकर वनगमन की आज्ञा दे चुके हैं। अब आप युधिष्ठिर की आज्ञा से वन को कब चलेंगे ? धृतराष्ट्र ने उत्तर देते हुए कहा—हाँ मुझे आज्ञा मिल चुकी है। मैं अब कुछ ही समय बाद युधिष्ठिर की सलाह से वनगमन करूँगा। इस बीच में मैं उन दुर्मति, जुआरी समस्त पुत्रों के श्राद्धादिक कर लेना चाहता हूँ।

तदनन्तर उन्होंने अपने भवन में समस्त अपने नौकरों चाकरों के मुख्यजनों को बुला, युधिष्ठिर के पास दूत भेजा। उसने समस्त आवश्यक सामग्री ला उपस्थित कर दी। तदनन्तर कुरुजाङ्गल देशवासी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र प्रजाजन एकत्र हुए। राजा ने अन्तःपुर के बाहिर

था, उन सब को देखा। फिर वे अपने इष्टमित्रों तथा नाना देशस्थ ब्राह्मणों और सगे नतैतों को सम्बोधन कर कहने लगे—आप लोग कौरवों की हित-कामना करते हुए बहुत दिनों तक उनके साथ रह, उनकी वृद्धि में सहायक रहे हैं। अतः अब मैं जो कुछ कहूँ, आपको उचित है कि, आप तदनुसार व्यवहार करें। मेरा कथन ऐसा नहीं है—जो विचारणीय हो। महर्षि वेद-व्यास और महाराज युधिष्ठिर के परामर्शानुसार मेरा विचार गान्धारी सहित वन जाने का है। अब आप भी बिना किसी अटकाव के मुझे वन जाने की अनुमति प्रदान करें। हमारी आपकी जैसी प्राचीन परस्पर प्रीति है, वैसी अन्य देशस्थ किसी अन्य राजा की नहीं है। अब मैं वृद्धावस्था के कारण जीर्ण हो रहा हूँ। मेरे अब कोई पुत्र भी नहीं है। गान्धारी सहित व्रत करते करते हम दोनों के शरीर दुर्बल हो गये हैं। हे अनघ! युधिष्ठिर के राज्य में मुझे बड़ा सुख मिला है। यहाँ तक कि ऐसा सुख मुझे दुर्योधन के राज्य काल में भी नहीं मिला था। किन्तु अब मुझ अँधे और सन्तान-हीन को वन ही एक मात्र गति है। अतः आप लोग भी मुझे अनुमति प्रदान करें।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! धृतराष्ट्र के इन वचनों को सुन लोगों की आँखों में आँसू भर आये और वे विलाप करने लगे। तब परम तेजस्वी धृतराष्ट्र ने उन लोगों को, जो कुछ कहना चाहते थे और बड़े दुःखी हो रहे थे, बहुत कुछ समझाया बुझाया।

नवाँ अध्याय

पुरवासियों से धृतराष्ट्र की पुत्रों के लिये क्षमायाचना

धृतराष्ट्र कहने लगे—महाराज शान्तनु ने इस पृथिवी का यथाविधि पालन पोषण और रक्षण किया था। उसी प्रकार भीष्म जी की देखरेख में

महाराज विचित्रवीर्य ने आप लोगों का पालन पोषण किया। यह कहने की अवश्यकता नहीं कि, मेरा भाई पाण्डु तुम लोगों को कैसा प्रिय था। उसने भी जैसा चाहिये वैसा तुम लोगों का पालन पोषण और रक्षण किया। पाण्डु के बाद मुझसे जैसी कुछ बन पड़ी मैंने आप लोगों की सेवा की और सम्भव है, मुझसे सेवा न बन पड़ी हो। जो हो आप लोग मेरी भूल चूक को माफ करें। जिन दिनों दुर्योधन निष्कण्टक राज्य करता था; उन दिनों उस दुर्बुद्धि एवं अभागे ने आपका कुछ बिगाड़ नहीं किया। किन्तु उसके किये हुए राजाओं के अपमान और अन्याय से घोर युद्ध हुआ। मेरा अच्छा या बुरा यही किया हुआ कर्म है। इसे आप लोग अपने मन से भुला दें। मैं हाथ जोड़ कर आपसे इसके लिये क्षमाप्रार्थी हूँ। मैं बूढ़ा हूँ, हतसन्तान हूँ और आर्त हूँ तथा राजपुत्र हूँ। अतः मुझे आप सब वन जाने की आज्ञा दें। परम दुःखिनी, नष्टसन्तान, वृद्धा एवं तपस्विनी गान्धारी पुत्रशोक से पीड़ित है। बूढ़ी जान कर उसे भी वनगमन के लिये आप लोग आज्ञा दें। भगवान् आपका भला करें। हम तो आपके शरण हैं। जब कभी आप पर कोई आपत्ति आवे, तब कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर से आप लोग मिलें। देखना, इसे किसी प्रकार का कष्ट न होने पावे। लोकपालों के समान चारों भाई इसके मंत्री हैं। यह महातेजस्वी युधिष्ठिर आपका पालन वैसे ही करेगा, जैसे ब्रह्मा जी समस्त प्रजाजनों का किया करते हैं। मेरा यह कर्त्तव्य है कि, मैं आप लोगों से कहूँ कि, मैंने धरोहर रूप यह युधिष्ठिर आप सब को सौंपा है और आप लोगों को इस वीर के पास धरोहर रूप से रखा है। मेरे पुत्रों से अथवा मेरे नाते रिश्तेदारों से जो कुछ अपराध बन पड़ा हो—उसे आप लोग क्षमा करें। आप लोग मुझ पर कभी भी क्रुद्ध नहीं हुए—बल्कि मुझमें आपकी प्रगाढ़ भक्ति रही है। अपने उन बुद्धिहीन, लोभी एवं स्वेच्छाचारी पुत्रों के अपराधों के लिये, मैं गान्धारी सहित आप लोगों से प्रार्थना करता हूँ।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! धृतराष्ट्र की इन बातों को सुन,

नेत्रों में आँसू भरे हुए प्रजाजनों से कुछ कहते न बन पड़ा। वे एक दूसरे को देखने लगे।

दसवाँ अध्याय

धृतराष्ट्र और गान्धारी का निज भवन प्रयाण

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! वृद्ध धृतराष्ट्र की बातें सुन प्रजाजन अचेत से हो गये। चुपचाप खड़े और रोते हुए उन प्रजाजनों से धृतराष्ट्र पुनः कहने लगे—करुण विलाप करने वाले एवं हतसन्तान मुझ अभागे को पत्नी सहित वनगमन के लिये आप लोग आज्ञा दें। मुझे मेरे पिता महर्षि वेदव्यास और धर्मज्ञ राजा युधिष्ठिर से वनगमन की आज्ञा मिल चुकी है। मैं बार बार आपके सामने सीस नवाता हूँ—आप मुझे और गान्धारी को वनवास के लिये आज्ञा दें।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! कुरुजाङ्गल देशवासी प्रजाजन राजा धृतराष्ट्र के इन करुण पूर्ण वचनों को सुन, अपने अपने मुँह ढाँक कर रोने लगे और धृतराष्ट्र विछोह जनित दुःख का अनुभव करने के कारण स्वयं मूर्छित हो गये। फिर दुःख के वेग को रोक कर प्रजाजनों ने आपस में परामर्श कर एक ब्राह्मण को अपना मुखिया बना, उसके द्वारा धृतराष्ट्र को उत्तर दिलाया। उस ब्राह्मण का नाम शंब था। वह बड़ा सदाचारी वेदपाठी, और कर्मकाण्ड में निपुण था। उसने सर्वसम्मति से राजा धृतराष्ट्र से कहा—हे वीर! मैं इन समस्त जनों की ओर से जो आपसे निवेदन करता हूँ—उसे आप सुनें। हे राजेन्द्र! आपने जो कुछ कहा—वह सब यथार्थ है। उसमें निस्सन्देह एक भी बात मिथ्या नहीं है। हम लोग चिरकाल से पारस्परिक प्रीतिबन्धन में बंधे हुए हैं। इस राजवंश में आज तक कोई ऐसा राजा नहीं हुआ, जिसने प्रजा को सताया हो और जो प्रजा का विरागभाजन बना हो।

आपने माता पिता और भाई की तरह हम लोगों का पालन एवं रक्षण किया है। हमारी समझ में दुर्योधन ने भी कोई संगीन अपराध नहीं किया। महाराज ! अब सत्यवती-सुत महर्षि वेदव्यास जैसा कहते हैं, आप वैसा ही करें। हम उनके कथन को सर्वोपरि मानते हैं। हम आपके अनेक गुणों से वञ्चित हो, बहुत दिनों तक शोकान्वित रहेंगे। हमारी रक्षा तो महाराज शान्तनु, चित्राङ्गद और भीष्म से रक्षित आपके पिता विचित्रवीर्य, राजा पाण्डु ने जैसी की वैसी ही रक्षा आपने आपके पुत्र दुर्योधन ने हम लोगों की, की है। दुर्योधन ने हम लोगों के साथ कुछ भी खुटाई नहीं की। हम लोगों का तो उसमें वैसा ही विश्वास था, जैसा पुत्र का पिता में होता है। हम दुर्योधन के राज्यकाल में जैसे सुखचैन से रहे—सो आप जानते ही हैं और अब आगे भी, हम धैर्यवान्, बुद्धिमान् और धर्मज्ञ महाराज युधिष्ठिर से पोषित हो सहस्रों वर्षों तक सुख भोगेंगे। क्योंकि महाराज युधिष्ठिर, अपने पूर्वजों के पकड़े हुए मार्ग ही पर चलते हैं। आपके पूर्वज पवित्रकर्मा राजर्षि कुरु, संवरण तथा भरतादिक जैसे बुद्धिमान थे; वैसे ही महाराज युधिष्ठिर भी हैं। इनमें कोई अयोग्य बात नहीं है। इस वंश के नाश का दोष दुर्योधन के माथे मढ़ा जाना भी उचित नहीं है। क्योंकि यह नाश दुर्योधन के कारण नहीं हुआ, बल्कि इसके लिये न तो आप न कर्ण और न शकुनि ही दोषी ठहराये जा सकते हैं। कौरवों के नाश की बात को हम लोग तो ईश्वरीय इच्छा और अमिट भावी समझते हैं। वह किसी के रोके रुक भी नहीं सकता था। क्योंकि भावी को कोई टालना चाहे तो वह टल नहीं सकती। महाराज ! अठारह अक्षौहिणी सेनाएँ एकत्र हुईं और अठारह दिवस ही में कौरवों के शूरवीर भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कर्ण, सात्यकि धृष्टद्युम्न, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव के हाथों से नष्ट कर डाली गयीं। ऐसा प्रबल विनाश होनहार को छोड़ और कोई नहीं कर सकता। जहाँ क्षत्रियों का कर्त्तव्य है कि, युद्ध में शत्रु को नष्ट करे वहाँ ही क्षत्रियों का युद्ध-क्षेत्र में मरना भी कर्त्तव्य माना गया है। विद्या, पराक्रम और भुजबल

सम्पन्न पुरुषों के हाथ से सम्पूर्ण पृथिवी के लोग, घोड़ों और हाथियों समेत मारे गये हैं। उन महाबली राजाओं के मारे जाने में न तो आपका पुत्र ही कारण है, न आप, न आपकी सेना के लोग, न शकुनि और न कर्ण ही। कौरवों और सहस्रों राजाओं का मारा जाना होनी के अधीन था। इसमें कोई और कुछ भी नहीं कह सकता। आप इस सारे जगत् के पूज्य प्रभु हैं। इसीसे हम आपके पुत्र को धर्मात्मा जानते हैं। राजा दुर्योधन अपने साथियों सहित वीरोचित लोकों को प्राप्त हो और ऋषियों से आज्ञप्त हो स्वर्गसुखों को भोगें। आप भी धर्म में स्थित हो, समस्त धर्मानुष्ठानों और वेदपाठ के पुण्य को पावेंगे। क्योंकि आप भली भाँति धर्मानुष्ठान करने वाले हैं। आपकी ओर से पाण्डवों पर हमारा दृष्टि रखना व्यर्थ है। क्योंकि जब वे स्वयं स्वर्ग तक की रक्षा कर सकते हैं, तब पृथिवी की रक्षा करना उनके लिये कौन बड़ी बात है।

हे धृतराष्ट्र! समस्त प्रजाजन सुख दुःख में पाण्डवों का साथ देंगे। क्योंकि उन लोगों का बड़ा अच्छा स्वभाव है। महाराज युधिष्ठिर ब्राह्मणों को देने योग्य समस्त दान देते हैं और जो वृत्ति भरतादि राजाओं के समय से जारी है, वह बहुओं बेटियों को बराबर मिलती रही है। महाराज युधिष्ठिर साहसी हैं, दूरदर्शी हैं, उनका स्वभाव मृदुल है। वे इन्द्रियों को अपने वश में रखने वाले हैं। उनके मंत्री कुबेर के समान धनी हैं और कुलीन तथा बड़े बुद्धिमान हैं। महाराज युधिष्ठिर स्वयं भी बड़े बुद्धिमान हैं। वे सब के मित्र हैं, बड़े दयालु हैं और बड़े धर्मात्मा हैं। वे सब को समान दृष्टि से देखते और समान भाव से सब का पालन करते हैं। हमें विश्वास है कि, धर्मपुत्र के उत्सङ्ग में रह, भीमार्जुन भी हमारा अप्रिय नहीं करेंगे। पुरवासियों की बढ़ती करने में प्रवृत्त एवं पराक्रमी महात्मा पाण्डव, सीधे के साथ सीधे और टेढ़े के साथ टेढ़े हैं। कुन्ती, द्रौपदी, उलूपी, और सुभद्रा की ओर से भी हमें किसी अप्रिय कार्य का खटका नहीं है। आपने हमारे प्रति जो प्रीति दिखलायी है और युधिष्ठिर ने उसमें जो वृद्धि की है, उसको क्या पुरवासी

और क्या जनपद्वासी—कभी भूल नहीं सकते। महात्मा एवं धर्मात्मा कुन्तीनन्दन अधर्मियों का भी पालन करेंगे। हे राजन्! आप युधिष्ठिर की ओर से बेखटके हो कर, धर्मानुष्ठान करें। हे पुरुषोत्तम! हम सब आपके प्रति सम्मान प्रदर्शित करते हैं।

वैशम्पायन जी कहने लगे—हे जनमेजय! उस ब्राह्मण ने धर्मतः (मुख देखी नहीं) महाराज धृतराष्ट्र की बड़ी प्रशंसा की और उनका कहना माना। तब धृतराष्ट्र ने उनकी प्रशंसा की और उनका सम्मान कर उन्हें बिदा किया। फिर गान्धारी सहित धृतराष्ट्र अपने भवन में गये। वहाँ जा रात बीतने पर उन्होंने जो किया उसका वर्णन आगे के अध्याय में किया गया है।

ग्यारहवाँ अध्याय

धृतराष्ट्र की प्रेरणा से विदुर का युधिष्ठिर के निकट गमन

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! जब रात बीती और सवेरा हुआ; तब धृतराष्ट्र ने विदुर को युधिष्ठिर के पास भेजा। विदुर जी ने राजा युधिष्ठिर के पास जा उनसे कहा—वनवास के लिये दीक्षित महाराज धृतराष्ट्र इसी कार्तिकी पूर्णिमा को वनयात्रा करेंगे। जाने के पूर्व वे भीष्म, द्रोणाचार्य, सोमदत्त, बाल्हीक, अपने समस्त पुत्रों तथा अपने अन्यान्य सगे सम्बन्धियों का, जो युद्ध में मारे गये हैं, श्राद्ध किया चाहते हैं। यदि आप अनुमति दें तो उनकी इच्छा जयद्रथ का श्राद्ध करने की भी है।

विदुर जी के वचन सुन और हर्षित हो, राजा युधिष्ठिर ने तथा अर्जुन ने महाराज धृतराष्ट्र के विचार की प्रशंसा की; किन्तु दुर्योधन के अत्याचारों को स्मरण कर, भीमसेन ने विदुर जी के कथन का विरोध किया। तब अर्जुन ने धीरे से भीमसेन से कहा—हमारे बूढ़े चाचा धृतराष्ट्र अब सदा के लिये वन को जाने वाले हैं। जाने के पूर्व वे अपने सगे सम्बन्धियों का श्राद्ध करना चाहते हैं। आपके पराक्रम से उपार्जित धन वे भीष्मादि के श्राद्ध में व्यय करना

चाहते हैं। अतः आप उन्हें ऐसा करने की आज्ञा दें। जिन महाराज धृतराष्ट्र से किसी समय हम प्रार्थना करते थे, यह प्रारब्ध की बात है कि, वे आज हम लोगों से प्रार्थना कर रहे हैं। यह समय का उलट फेर है कि, अन्य लोगों के हाथ से जिनके पुत्र पौत्रादिक मारे गये, वे सम्पूर्ण पृथिवी के अधीश्वर धृतराष्ट्र वन को जा रहे हैं। हे पुरुषोत्तम ! इस समय धन देने के सिवाय और किसी बात पर विचार करना उचित नहीं है। यदि ऐसा न किया तो केवल हम लोगों को पाप ही न लगेगा, बल्कि हमारी सब की बड़ी बदनामी भी होगी। आपको अपने भाई युधिष्ठिर से शिक्षा लेनी चाहिये। इस समय आपका पद देने का है लेने का नहीं।

अर्जुन के इन विचारों की धर्मराज ने प्रशंसा की। तब क्रोध में भरे भीमसेन बोले—मेरा अभिप्राय यह नहीं है कि, श्राद्ध न किया जाय; किन्तु मैं चाहता हूँ कि, हम लोग भीष्म का श्राद्ध करें। राजा सोमदत्त, भूरिश्रवा, राजर्षि बाल्हीक, महात्मा द्रोणाचार्य तथा अन्यान्य रिश्तेदारों का श्राद्ध हम लोग करें। कुन्ती देवी कर्ण का श्राद्ध करें। मैं तो केवल राजा धृतराष्ट्र द्वारा इन लोगों के श्राद्ध किये जाने का विरोध करता हूँ। जिन कुलकलङ्कों से इस पृथिवी का नाश हुआ है; वे दुर्योधनादिक परलोक में भी दुःख भोगें—मैं यही चाहता हूँ। आप बारह वर्ष की शत्रुता और द्रौपदी का शोक बढ़ाने वाले महादारुण अज्ञातवास के दुःख भूल कर, क्योंकर चुप हैं ? उस समय धृतराष्ट्र का स्नेह कहाँ चला गया था, जिस समय उसने हमारा तिरस्कार किया था ? जब कृष्ण मृगचर्म ओढ़ और भूषण वसन हीन हो, द्रौपदी को लिये हुए तुम धृतराष्ट्र के पास गये; तब द्रोणाचार्य, भीष्म और सोमदत्त कहाँ चले गये थे ? जब तुमने तेरह वर्षों तक वनवास कर, वन्य फल मूलों से अपना पेट भरा था, तब आपके चचा के पितृत्वपने का स्नेह कहाँ था ? राजन् ! आप क्या वह बात भूल गये, जब इस कुलकलङ्क दुर्बुद्धि ने विदुर जी से व्यग्र हो पूँछा था कि, इस दाँव में हमारे हाथ क्या लगा ?

भीमसेन की इन जलीकटी बातें युधिष्ठिर को बहुत बुरी मालुम पड़ीं। उन्होंने भीम को झिड़का और कहा, बस चुप रहो।

बारहवाँ अध्याय

पाण्डव और विदुर

अर्जुन ने कहा—भीमसेन ! आप मेरे बड़े भाई और पूज्य हैं। मैं आपसे अन्यथा बात कहने का साहस नहीं कर सकता, किन्तु यह अवश्य कहूँगा कि, राजर्षि धृतराष्ट्र हम लोगों के लिये सर्वथा पूज्य हैं। मर्यादा के भीतर रहने वाले, साधु जन दूसरों के अपराधों को भूल जाया करते हैं किन्तु उपकारों को नहीं भूलते।

कुन्तीनन्दन धर्मात्मा युधिष्ठिर ने अर्जुन के इन वचनों को सुन, विदुर जी से कहा—आप मेरी ओर से महाराज धृतराष्ट्र से जा कर कहिये कि, पुत्रों के श्राद्ध कर्म में जितना धन अपेक्षित हो वे लें—मैं देने को तैयार हूँ। महाभाग्यवान् भीष्मादिक समस्त नाते रिश्तेदारों के श्राद्ध के लिये मेरे धनागार से धन दिया जायगा। भीमसेन को इसके लिये दुःखी न होना चाहिये।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय ! यह कह धर्मराज ने अर्जुन के, उदार विचारों की सराहना की। इस पर भीम ने अर्जुन की ओर टेढ़ी निगाह से देखा। तब विदुर जी से बुद्धिमान् युधिष्ठिर ने कहा—राजा धृतराष्ट्र, भीमसेन पर अप्रसन्न न हों। बुद्धिमान् भीम ने वन में वर्षा, बर्फ और धूप आदि अनेक प्रकार के कष्ट सहे थे। उन्हें यह अभी तक भूल नहीं सका। आप मेरी ओर से राजा धृतराष्ट्र से कह दीजियेगा कि, जितना धन वे चाहें, मेरे धनागार से ले सकते हैं। भीमसेन के क्रोध की ओर वे ध्यान न दें। हे विदुर जी ! आप राजा धृतराष्ट्र को इस प्रकार समझा दें कि,

जो धन मेरे और अर्जुन के पास है, उसके मालिक राजा धृतराष्ट्र स्वयं हैं। वे भले ही उसे वेदपाठी ब्राह्मणों को दे डालें, या जैसे चाहे वैसे उसे खर्च करें। वे अपने पुत्रों और रिश्तेदारों के ऋण से उऋण हों। धन तो धन— मेरा यह शरीर भी उन्हींके अधीन है। इसे वे निश्चय ही जाने।

तेरहवाँ अध्याय

विदुर और धृतराष्ट्र की बातचीत

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! महाराज युधिष्ठिर के इन वचनों को सुन, विदुर जी ने जा धृतराष्ट्र से कहा—राजन्! मैंने आपका सँदेसा युधिष्ठिर से कहा—उसे सुन परमतेजस्वी युधिष्ठिर ने आपके वचनों की बड़ी प्रशंसा की। महातपस्वी अर्जुन ने तो अपना सर्वस्व और अपने प्राण तक आपकी भेंट कर दिये हैं। राजर्षे! आपका पुत्र धर्मराज अपना समस्त राज्य, अपने प्राण, अपना धन और अपना सर्वस्व आपको भेंट करता है। किन्तु पिछले कष्टों को स्मरण कर भीम ने लंबी साँसें ले, दुःख के साथ आपके प्रस्ताव को अस्वीकृत किया। इस पर युधिष्ठिर और अर्जुन ने भीमसेन को समयोचित शिक्षा दी और आपकी आज्ञा पालन करने के लिये उसे तैयार किया है। धर्मराज ने आपसे मेरे द्वारा कहलाया है कि, आप भीमसेन की बातों पर ध्यान न दें। राजन्! क्षात्रधर्म कुछ ऐसा ही है; भीमसेन की मनःप्रवृत्ति युद्ध और क्षात्रधर्म की ओर विशेष है। अर्जुन ने कई बार भीमसेन पर प्रसन्न होने के लिये आपसे प्रार्थना की है और कहा है कि— मेरे सर्वस्व के आप ही मालिक हैं। उस धन में से हे राजन्! आप जितना चाहें खर्च करें। देवपूजन तथा श्राद्धकर्म में देने के लिये गौ, रत्न, दास, दासी, भेड़, बकरी—जो चाहें सो ले लें। आप यत्र तत्र दीन दुःखियों और लँगड़े, लूले, अपाहिजों के लिये, विदुर जी की मारफत आतुरालय स्थापित करवावें। गौओं के लिये प्याऊ बनवावें तथा अन्य जो धर्मकार्य

आप करना चाहें करें। युधिष्ठिर और अर्जुन ने मुझसे आग्रह के साथ कहा है कि, यहाँ जो कुछ आप मुनासिब समझें उसे शीघ्र कर डालें।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय ! जब विदुर जी ने इस प्रकार कहा, तब धृतराष्ट्र ने पाण्डवों को आशीर्वाद दे, कार्तिकी पूर्णिमा को महादान देने का अपने मन में निश्चय किया।

चौदहवाँ अध्याय

धृतराष्ट्र द्वारा कुरुक्षेत्र में मारे गये लोगों का श्राद्ध किया जाना

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय ! विदुर के मुख से युधिष्ठिर और अर्जुन का सँदेसा सुन, धृतराष्ट्र ने उन दोनों की प्रशंसा की और वे उन पर प्रसन्न हुए। फिर उन्होंने अपने पुत्रों के तथा अपने अन्य आत्मियों के श्राद्ध में देने के लिये, ऋषिश्रेष्ठ हज़ारों ब्राह्मणों के खाने पीने का सामान तैयार करवाया। भाँति भाँति की सवारियाँ, पोशाकें, सोना, चाँदी, मणिमुक्ता, रत्न, दास, दासी, भेड़, बकरी, सूती वस्त्र, ऊनी वस्त्र, गाँव, खेत, गहनों से सजाये हाथी, घोड़े, कन्या और श्रेष्ठ स्त्रियों को देने की व्यवस्था की। राजा धृतराष्ट्र ने प्रत्येक मृतात्मा का नाम ले कर, श्राद्ध में दान दिया। उन्होंने द्रोणाचार्य, भीष्म पितामह, सोमदत्त, बाल्हीक, जयद्रथ आदि समस्त नाते रिश्तेदारों तथा दुर्योधनादि समस्त पुत्रों के नाम ले लेकर श्राद्ध किया। युधिष्ठिर की सलाह से इस श्राद्धरूपी यज्ञ में विपुल धनराशि दान में दी गयी। सांख्यक (गिनती करने वाले), लेखक (मोहर्रिर) युधिष्ठिर के आदेशानुसार बारंबार राजा धृतराष्ट्र से पूँछते थे कि, आज्ञा दीजिये और कौन वस्तु ब्राह्मणों को दी जाय। यहाँ सब वस्तुएँ मौजूद हैं। इस पर राजा धृतराष्ट्र जो आज्ञा देते, उसका पालन तत्क्षण होता था। केवल यही नहीं प्रत्युत जिसे धृतराष्ट्र

सौ रुपये दिलाते, उसे युधिष्ठिर के आदेशानुसार एक हज़ार और एक हज़ार की जगह दस हज़ार रुपये दान में दिये जाते थे। राजारूपी बादलों ने धनरूपी जल वृष्टि से वेदपाठी ब्राह्मणों को वैसे ही तृप्त किया जैसे जलवृष्टि से खेत्र सींचे जाते हैं।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! तदनन्तर धृतराष्ट्र ने ब्राह्मणों को भोजन करा कर तृप्त किया। धृतराष्ट्र रूपी नौका से युक्त युधिष्ठिर रूपी महासागर ने जगत् को व्याप्त कर दिया। इस महासागर, में वस्त्र, धन और रत्न तो लहरें थीं जो मृदङ्गों की गूँज से मुखरित हो रही थीं। गौ, घोड़े आदि मगर मत्स्य स्थानीय थे। रत्नों की खानों से युक्त, माफी के ग्राम इस समुद्र के द्वीप थे। यह समुद्र मणियों और सुवर्ण रूपी जल से परिपूर्ण था। राजा धृतराष्ट्र ने अपने पुत्रों और पौत्रों के श्राद्ध के साथ ही साथ अपना और गान्धारी का भी श्राद्ध किया। जब धृतराष्ट्र दान देते देते थक गये, तब उन्होंने दानयज्ञ समाप्त किया। इस दान रूपी महायज्ञ में नट नर्तक नाचते गाते और बाजे बजाते थे। इसमें खाने पीने की वस्तुओं की रेल पेल थी। दक्षिणा-दान का तो पूँछना ही क्या था?

वैशम्पायन जी बोले—इस प्रकार महाराज धृतराष्ट्र दस दिवस तक दान देते देते, पुत्रों पौत्रों के ऋण से उऋण हुए।

पन्द्रहवाँ अध्याय

वनगमन की तैयारी

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! अम्बिकापुत्र बुद्धिमान् धृतराष्ट्र ने, वनवास का समय निश्चय कर, वीरश्रेष्ठ पाण्डवों को बुला कर विधिपूर्वक गान्धारी सहित उन्हें आशीर्वाद दिया। तदनन्तर कार्तिकी पूर्णिमा के दिन वेदपारग ब्राह्मणों द्वारा उदवसनीय नामक यज्ञानुष्ठान करवा कर,

बल्कल और काले मृग का चर्म पहिना। फिर बहुओं से घिरे हुए धृतराष्ट्र और गान्धारी, अग्निहोत्र के अग्नि को आगे कर, घर से निकले। उस समय कुरुओं और पाण्डवों की तथा अन्यान्य स्त्रियाँ रोने लगीं। राजा धृतराष्ट्र ने खीलों और तरह तरह के विचित्र फूलों से अपने भवन का पूजन किया और सेवकों को पारितोषिक आदि से प्रसन्न कर, उन्हें बिदा किया। तदनन्तर वे स्वयं वहाँ से प्रस्थानित हुए।

उनके पीछे हाथ जोड़े हुए गद्गद वाणी से चिल्ला कर युधिष्ठिर यह कहते हुए कि "तात आप कहाँ जाते हैं" चले। कुछ दूर जा कर युधिष्ठिर मूर्छित हो गिर पड़े। तब युधिष्ठिर की तरह शोकसन्तप्त और श्वासोच्छ्वास लेते हुए भरतर्षभ अर्जुन ने युधिष्ठिर से कहा—ऐसा मत करो। यह कह और युधिष्ठिर को पृथिवी से उठा, अर्जुन अति पीड़ित हुए। वीर भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव, विदुर, सञ्जय, युयुत्सु, कृपाचार्य, धौम्य और अश्रुओं से गद्गदकण्ठ बहुत से ब्राह्मण भी धृतराष्ट्र के पीछे पीछे चले। कुन्ती सब के आगे थी। कुन्ती के कन्धे पर हाथ रखे गान्धारी अपनी आँखों में पट्टी बाँधे चल रही थी। गान्धारी के कंधे पर, राजा धृतराष्ट्र हाथ रखे हुए चले। कृष्णा द्रौपदी, सुभद्रा, उत्तरा, उलूपी, चित्राङ्गदा प्रभृति अन्यान्य स्त्रियाँ भी अपने बन्धुजनों के साथ, राजा धृतराष्ट्र के पीछे पीछे चलीं। इस समय वे स्त्रियाँ कुररी पक्षी की तरह उच्च स्वर से विलाप करती हुई रो रही थीं। उन स्त्रियों के पीछे चारों ओर से दौड़ कर, बहुत सी ब्राह्मणियाँ, क्षत्रियाणियाँ, बनैनियाँ और शूद्रा स्त्रियाँ भी होलीं।

जिस समय राजा धृतराष्ट्र हस्तिनापुर से वन जाने लगे, उस समय वहाँ रहने वाले लोग वैसे ही दुःखी हुए, जैसे वे जुए में हारे हुए पाण्डवों के वन जाने के समय दुःखी हुए थे। हे राजन्! उस नगर की वे स्त्रियाँ, जिन्हें आज के पूर्व कभी सूर्य अथवा चन्द्र ने भी नहीं देखा था, आज कौरवेन्द्र धृतराष्ट्र की वनयात्रा के समय, शोक से पीड़ित हो, आम सड़क पर चली जा रही थीं।

सोलहवाँ अध्याय

धृतराष्ट्र की वनयात्रा

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! भवनों की अटारियों और भवनों के भीतर, स्त्रियों और पुरुषों का बड़ा कोलाहल हो रहा था। वृद्धावस्था के कारण थरथर काँपते हुए राजा धृतराष्ट्र, उस भीड़ से भरे राजमार्ग पर बड़ी कठनाई से चल पाते थे। बड़ी कठनाई से वे उस भीड़ में हो कर, हस्तिनापुर के वर्द्धमान द्वार में हो कर, नगर के बाहिर पहुँचे। राजा धृतराष्ट्र ने बार बार जनता के लौट जाने की प्रार्थना की। विदुर जी और सञ्जय ने भी धृतराष्ट्र के साथ वन जाने का निश्चय किया। तदनन्तर धृतराष्ट्र ने महारथी कृपाचार्य और युयुत्सु को युधिष्ठिर को सौंप उन्हें लौटा दिया। भीड़ छूट जाने पर, धृतराष्ट्र की आज्ञा से राजा युधिष्ठिर ने स्त्रियों समेत लौटना चाहा और वन को जाती हुई माता कुन्ती से कहा—मैं धृतराष्ट्र के साथ जाता हूँ, आप लौट जाइये। माता! तुम बहुओं को ले कर घर को लौट जाओ। राजा को तपस्विव्रत में स्थित हो वन को जाने दो। किन्तु युधिष्ठिर के इन वचनों को सुन कुन्ती के नेत्र आँसुओं से भर गये किन्तु कुन्ती ने उन पर कुछ ध्यान न दिया और वे गान्धारी का हाथ अपने कंधे पर रखे हुए आगे बढ़ती चली गयीं। कुन्ती ने लौटना स्वीकार न किया। कुन्ती चलते चलते यह बोली—युधिष्ठिर! देखना सहदेव को कुछ कष्ट न हो। इसकी मुझमें और तुममें विशेष भक्ति है। युद्ध से कभी मुख न फेरने वाले कर्ण को मत-भूल जाना। वह वीर युद्ध में निज दुर्बुद्धिता से मारा गया। निश्चय ही मुझ अभागिनी का हृदय बड़ा कठोर है—जो सूर्य के अंश से उत्पन्न अपने पुत्र कर्ण को न देख, सौ टुकड़े नहीं हो जाता। मैं अब कर ही क्या सकती हूँ। यह तो मेरी ही भूल है कि, कर्ण को अपना पुत्र बतला प्रख्यात न किया। हे वीर! तुम अपने उस भाई के निमित्त स्वयं अच्छे अच्छे दान देना और अपने भाइयों से भी दिलवाना। द्रौपदी को प्रसन्न रखना। हे धर्मराज!

इस भीम, अर्जुन और नकुल में पूर्ण विश्वास रखना। वत्स! अब सारा भार तुम्हारे ऊपर आ पड़ा है। मैं तो अब धूलधूसरित शरीर से अपने सास ससुर की पदसेवा करती हुई उनके साथ वन में रहूँगी।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! चिन्तित, दुःखी और शोक से विकल धर्मराज कुछ देर तक मन ही मन सोचते रहे। फिर अपनी माता से बोले—आपने यह क्या निश्चय किया है? मैं आपको वन जाने की आज्ञा देने योग्य नहीं हूँ। मैं तो आपका कृपापात्र आज्ञाकारी पुत्र हूँ। माता! तुम्हींने तो हमें शत्रु से बदला लेने के लिये उत्साहित किया था। तब अब आप हम लोगों को क्यों त्यागती हैं। मैंने तो श्रीकृष्ण के मुख से आपका सँदेसा सुन कर ही राजाओं का वध कर, यह राज्य प्राप्त किया है। आपकी उस समय की वह बुद्धि इस समय कहाँ है, जो अब आप ऐसी बातें कहती हैं। हमें क्षात्रधर्म में स्थित कर, अब आप तो हमें उससे पृथक् करना चाहती हैं। हे यशस्विनि! हम लोगों को और अपनी इन पुत्रवधुओं को यहाँ छोड़ आप दुर्गम वन में किस प्रकार रह सकेंगीं? हे माता! मुझ पर प्रसन्न हो के, वन जाने का विचार त्याग दो।

कुन्ती, अपने पुत्र के इन करुणाव्यञ्जक वचनों को सुनती हुई और आँखों में आँसू भरे हुए, गमन करने लगी। तब भीमसेन ने कहा—माता! जब आपने पुत्र निर्जित इस राज्यभोग पाने का विचार किया था; तब आप की यह बुद्धि कहाँ थी? आप किस लिये, हम लोगों को त्याग कर वन जा रही हैं? यदि आपका यही अभिप्राय था, तो हमारे हाथ से क्यों पृथिवी का संहार करवाया? हमें तो लड़कपन ही से वनवास करना पड़ता था, तब हमें और माद्रीसुत नकुल सहदेव को वन से क्यों बुलवाया था,? हे यशस्विनि! आप प्रसन्न हों और आज वन में न जा कर, धर्मराज के भुजबल से प्राप्त इस ऐश्वर्य को भोगें।

किन्तु कुन्ती ने अपने पुत्रों की इन बातों पर कुछ भी ध्यान न दिया। तब बिलखती और रोती द्रौपदी और सुभद्रा अपनी सास कुन्ती के पीछे

हो ली। वनवास का निश्चय किये हुए कुन्ती बार बार अपने रुदन करते हुए पुत्रों की ओर देखती हुई चली जाती थीं। सेवकों और महल में रहने वाले लोगों के साथ, पाण्डव भी माता के साथ चले जाते थे।

तब अत्यन्त कष्ट के साथ आँसुओं को थाम कुन्ती ने अपने पुत्रों से कहा।

सत्रहवाँ अध्याय

पाँचों पुत्रों के साथ कुन्ती की बातचीत

कुन्ती बोली—हे पाण्डवों! तुम जो कहते हो—सो ठीक है। उस समय मैंने तुमको उत्साहित किया था उसका कारण यह था कि, उस समय तुम लोग जुए में सर्वस्व गँवा चुके थे। राज्य और सुख से भ्रष्ट थे और स्वजनों से सताये गये थे। तुम लोग महाराज पाण्डु की सन्तान हो। तुम लोगों का यश लुप्त न हो—इस लिये मैंने तुमको उत्साहित किया था। इन्द्रादि देवताओं की तरह पराक्रमी होकर, तुम्हें परमुखापेक्षी बन जीवन के दिन न काटने पड़ें—यह विचार कर ही मैंने तुम्हें उत्साहित किया था। हे युधिष्ठिर! तुम धार्मिक हो। तुम्हें फिर उन लोगों के बीच रह कर क्लेश न भोगने पड़ें—यह सोच कर ही मैंने तुम्हें उस समय उत्साहित किया था, दस सहस्र गजों के समान बलवान भीमसेन के विनाश की आशङ्का से मैंने तुम्हें तब उत्साहित किया था। भीमसेन के इन्द्र सदृश भाई अर्जुन कहीं हताश न हों—इसलिये मैंने तुम्हें उत्साहित किया था। बड़ों की आज्ञा में रहने वाले नकुल और सहदेव को भूखों न रहना पड़े—यह विचार कर ही मैंने तुम्हें उत्साहित किया था। विशालनयनी द्रौपदी की पुनः भरी सभा में विडंबना बचाने के लिये, मैंने तुम लोगों को उत्साहित किया था।

हे भीम ! जब दुश्शासन ने मूर्खतावश, तुम्हारी आँखों के सामने केले के पेड़ की तरह थरथर काँपती, रजस्वला, जुए में हारी हुई इस द्रौपदी को दासी कह कर भरी सभा में चोटी पकड़ कर घसीटा—तब ही मैंने तो, इस कुरुकुल को पराजित हुआ समझ लिया था। जब कुररी की तरह विलाप करती हुई द्रौपदी सभा में खड़ी थी, तब मेरे ससुर आदि कौरवों को बड़ा दुःख हुआ था। जिस समय हतबुद्धि दुश्शासन ने द्रौपदी की चोटी पकड़ कर, इसे घसीटा, उस समय मैं मुग्ध हो गयी थी। उस समय मैंने विदुला के कथनानुसार तुम लोगों को उत्साहित किया था। पाण्डु के वंश को विनाश से बचाने के लिये ही मैंने तुम लोगों को उत्साहित किया था। मैं अपने पति की अमलदारी में राज्यसुख भली भाँति भोग चुकी हूँ। सब प्रकार के महादान कर चुकी हूँ। विधिपूर्वक सोमपान भी मैं कर चुकी हूँ अर्थात् यज्ञादि धर्मानुष्ठानों को कर चुकी हूँ। मैंने श्रीकृष्ण द्वारा तुम लोगों के पास जो संदेसा भेजा था, वह अपने सुखभोग के लिये नहीं—बल्कि विदुला के मतानुसार तुम लोगों के राज्य-सुख-लाभ के लिये भेजा था। मैंने कभी भी पुत्र द्वारा उपार्जित राज्यसुख भोग की अपने मन में कल्पना भी नहीं की। मैं तो तपोबल से पुण्यप्रद पतिलोक में जाने की कामना करती हूँ। इसी लिये मैं वनवासी इन सास ससुर की चरणसेवा कर, तपोबल से अपना शरीर सुखा डालूँगी। अतः तुम भीमसेनादि को साथ ले लौट जाओ। मैं तुम्हें आशीर्वाद देती हूँ कि, तुम्हारी बुद्धि सदा धर्म में रत रहै और तुम्हारे मन में सदा ऊँचे विचार उत्पन्न हुआ करें।

अठारहवाँ अध्याय

कुन्ती और गान्धारी सहित धृतराष्ट्र की वनयात्रा

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय ! कुन्ती के वचनों को सुन पाण्डव शर्मा गये और द्रौपदी आदि स्त्रियों के साथ वे लौट आये। लौटते समय

स्त्रियों ने उच्च स्वर से रुदन किया। पाण्डवों ने राजा धृतराष्ट्र की परिक्रमा कर उन्हें प्रणाम किया। फिर कुन्ती के लौटाने का उद्योग त्याग, वे स्वयं लौट आये। तदनन्तर अम्बिकानन्दन महातपा धृतराष्ट्र ने गान्धारी और विदुर को खड़ा कर उनसे कहा—अच्छा हो, यदि युधिष्ठिर की माता, लौट जाय। क्योंकि युधिष्ठिर ने जो कहा वह ठीक है। कदाचित् ही कोई ऐसी मूर्खा माता हो जो इतने बड़े ऐश्वर्यशाली पुत्रों को त्याग, दुर्गम वन में जाना पसंद करे। हे गान्धारी! मेरी बात मानो और इस बहू (कुन्ती) को जाने की आज्ञा दो। मैं इसकी सेवा से इस पर बहुत प्रसन्न हूँ। इस पर गान्धारी ने अपने पति के अभिप्राय को ले, अपनी ओर से कुन्ती को बहुत समझाया और लौट जाने का आग्रह भी किया; किन्तु दृढ़प्रतिज्ञ कुन्ती को गान्धारी लौटा न सकी। यह देख कौरवों की स्त्रियाँ रोने लगीं और पाण्डवों को लौटते देख, स्वयं भी लौट आयीं। तब राजा धृतराष्ट्र वन की ओर चल दिये। सवारियों पर सवार हो, स्त्रियों सहित पाण्डव नगर में पहुँचे। हस्तिनापुरवासी आबालवृद्धों के मुख पर उदासी छाई हुई थी। कुन्ती के बिछोह से पाण्डवों का उत्साह मंद पड़ गया और उन्हें माता के वियोग का दुःख बहुत व्यापा। वे वैसे ही दुःखी हुए जैसे माता से बिछुड़ा हुआ बछड़ा दुःखी होता है।

उधर धृतराष्ट्र बहुत दूर चल कर गङ्गा के तट पर जा पहुँचे और वहीं टिक गये। वह स्थान ऋषियों का तपोवन था। उसमें वेदपारग ऋषि रहते थे और उस समय जगह जगह अग्निहोत्र का अग्नि जल रहा था। इससे उस तपोवन की शोभा बढ़ गयी थी। अग्निहोत्र का काल उपस्थित देख, धृतराष्ट्र ने भी अग्निहोत्र किया, सन्ध्योपासन कर, सूर्य को अर्घ्य दे उपस्थान किया। इस बीच में संजय और विदुर ने तृणों को एकत्र कर, धृतराष्ट्र के लिये तृणशय्या बनायी। उनके शय्या के पास ही गान्धारी के लिये भी तृणशय्या बनायी। युधिष्ठिरजननी कुन्ती ने गान्धारी के निकट ही अपना आसन जमाया। विदुर आदि भी उनके निकट ही बैठे। जो

याचक और ब्राह्मण उनके साथ थे, उन लोगों ने भी अपने योग्य स्थानों पर अपने आसन लगा लिये। धृतराष्ट्र की यह प्रथम ब्राह्मी रात्रि—जिसमें ऋषियों के वेदपाठ की ध्वनि होती थी और अग्नि प्रज्वलित था—समाप्त हुई। सबेरा हुआ। धृतराष्ट्र प्रातःकृत्य में लगे। सन्ध्या वन्दनादि से निवृत्त हो, उन्होंने अग्निहोत्र किया। फिर व्रत धारण कर वे, उत्तर की ओर चल दिये। जनपदवासियों और पुरवासियों के लिये चिन्तित धृतराष्ट्र का प्रथम यह निवास उनको बड़ा कष्टकर जान पड़ा।

उन्नीसवाँ अध्याय

रास्ते के तीर्थ

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! विदुर जी की सम्मति के अनुसार धृतराष्ट्र ने, श्रीगङ्गा जी के तटवर्ती, पवित्र लोगों के रहने योग्य परम पवित्र स्थान पर निवास किया। जब ये लोग वहाँ ठहरे हुए थे, तब इनके पास इनसे मिलने के लिये उस वन में आस पास रहने वाले बहुत से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र आये। राजा धृतराष्ट्र ने उनके साथ विविध कथा प्रसङ्ग छेड़, बातचीत की। वे लोग धृतराष्ट्र की बातें सुन बहुत प्रसन्न हुए। तब शिष्यों सहित उनका बहुमान कर, उन्हें विदा किया। सायंकाल के समय वहाँ पहुँच गान्धारी सहित धृतराष्ट्र ने गङ्गास्नान किये। विदुर आदि उनके साथियों ने भी गङ्गा में स्नान कर जपादि कर्म किये। तब स्नान किये हुए बूढ़े धृतराष्ट्र और गान्धारी को कुन्ती गङ्गातट पर लिवा ले गयी। वहाँ राजा के साथ वाले लोगों ने एक वेदी बनायी। उस पर अग्नि स्थापित कर धृतराष्ट्र ने हवन किया। वहाँ से संयमी राजा धृतराष्ट्र अपने साथियों सहित कुरुक्षेत्र गये। वहाँ शतयूप नामक राजर्षि से उनकी भेंट हुई। वे राजर्षि पूर्वकाल में केकय देश के राजा थे। किन्तु अब वे अपने पुत्र

की शान्ति नष्ट हो गयी। पुत्रों से रहित द्रौपदी और सुभद्रा भी उदास रहती थी। आपके उन पूर्वजों को, उत्तरा के पुत्र और आपके पिता परीक्षित को देख, कुछ कुछ ढाँढस बँधा था।

बाइसवाँ अध्याय

माता के वियोग में युधिष्ठिर का विलाप

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! माता को सदा प्रसन्न रखने वाले वीर एवं नरोत्तम पाण्डव माता की याद कर बड़े दुःखी हुए। जब माता पास थी, तब वे लोग राजकाज खूब मन लगा कर किया करते थे; किन्तु अब उनका मन राजकाज में नहीं लगता था। न तो उनको कोई वस्तु अच्छी लगती थी और न वे किसी से बातचीत करना ही पसंद करते थे। सागर सदृश गम्भीर, किन्तु शोक के कारण अपहृतज्ञान, अजेय पाण्डव हतचेतन से हो रहे थे। उनको सदा इसी बात की चिन्ता लगी रहती कि, उनकी कृशाङ्गी माता कुन्ती, राजा धृतराष्ट्र और रानी गान्धारी की सेवा कैसे कर पाती होगी। हतपुत्र और आश्रयहीन अकेले राजा अपनी रानी सहित, वन्यहिंस्र पशुओं के आवासस्थल वन में कैसे रहते होंगे। भाग्यवती और हत-बान्धवा देवी गान्धारी निर्जन वन में अपने अन्धे पति के साथ कैसे रहती होगी।

जब पाण्डव इस प्रकार चिन्तित हुए; तब धृतराष्ट्र के दर्शन करने की इच्छा से वे लोग वन जाने को उद्यत हुए। उस समय सहदेव ने युधिष्ठिर को प्रणाम कर उनसे कहा—यह बड़ी प्रसन्नता की बात है जो आपने वन जाना निश्चय किया है। हे राजेन्द्र! आपकी ढलती अवस्था देख, वनगमन के लिये आपसे कहने की मेरी हिम्मत न पड़ी। किन्तु वही बात आज मैं प्रत्यक्ष देखता हूँ। मैं अपना बड़ा भाग्य समझता हूँ कि, मैं

वन में चल शीघ्र ही जटाधारिणी, वृद्धा तपस्विनी तथा काँस और कुसों से घायल शरीर एवं धृतराष्ट्र-गान्धारी की सेवा में संलग्न अपनी माता कुन्ती के दर्शन करूँगा। लड़कपन से महलों में पली और अत्यन्त सुख चैन से रहने वाली माता कुन्ती को वन में अति दुःखावस्था में अति श्रान्त मैं कब देखूँगा। हे भरतर्षभ! निस्सन्देह, मनुष्यों के कर्मादिजनित फल नश्वर हैं। क्योंकि यदि ऐसा न होता तो राजपुत्री हो कर कुन्ती वन में महादुःख भोगती हुई वहाँ जा कर क्यों रहती।

नारीश्रेष्ठ द्रौपदी ने सहदेव के इन वचनों को सुन, महाराज युधिष्ठिर को प्रणाम किया और सम्मानपूर्वक उनसे कहने लगी—हे राजन्! मुझे उन देवी के दर्शन कब मिलेंगे। यदि वे जीती जागती हुई, तो उनका स्नेह मेरे ऊपर ज्यों का त्यों बना होगा। हे राजेन्द्र! भगवान् करें आपके विचार सदा धर्म की ओर ही बने रहैं, जिससे हम सब का भी कल्याण हो। महाराज आप माता कुन्ती, गान्धारी और ससुर के दर्शन करने की इच्छा रखने वाली स्त्रियों में मुझे सब से आगे समझें।

वैशम्पायन जी बोले—हे भरतर्षभ! देवी द्रौपदी के वचनों को सुन महाराज युधिष्ठिर ने सेना के प्रधान को बुला आज्ञा दी कि, मेरी चतुरङ्गिणी सेना को यात्रा के लिये शीघ्र तैयार करो। मैं वनवासी महाराज धृतराष्ट्र के दर्शन करने को जाऊँगा। फिर युधिष्ठिर ने अन्तःपुरवासी सेवकों को अपनी निज की पालकी आदि सवारियों को तैयार किये जाने की आज्ञा दी। छकड़ों में सामान और धन लाद कर वे कुरुक्षेत्र की ओर रवाना हुए। उन छकड़ों के साथ अनेक नौकर चाकर और कारीगर भी गये। युधिष्ठिर ने यह घोषणा करवा दी कि, जो पुरवासी महाराज धृतराष्ट्र के दर्शन करने चलना चाहे वह चल सकता है। रसोइये छकड़ों पर भक्ष्य भोज्य की सामग्री लाद कर चलें। नगर भर में तुरन्त यह सूचना दे दी जाय कि, हमारी सवारी कल सवेरे यहाँ से रवाना होगी। आगे जा नौकर चाकर रास्ते में ठहरने का प्रबन्ध करें।

महाराज युधिष्ठिर ने इस प्रकार यात्रा की तैयारियाँ करने की आज्ञा दी और अगले दिन सबेरे ही वे भाइयों के साथ कुरुक्षेत्र के लिये रवाना हो गये। उनकी सवारी के आगे स्त्रियाँ और वृद्ध जन थे। राजा युधिष्ठिर पुरवासियों की प्रतीक्षा में पाँच दिवस तक राजधानी के बाहिर ठहरे रहे। तदनन्तर उन्होंने वन की ओर प्रस्थान किया।

तेइसवाँ अध्याय

युधिष्ठिर की पुरवासियों सहित वनयात्रा

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! तदनन्तर भरतसत्तम राजा युधिष्ठिर ने, लोकपाल सदृश अर्जुनादि से रक्षित सेना को आगे बढ़ने की आज्ञा दी। आज्ञा होते ही—घोड़े जोतो, घोड़ों पर साज लगाओ आदि वचन कह कह कर, लोगों ने बड़ा ही हल्ला किया। कुछ देर बाद प्रासधारी पैदल सिपाहियों के बीच कोई घोड़े पर, कोई प्रज्वलित अग्नि सदृश चमचमाते रथ पर, कोई हाथी पर और कोई ऊँट पर सवार हो, वहाँ से रवाना हुए। धृतराष्ट्र के दर्शनों की कामना से बहुत से पुरवासी और जनपदवासी सवारियों में बैठ महाराज युधिष्ठिर के पीछे हो लिये। महाराज युधिष्ठिर की आज्ञा से गौतमपुत्र कृपाचार्य सेनानायक बन कुरुक्षेत्र की ओर रवाना हुए। उनके पीछे युधिष्ठिर की सवारी थी। वे द्विजों से घिरे हुए थे। सूत मागध उनके अगल बगल विरुदावली का बखान करते हुए चले जाते थे। उनके ऊपर सफेद छत्र तना हुआ था। इस प्रकार वे एक विशाल रथ पर सवार हो चले। भीमकर्मा पवननन्दन भीमसेन एक हाथी पर सवार थे और उनके हाथी के अगल बगल, धनुषादि युद्धोपयोगी यंत्रादि से सुसज्जित गजसेना चल रही थी। सुन्दर वस्त्राभूषणों से सुसज्जित नकुल और सहदेव घोड़ों पर सवार थे और उनके साथ घुड़सवार सेना थी। इन

घोड़ों के सवार ध्वजाओं और कवचों से अलङ्कृत थे। जितेन्द्रिय अर्जुन एक रथ पर सवार थे और उनका रथ युधिष्ठिर के रथ के पीछे पीछे जा रहा था। उनके रथ में सुन्दर सफेद रंग के घोड़े जुते हुए थे और उनका रथ सूर्य की तरह दमक रहा था। अन्तःपुरवासिनी द्रौपदी आदि स्त्रियाँ पालकियों में बैठ कर और लोगों को धनादि बाँटती हुई चली जाती थीं। उस समय राजा युधिष्ठिर की सवारी का जलूस बड़ा शोभायमान जान पड़ता था। लोग बाँसुरी और वीणाएँ बजाते चले जाते थे। रास्ते में जहाँ किसी ऐसी नदी या सरोवर को देखते जहाँ क्रीड़ा करने की सुविधा होती, वहीं वे ठहर जाते थे। महाराज युधिष्ठिर के आदेशानुसार राजधानी की रक्षा के लिये युयुत्सु और पुरोहित धौम्य हस्तिनापुर ही में रहे।

क्रमशः चलते चलते महाराज युधिष्ठिर की सवारी कुरुक्षेत्र में पहुँची। मार्ग में उन्हें महापवित्रतोया यमुना नदी पार करनी पड़ी थी। महाराज युधिष्ठिर को दूर ही से बुद्धिमान राजर्षि शतयूप और धृतराष्ट्र का आश्रम देख पड़ा। तदनन्तर सब लोग हर्षित हो और हर्षसूचक कोलाहल करते हुए, उस वन में गये।

चौबीसवाँ अध्याय

वन में धृतराष्ट्र और युधिष्ठिर का साक्षात्कार

वैशम्पायन जी बोले—हे राजा जनमेजय! आश्रम को देख पाण्डवों ने सवारियाँ छोड़ दीं और पैदल चल कर वे उस आश्रम मे पहुँचे। समस्त सैनिक प्रजाजन और राजपरिवार की स्त्रियाँ भी सवारियों को त्याग, पैदल ही पाण्डवों के पीछे होलीं। निकट जा युधिष्ठिर ने देखा कि, धृतराष्ट्र के निर्जन आश्रम में जहाँ तहाँ मृगों के झुंड बैठे हैं और केले के पेड़ का वन सा लगा हुआ है। उस वन में जो अन्य तपस्वी रहते थे वे पाण्डवों के वहाँ आने का समाचार पा, उन्हें देखने के लिये वहाँ जमा हो गये। तब

नेत्रों में आँसू भर महाराज युधिष्ठिर ने उन तपस्वियों से पूँछा कि, कौरव वंश का पालन पोषण करने वाले हमारे पितृव्य (चाचा) कहाँ हैं ? उत्तर में तपस्वियों ने कहा—वे यमुनास्नान करने, यमुना जल तथा पुष्प लाने गये हुए हैं। यह सुन, उन लोगों की बतलायी राह से पाण्डव उधर को चले। थोड़ी ही दूर गये थे कि, उन लोगों ने धृतराष्ट्र को स्नान करके आते हुए देखा। उन्हें देख, महाराज धृतराष्ट्र के दर्शन की अभिलाषा रखने वाले युधिष्ठिर उनकी ओर तेज़ी से चले। किन्तु सहदेव तो कुन्ती को देख, उनके पास दौड़ कर जा पहुँचे और माता के चरणों में सीस रख बड़े ज़ोर से रोने लगे। तब आँखों में आँसू भर कुन्ती ने सहदेव को उठा अपने हृदय से लगाया और गान्धारी को उन लोगों के आगमन की सूचना दी। फिर युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन तथा नकुल को देख, कुन्ती उनके सामने गयी। धृतराष्ट्र और गान्धारी को लिये हुए कुन्ती आगे आगे चली आती थी। कुन्ती को इस दशा में देख पाण्डव भूमि पर गिर पड़े। बुद्धिमान् धृतराष्ट्र ने बोली से और उनके शरीर को स्पर्श कर पाण्डवों को पहचाना और उनको भली भाँति समझा बुझा कर शान्त किया। तदनन्तर आँखों में आँसू भरे हुए पाण्डवों ने, राजा धृतराष्ट्र, गान्धारी और माता कुन्ती के चरणों में सीस रख उनको प्रणाम किया। फिर जो जलघट वे तीनों ला रहे थे वे पाण्डवों ने स्वयं ले लिये। राजघराने की स्त्रियों और पुरवासियों ने भी उन तीनों के दर्शन किये। राजा युधिष्ठिर ने नाम ले ले कर प्रत्येक का परिचय धृतराष्ट्र को दिया। तब धृतराष्ट्र ने प्रत्येक व्यक्ति के साथ बड़े आदर और प्रेम के साथ बातचीत की। उस समय राजा धृतराष्ट्र को ऐसा जान पड़ा, मानों वे हस्तिनापुर ही में पहुँच गये हों। राजा धृतराष्ट्र के नेत्रों से उस समय आनन्दाश्रु निकल रहे थे। द्रौपदी आदि राजघराने की स्त्रियों ने भी सास ससुर को प्रणाम किया। इस समय बुद्धिमान् धृतराष्ट्र, गान्धारी और कुन्ती बहुत प्रसन्न जान पड़ती थी। तदनन्तर वे सब लोग सिद्ध चारणों से सेवित उस आश्रम में पहुँचे। उस समय दर्शकों से पूर्ण उस

आश्रम की वैसी ही शोभा जान पड़ी, जैसी शोभा ताराओं से आकाश की होती है।

पच्चीसवाँ अध्याय

वनवासी मुनियों को सञ्जय द्वारा पाण्डवों का परिचय दिया जाना

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय ! पुरुषश्रेष्ठ पाँचों भाई पाण्डव धृतराष्ट्र के साथ उस आश्रम ही में ठहरे। पाण्डवों को देखने के लिये दूर दूर वनों से आये हुए महाभाग तपस्वियों के साथ धृतराष्ट्र आसन पर बैठे। तब उन तपस्वियों ने कहा कि, हम जानना चाहते हैं कि, इन पाँचों में युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव कौन से हैं ? स्त्रियों में यशस्विनी द्रौपदी कौन सी है ? तब सञ्जय ने उन सब का तपस्वियों को परिचय दिया। सञ्जय बोले—शुद्ध जाम्बूनद सुवर्ण जैसे रङ्ग वाले सिंह के समान उन्नत शरीर, सुन्दर नासिका और विशाल नेत्रों से सुशोभित यह कौरवराज युधिष्ठिर हैं। मदमत्त गज जैसी चाल से चलने वाले, तप्त एवं शुद्ध सुवर्ण जैसी आभा वाले शरीर धारी और दीर्घबाहु यह भीमसेन हैं। श्याम वर्ण, धनुर्धर और तरुण गजेन्द्र के समान शोभायमान, सिंह जैसे ऊँचे कन्धों वाले गजगामी तथा कमलनेत्र यह वीर अर्जुन हैं।

कुन्ती के सामने बैठे हुए, विष्णु और महेन्द्र जैसे ये नरोत्तम नकुल और सहदेव हैं। ये लोकातीत रूप, बल और शील से सम्पन्न हैं। यह पद्मदल सदृश विशालनयनी, मध्यम अवस्था वाली, नीलोत्पल सदृश मूर्तिमती लक्ष्मी के समान यह द्रौपदी है।

हे द्विज-वर्यगण ! द्रौपदी के पास ही यह जो मूर्तिमती और इन्द्रप्रभा के समान कनकवर्णा स्त्री है, वही उस अप्रतिम चक्रधारी श्रीकृष्ण की बहिन

सुभद्रा है। यह जो विशुद्ध सुवर्ण की तरह गौर वर्ण नागकन्या और मधूक पुष्प के समान रूप वाली नरेन्द्रपुत्री देख पड़ती है—ये दोनों स्त्रियाँ अर्जुन की पत्नियाँ हैं। जो नरनाथ श्रीकृष्ण से सदा स्पर्द्धा करते थे, उस राजचमूपति की बहिन यह नीलोत्पल श्याम वर्ण वाली स्त्री—भीमसेन की पत्नी है। यह चम्पक वर्ण और मगधराज जरासन्ध की बेटी, कनिष्ठ माद्रीनन्दन सहदेव की भार्या है। इन्दीवर की भाँति श्यामाङ्गी, कमलदल के समान विशाल नेत्रों वाली वह जो स्त्री पृथिवी पर बैठी है, वह ज्येष्ठ माद्रीनन्दन नकुल की भार्या है। तप्त सुवर्ण के सदृश गौर वर्ण पुत्र को गोदी में लिये हुए वह विराट्राज की पुत्री उत्तरा है। इसीके पति का नाम अभिमन्यु था; जो युद्ध में विरथ होने पर, रथस्थ द्रोणादि महारथियों द्वारा मारा गया था। इनके अतिरिक्त वे सीमन्तसमन्वित केश वाली, सफेद साड़ियाँ पहने हुए हतपुत्र तथा अनाथिनी एक सौ रानियाँ देख पड़ती हैं। वे सब इन वृद्ध महाराज धृतराष्ट्र की पुत्रवधू हैं।

सञ्जय ने कहा—हे तपस्विगण! आप लोग ब्रह्मनिष्ठ, सरल स्वभाव और सतोगुणी हैं। अतः आपके पूँछने पर मैंने विशुद्ध सत्व सम्पन्न राजघराने की स्त्रियों का परिचय यथार्थ रीत्या आपको दे दिया।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! कौरवश्रेष्ठ वृद्ध धृतराष्ट्र इस प्रकार पाण्डवों से मिले और जब वे सब आये हुए तपस्विगण अपने अपने स्थानों को चले गये, तब धृतराष्ट्र ने पाण्डवों से उनका कुशल क्षेम पूँछा। सवारियों को छोड़, आश्रम की सीमा से दूर जो सैनिक तथा अन्य पुरवासी स्त्री, बालक एवं वृद्ध जन ठहरे हुए थे उन सब को अच्छे प्रकार से अपने निकट बैठा, धृतराष्ट्र ने उनसे यथायोग्य कुशल प्रश्न किया।

छब्बीसवाँ अध्याय

धृतराष्ट्र और युधिष्ठिर की बातचीत

धृतराष्ट्र ने युधिष्ठिर से कहा—हे महाबाहो ! पुरवासियों सहित तुम सब भाई कुशल पूर्वक तो हो ? राजन् ! तुम्हारे आश्रित मन्त्री तथा अन्य नौकर चाकर और तुम्हारे गुरुजन नीरोग तो हैं ? तुम्हारे राज्य की प्रजा नीरोग और निर्भय तो रहती है ? क्या तुम अपने पूर्वज राजर्षियों के निर्दिष्ट मार्ग का अनुसरण करते हो ? तुम्हारे धनागार में क्या न्यायोपार्जित धन ही जमा होता है ? शत्रु, मित्र और तटस्थ राज्यों के प्रति तुम यथायोग्य व्यवहार करते हो न ? ब्राह्मणों को दान देते हो और उनके दर्शन नित्य तो करते हो ? वे तुम्हारे बर्त्ताव से तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हैं ? हे राजन् ! श्रद्धा पूर्वक देव-पितृ-पूजन तो करते हो ? वेदपाठी ब्राह्मण कुचाल तो नहीं चलते ? अपने अपने कर्मों के करने में वे प्रवृत्त तो रहते हैं ? तुम्हारे बालकों तुम्हारी स्त्रियों और तुम्हारे बड़े बूढ़ों को कोई कष्ट तो नहीं सताता ? तुम्हारे घर में बहिनों, बेटियों और बहुओं का अनादर तो नहीं होता ? तुम्हारे राजा होने पर, तुम्हारा यह राजर्षिवंश अन्याय पथ पर तो आरूढ़ नहीं है ? लोग तुम्हारी निन्दा तो नहीं करते ?

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय ! बातचीत करने में निपुण और ज्ञानवान युधिष्ठिर से जब धृतराष्ट्र ने ये प्रश्न किये, तब उन्होंने उत्तर में सब का कुशल क्षेम बतलाया और धृतराष्ट्र से पूँछा—राजन् ! आपकी तपश्चर्या बढ़ तो रही है ? आपने अपने मन को और अन्य इन्द्रियों को अपने वश में तो कर लिया है ? आपकी सेवा में निरत मेरी माता को थकावट तो नहीं व्यापती ? हे नरनाथ ! यदि यह आपकी सेवा में लगी रही तो इसका वनवास सफल हो जायगा । ठंडी हवा और रास्ते की थकावट से कातर, घोर तपश्चर्या में प्रवृत्त, मेरी बड़ी माता गान्धारी—क्षात्र-धर्मपरायण मृतपुत्रों के लिये शोक तो नहीं करती ? हम लोगों को पापी समझ, हम लोगों को

अकोसा तो नहीं करती? राजन्! विदुर जी कहाँ हैं? वे यहाँ क्यों नहीं देख पड़ते? सञ्जय तप में निरत रह कुशल पूर्वक तो हैं?

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! नरनाथ युधिष्ठिर के इन प्रश्नों के उत्तर में धृतराष्ट्र बोले—बेटा! विदुर सकुशल हैं। वे घोर तप करते हैं। वे और कोई वस्तु न खा कर, केवल वायु पी कर रहते हैं। इससे उनका शरीर ऐसा दुबला हो गया है कि, उनके शरीर में नसें ही नसें देख पड़ती हैं। इस निर्जन वन में किसी किसी ब्राह्मण को कभी कभी उनके दर्शन हो जाया करते हैं। इन दोनों में ये बातें हो ही रही थीं कि, दूर से उनको विदुर जी देख पड़े। उस समय विदुर जी के सिर पर जटाजूट का भार बहुत बढ़ गया था। उनका मुख भीतर धस गया था। शरीर अति लटा हुआ था। उनके शरीर पर वस्त्र न था। सारे शरीर में धूल लगी हुई थी। उन्हें देख सब लोगों ने युधिष्ठिर से कहा—वह देखिये विदुर जी आश्रम की ओर देखते हुए लौटे जाते हैं। यह सुन अकेले युधिष्ठिर, घोर वन की ओर जाते हुए विदुर के पीछे दौड़े। कभी विदुर जी उन्हें देख पड़ते थे और कभी छिप जाते थे। युधिष्ठिर यह कहते हुए कि, मैं आपका प्यारा युधिष्ठिर हूँ—विदुर जी के पीछे दौड़ते चले जाते थे। कुछ दूर जाने बाद विदुर जी एक वृक्ष के सहारे उस निर्जन वन में खड़े हो गये। अत्यन्त दुर्बल विदुर जी को उनकी आकृति से युधिष्ठिर ने पहचान लिया। फिर उनके कान में मुँह लगा बोले—मैं युधिष्ठिर हूँ। फिर उनके सामने जा युधिष्ठिर ने उनको प्रणाम किया। तब विदुर ने आँखें फैला कर युधिष्ठिर को बड़े ध्यान से टकटकी बाँध कर देखा। तदनन्तर धीमान् विदुर योगबल से, राजा युधिष्ठिर के शरीर में निज शरीर, प्राण में प्राण और इन्द्रियों में इन्द्रियों को प्रविष्ट कर, प्रज्वलित अग्नि की तरह प्रकाशित देख पड़े। धर्मराज युधिष्ठिर ने विदुर के वृक्ष के सहारे खड़े हुए स्तब्धलोचन युक्त एवं चेतना-शून्य शरीर को देखा। उस समय धर्मराज ने अपने को कई गुना अधिक बलवान् माना। हे राजन्! विद्वान् परमतेजस्वी, धर्मराज पाण्डु-नन्दन

युधिष्ठिर ने व्यासदेव कथित, निज प्राचीन योग धर्म को स्मरण किया। तदनन्तर युधिष्ठिर ने विदुर जी के शरीर का दाह संस्कार करना चाहा। उस समय यह देववाणी उन्हें सुनायी पड़ी—हे राजन्! विदुर को मत जलाओ। इनके शरीर को इसी प्रकार यहाँ रहने दो। यही सनातन धर्म है। यह यति-धर्म-परायण हैं (अर्थात् संन्यासी हैं) अतः इन्हें सन्तानिक लोक मिलेगा। अतः इनके लिये तुम दुःखी मत हो।

इस आकाशवाणी को सुन, धर्मराज वहाँ से लौट कर आश्रम में आये और यह सब वृत्तान्त धृतराष्ट्र से कहा। उसे सुन धृतराष्ट्र और भीमसेन आदि को बड़ा आश्चर्य हुआ। विदुर का वह वृत्तान्त सुन धृतराष्ट्र बहुत प्रसन्न हुए और युधिष्ठिर से कहने लगे। तुम मेरे आतिथ्य को स्वीकार कर यह फल, मूल और जल ग्रहण करो। शास्त्र की आज्ञा है कि, मनुष्य के पास जो सामान होता है, उसीसे वह अतिथि का आतिथ्य भी करता है।

धृतराष्ट्र के इन वचनों को सुन युधिष्ठिर ने कहा—आपका कहना यथार्थ है। यह कह भाइयों सहित युधिष्ठिर ने धृतराष्ट्र के दिये हुए फल मूल खाये। अनन्तर उन लोगों ने वृक्षों के नीचे रह कर वह रात बितायी।

सत्ताइसवाँ अध्याय

वन में पाण्डव

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! पवित्रकर्मा पाण्डवों ने वह रात उसी आश्रम में रह कर और धर्म सम्बन्धी विचित्र पदों से युक्त एवं श्रुतिमूलक कथाएँ कहते सुनते वह मङ्गलमयी नक्षत्रों से युक्त रजनी व्यतीत की। पाँचों पाण्डव उस रात को बहुमूल्य सेजों को छोड़, भूमि पर अपनी माता के चारों ओर पड़े रहे। जो भोजन धृतराष्ट्र ने किये वे ही भोजन उस रात को पाण्डवों ने किये। जब रात बीती और सवेरा हुआ,

तब युधिष्ठिर ने उठ कर भाइयों सहित प्रातः क्रियाएँ पूरी कर, आश्रम मण्डल के दर्शन किये। इसके बाद धृतराष्ट्र के आदेशानुसार कुरुक्षेत्र के अन्य स्थान देखने के लिये वे रनवास की स्त्रियों, सेवकों तथा पुरोहित सहित गये। वहाँ उन्होंने मुनियों के द्वारा प्रज्वलित अग्नि से सम्पन्न, हवन द्वारा अग्नि की उपासना करने वाले मुनियों की अग्निवेदियों को देखा। उन वेदियों की शोभा को वन के विविध पुष्प और आहुति के लिये रखा हुआ घी बढ़ा रहा था। जगह जगह निर्भय हो हिरन बैठे हुए थे। वहाँ विविध जातियों के पक्षियों की मधुर बोलियों को सुनने से ऐसा जान पड़ता था, मानों मधुर गान हो रहा हो। कहीं पर नीलकण्ठ मयूरों की केकाध्वनि, कहीं पर दात्यूहों का कूजन, कहीं पर कोकिलों की सुखद एवं श्रुतिमधुर कूक और कहीं वेदपाठियों की मधुर वेदध्वनि सुन पड़ती थी। बड़े सुन्दर फूलों और स्वादिष्ट फलों के वृक्षों से वहाँ की शोभा बहुत बढ़ गयी थी।

राजन् ! युधिष्ठिर ने उस वन में रहने वाले तपस्वियों को सोने के कलसे, गूलर की लकड़ी के श्रुवा आदि पात्र, मृगचर्म, रंग बिरंगे कम्बल, कमण्डलु, स्थाली, पीठपात्र, लोहे के बरतन तथा और तरह तरह के बरतन बाँटे। यहाँ पर युधिष्ठिर ने बहुत सा धन भी बाँटा। तदनन्तर वे आश्रम में लौट आये और नित्यकर्म किया। फिर अव्यग्रचित्त से गान्धारी सहित बैठे हुए धृतराष्ट्र को तथा उनके निकट शिष्या की तरह विनीत भाव से, शिष्टाचारवती माता कुन्ती को बैठा हुआ देखा। तब अपना नाम कह कर युधिष्ठिर ने धृतराष्ट्र तथा माताओं को प्रणाम किया और आज्ञा मिलने पर वे तपस्वियों के बैठने योग्य एक आसन पर बैठ गये। भीमादि अन्य पाण्डव भी धृतराष्ट्रादि को प्रणाम कर और आज्ञा पा आसनों पर बैठे। ब्राह्मश्री से युक्त धृतराष्ट्र की पाण्डवों के बीच बैठ उस समय वैसी ही शोभा हुई जैसी देवताओं के बीच बैठे हुए बृहस्पति की होती है। तदनन्तर शतयूप आदि कुरुक्षेत्रवासी महर्षिगण वहाँ आये। देवर्षियों से सेवित, परमतेजस्वी भगवान् व्यास शिष्यमण्डली सहित, पाण्डवों को देखने के

लिये वहाँ पहुँचे। कुन्तीनन्दन वीर्यवान् युधिष्ठिर तथा उनके भाइयों ने आसनों से उठ उनको प्रणाम किया।

तदनन्तर व्यास जी ने धृतराष्ट्र आदि को बैठ जाने की आज्ञा दी। व्यास जी स्वयं भी एक कुशासन के ऊपर, जिस पर मृगचर्म बिछा था और जो उन्हींके लिये बिछाया गया था बैठ गये। व्यास जी के आदेशानुसार अन्य सब तेजस्वी वे समस्त ब्राह्मण चारों ओर बिछी हुई चटाइयों पर बैठ गये।

अट्ठाइसवाँ अध्याय

व्यास जी और युधिष्ठिर की बातचीत

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! पाण्डवों के आसनासीन होने पर, सत्यवती-सुत, व्यास जी ने धृतराष्ट्र से पूँछा—हे वीर! क्या तुम्हारी तपस्या निर्विघ्न हो रही है? वनवास से तुम्हारा मन तो नहीं ऊबता? पुत्रों के मारे जाने का शोक तो तुम्हें नहीं व्यापता? तुम्हारे ज्ञान में तो विकार नहीं उत्पन्न हुआ? तुम दृढ़ता पूर्वक वनवास के नियमों का पालन तो करते हो? बहू गान्धारी को तो शोक नहीं सताता? गान्धारी तो स्वयं बड़ी ज्ञानवती, धर्म, अर्थ, उत्पत्ति और नाश का रहस्य जानने वाली है। उसे किसी बात का सोच तो नहीं है? पुत्रों को त्याग, गुरुजनों की सेवा में तत्पर यह अहंकार शून्य कुन्ती तुम लोगों की भली भाँति सेवा करती है न? धर्मपुत्र युधिष्ठिर बड़े मनस्वी और बुद्धिमान् हैं। भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव भी विश्वस्त और बड़े धैर्यवान् हैं। इन्हें देख, तुम्हें प्रसन्नता तो प्राप्त होती है? तुम्हारा मन तो निर्मल रहता है? तुम्हारा ज्ञान तो ज्यों का त्यों बना है और मन से तुम शुद्ध तो रहते हो? किसी से बैर विरोध न करना, सदा सत्य बोलना और कभी क्रुद्ध न होना—ये तीन बातें जिसमें हों वह सर्वश्रेष्ठ मनुष्य है। हे भरतर्षभ! क्या वनवास

से तुम्हें मोह तो प्राप्त नहीं होता? भोजनोपयोगी फलादि तो तुम्हें यथेष्ट रूप में मिल जाया करते हैं? व्रतादि भी यथानियम होते चले जाते हैं कि नहीं? महात्मा, बुद्धिमान् एवं धर्मावतार विदुर का विधिविशेष से लय होना तो तुमको विदित हो चुका है कि नहीं? यह तो तुम लोगों को विदित ही होगा कि, बड़े बुद्धिमान्, परमयोगी, महात्मा, संयतमना, धर्मात्मा माण्डव्य ऋषि के शाप से विदुर के रूप में उत्पन्न हुए थे। देवगुरु बृहस्पति और दैत्यगुरु शुक्र भी बुद्धिमानी में विदुर की बराबरी नहीं कर सकते थे। बहुकाल के सञ्चित पुण्यफल और तपःफल को व्यय कर, वे माण्डव्य ऋषि के शाप से मुक्त हो गये। पूर्वकाल में ब्रह्मा जी के आदेशानुसार वे बुद्धिमान्, निज प्रभाव से राजा विचित्रवीर्य के क्षेत्र में मुझसे जन्मे थे। वे देवताओं के भी देवता और सनातन रहने वाले तुम्हारे ज्येष्ठ भ्राता थे। राजन्! पण्डित लोग जिसे धर्म कह कर पुकारते हैं, वे तुम्हारे भाई महा-बुद्धिमान विदुर, मन के द्वारा ध्यान तथा धारणा से सनातन देवदेव स्वरूप हुए थे। वे सनातन पुरुषश्रेष्ठ तपस्या कर, सत्य, शम, अहिंसा दम और दान द्वारा भली भाँति बढ़े थे। कुरुराज युधिष्ठिर ने योगबल से, उस अमित-बुद्धि-सम्पन्न प्राज्ञ विदुर के साथ जन्म लिया था। अग्नि, वायु, जल, पृथिवी और आकाश की तरह, इस लोक तथा परलोक में धर्म ही व्याप्त है। धर्मदेव सर्वगति हैं, इसीसे वे चराचर में व्याप्त हो कर निवास करते हैं। हे राजन्! जो धर्मदेव हैं वे ही विदुर हैं और जो विदुर हैं वे ही युधिष्ठिर हैं। हे राजन्! वही धर्म का अवतार युधिष्ठिर, सेवक के समान तुम्हारे सामने उपस्थित है। बुद्धिमानों में श्रेष्ठ एवं महात्मा तुम्हारा भाई विदुर, इस महात्मा युधिष्ठिर को देख, योगबल से इसीमें प्रवेश कर गया है। हे भरतर्षभ! थोड़े ही दिनों बाद तुम्हारा भी कल्याण-साधन मैं करूँगा। हे वत्स! मेरा आगमन अपने सन्देहों की निवृत्ति के लिये तुम जाना करो। अब से पहले इस जगत् में किसी भी महर्षि के द्वारा जो कार्य सम्पादित नहीं हुआ: मैं उसी आश्चर्यफल को तुम्हें दिखाऊँगा। हे अनघ! तुम्हारा

क्या अभीष्ट है ? तुम मुझसे क्या सुनना चाहते हो ? तुम मेरे द्वारा क्या देखना या पाना चाहते हो ? तुम्हें मुझसे जो कुछ पूँछना हो पूँछो। मैं तुम्हारा मनोरथ पूरा करूँगा।

उनतीसवाँ अध्याय

व्यास जी और धृतराष्ट्र का संवाद

जनमेजय ने पूँछा—हे ब्रह्मन् ! नृपवर धृतराष्ट्र का निज भार्या गान्धारी और वधू कुन्ती सहित वनगमन, महात्मा विदुर का धर्मराज युधिष्ठिर के शरीर में प्रवृष्ट होना, पाण्डवों का आश्रम-मण्डल में वास, व्यासदेव का आगमन का वृत्तान्त जो आपने कहा, वह मैंने सुना। अब आप कृपा कर मुझे यह सुनाइये कि, परमतेजस्वी महर्षि व्यासदेव ने धृतराष्ट्र से कहा था कि, मैं तुम्हारा इष्ट साधन करूँगा—सो वह कौनसा आश्चर्य व्यापार हुआ था ? आप यह भी बतलावें कि, कुरुवंशोद्भव युधिष्ठिर अपने साथियों सहित कितने दिनों वन में रहे थे ? और वहाँ रहते समय पाण्डव अपनी स्त्रियों एवं नौकरों चाकरों तथा सैनिकों सहित क्या खाते थे ?

जनमेजय के इन प्रश्नों के उत्तर में वैशम्पायन जी कहने लगे—हे राजन् ! वन में रहते समय पाण्डवों ने धृतराष्ट्र के आदेशानुसार आश्रम में विश्राम कर विविध प्रकार के भोज्य पदार्थ खाये। स्त्रियों और सेना सहित पाण्डव उस आश्रम में एक मास तक रहे थे। व्यास जी के आश्रम में आगमन का वृत्तान्त मैं तुमसे कह ही चुका हूँ। जब व्यास जी महाराज धृतराष्ट्र एवं पाण्डवादि से कथाएँ कह रहे थे; तब महातपस्वी देवल, पर्वत नारद, विश्वावसु, तुम्बुरु और चित्रसेनादि अन्यान्य मुनिगण भी वहाँ आये। धृतराष्ट्र के आदेश से युधिष्ठिर ने उन समागत मुनियों का यथाविधि आदर सत्कार किया और वे सब मोरपङ्खों से भूषित आसनों पर विराजे। जब मुनिगण आसनासीन हो चुके, तब धृतराष्ट्र भी पाण्डवों के बीच बैठ गये।

तदनन्तर गान्धारी, कुन्ती, द्रौपदी, सुभद्रा तथा अन्यान्य स्त्रियाँ भी अपने अपने स्थानों पर बैठ गयीं। तब पुनः धर्म सम्बन्धी दिव्य कथाप्रसङ्ग छिड़ा और प्राचीन ऋषियों, देवताओं और असुरों के वृत्तान्त कहे सुने गये। वेद-विदों में श्रेष्ठ, वक्ताओं में उत्तम महातेजस्वी व्यास जी ने, अत्यन्त हर्षित हो, ज्ञान-चक्षु-सम्पन्न-धृतराष्ट्र से कथा के अन्त में कहा—हे राजेन्द्र! पुत्रवियोग जनित शोक से दग्ध, तुम्हारे हृदय में जिन भावों का उदय हुआ है, वे मुझे मालुम हैं। हे महाराज! गान्धारी के मन में जो दुःख सदा बना रहता है—उसे भी मैं जानता हूँ। इसी प्रकार द्रौपदी और श्रीकृष्ण की बहिन सुभद्रा के मन में पुत्रशोक की जो दारुण वेदना है, वह भी मुझे विदित है। इसीसे तुम सब लोगों के इस स्थान पर समागम का वृत्तान्त सुन, मैं यहाँ तुम लोगों का सन्देह दूर करने को आया हूँ। अब ये समस्त देवता, गन्धर्व और महर्षि, मेरे चिर सञ्चित तपोबल के प्रभाव को देखें। अब तुम अपनी कामना मुझे बतलाओ। उसे मैं पूरी करूँ। मुझमें तपःप्रभाव से वर देने की सामर्थ्य है।

परमतपस्वी व्यास जी के इन वचनों को सुन, धृतराष्ट्र ने कुछ देर तक मन ही मन कुछ विचारा। तदनन्तर उन्होंने अपना अभिप्राय इस प्रकार प्रकट किया।

धृतराष्ट्र बोले—हे ब्रह्मन्! मैं धन्य हूँ, मैं कृतकृत्य हूँ, जो आपने मेरे ऊपर अनुग्रह किया है। मेरा जीवन सफल है। क्योंकि आज मुझे आप जैसे सिद्ध पुरुषों का सत्सङ्ग प्राप्त हुआ है। मुझे विश्वास है कि, आपकी कृपा से मुझे अभीष्ट गति भी अवश्य ही प्राप्त होगी। हे तपोधन! आप जैसे महात्माओं के दर्शन कर, आज मैं निस्सन्देह पवित्र हुआ हूँ। हे अनघ! अब मुझे परलोक का भी भय नहीं रह गया। किन्तु मेरी पुत्रवत्सलता के कारण उन मूढ़ एवं दुर्बुद्धि पुत्रों की अनीतियों को स्मरण करते हुए मेरे अन्तःकरण में दारुण वेदना हुआ करती है। क्योंकि उस अभागे दुर्योधन के अन्याय से ही ये पाण्डव छले गये। उसीके कारण इस जगत् के

इतने हाथी, घोड़े, योद्धा और राजा लोग मारे गये। वे सब शूरवीर अपने बड़े बूढ़ों को, स्त्रियों को और सर्वप्रिय शरीर को त्याग यमलोक को चले गये। हे ब्रह्मन् ! जो लोग अपने मित्र के पीछे युद्ध में मारे गये, उनकी क्या गति हुई होगी ? मेरे पुत्रों और पौत्रों को कौन सी गति प्राप्त हुई होगी ? शान्तनु के परम पराक्रमी भीष्म जी तथा ब्राह्मणश्रेष्ठ द्रोणाचार्य को मरवा कर, मेरा मन बड़ा दुःखी रहता है। धराधाम का राज्य पाने के प्रलोभन में फँसे और मित्रों के शत्रु मेरे अज्ञानी पुत्र दुर्योधन से यह जगत्प्रसिद्ध वंश नष्ट किया गया है। इन बातों को स्मरण कर, रात दिन मेरा हृदय धधका करता है। दुःख और शोक से विकल रहने के कारण मुझे शान्ति नहीं मिलती।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय ! राजर्षि धृतराष्ट्र के इस विलाप को सुन, गान्धारी का शोक पुनः हरा भरा हो गया। कुन्ती, द्रौपदी और सुभद्रा के मनों पर जो घाव थे वे ताज़े हो गये। पुत्रशोकातुर गान्धारी हाथ जोड़ कर खड़ी हो गयी और अपने ससुर व्यास जी से कहा—हे मुनि-श्रेष्ठ ! मृतपुत्रों के शोक में, महाराज के सोलह वर्ष व्यतीत हो चुके। किन्तु इनको शान्ति प्राप्त नहीं हुई। पुत्रशोक से विकल महाराज धृतराष्ट्र रात रात भर लंबी साँसें लिया करते हैं। इन्हें एक क्षण के लिये भी नींद नहीं पड़ती। आप अपने तपोबल से नवीन लोकों की रचना करने में भी समर्थ हैं। फिर महाराज को इनके परलोकगत पुत्रों को तो आप अवश्य दिखला सकते हैं। समस्त पुत्रवधुओं में सब से अधिक प्यारी इस द्रौपदी के पुत्र और भाई आदि मारे गये हैं। इसलिये यह शोक से अत्यन्त कातर रहती है। इसीकी तरह श्रीकृष्ण की बहिन सुभद्रा भी अभिमन्यु के मारे जाने से अत्यन्त दुःखी है। भूरिश्रवा की यह प्रीतिमती पत्नी, पतिशोक से परम पीड़ित रह, रात दिन सोच में पड़ी रहती है। इसका ससुर बुद्धिमान् बाल्हीक और पिता सहित सोमदत्त भी महासमर में मारे गये हैं। आपके कृपापात्र इन धृतराष्ट्र को भी, युद्ध में कभी पीठ न दिखाने वाले अपने सौ पुत्रों से हाथ धोने पड़े हैं। उनकी इन विधवा स्त्रियों को देख देख, महाराज का और

मेरा शोक उत्तरोत्तर बढ़ता है। जो शूर, महात्मा, महारथी मेरे ससुर सोमदत्त आदि थे, वे कौन सी गति को प्राप्त हुए हैं? हे महामुने! अब आप ऐसा करें जिससे यह राजा, मैं, कुन्ती और ये मेरी बहुएँ शोक से छुटकारा पावें।

गान्धारी की बातों को सुन, कुन्ती को सूर्य के अंश से उत्पन्न अपने पुत्र कर्ण की याद आ गयी। दूसरे की मन की बात जान लेने वाले वेदव्यास ने अर्जुनजननी कुन्ती देवी के मन में निहित दुःख का हाल जान लिया। तब वे कुन्ती से बोले—हे कुन्ती! तेरे मन में जो कुछ हो सो कह और जो बात तुझे पूँछनी हो सो पूँछ। इस पर उस पुरानी बात को प्रकट कर, लज्जालु कुन्ती ने व्यास जी को सीस नवा कर प्रणाम किया और उनसे कहा।

तीसवाँ अध्याय

कुन्ती द्वारा दुर्वासा ऋषि से प्राप्त वरदान का वृत्तान्त कहा जाना

कुन्ती ने कहा—भगवन्! आप मेरे ससुर हैं और देवताओं के भी पूज्य हैं। अब आप मेरा सत्य वृत्तान्त सुनिये। एक दिन महाक्रोधी दुर्वासा ऋषि मेरे पिता के घर, भिक्षा माँगने आये। मैंने निष्कपट भाव से सावधानतापूर्वक उनकी सेवा कर, उन्हें प्रसन्न किया। उन्होंने प्रसन्न हो मुझे वरदान दिया। यद्यपि मेरी इच्छा वरदान लेने की न थी; तथापि शाप के भय से मुझे उनकी बात मान लेनी पड़ी। वे मुझसे बोले—हे शुभानना! हे कल्याणी! तू धर्म की जननी होगी और तू जिन जिन देवताओं को बुलाना चाहेगी, वे सब देवता तेरे वशवर्ती होंगे। यह कह दुर्वासा ऋषि अन्तर्धान हो गये। मुझे उनकी इन बातों को सुन बड़ा आश्चर्य हुआ। मेरी

स्मरणशक्ति बड़ी पुष्ट है। मैं कभी कोई बात भूलती नहीं। इस घटना के कुछ दिनों बाद, एक दिन मैं अटारी पर थी कि, इतने में सूर्यदेव उदय हुए। सूर्य को देख मुझे ऋषि के वर की बात स्मरण हो आयी और मैंने सूर्यदेव का स्मरण किया। उस समय अवस्था कम होने के कारण उस कृत्य सम्बन्धी दोष गुण की विवेचना मैं न कर सकी। अस्तु। सूर्यदेव ने दो रूप धारण किये। एक से वे आकाश में रह लोकों में प्रकाश पहुँचाते रहे और दूसरे से वे मेरे निकट आये और मुझसे कहा वर माँगो। उस समय भय के मारे मेरा शरीर थरथरा रहा था। मैंने सीस झुका उनको प्रणाम किया और कहा—अब आप लौट जाँय। इस पर सूर्यदेव बोले—मेरा आगमन व्यर्थ नहीं हो सकता। मैं तुझे और उस ब्राह्मण को भस्म कर डालूँगा, जिसने तुझे यह वर दिया है। तब तो उस वरदाता ब्राह्मण को सूर्य के क्रोध से बचाने के अभिप्राय से—मैंने सूर्य से कहा—हे देव! मुझे एक ऐसा पुत्र दो जो आपके समान हो। यह सुन सूर्य ने अपने तेज से मेरे शरीर में प्रवेश किया और मुझे मोहित किया। तदनन्तर वे यह कह कि—"तेरे पुत्र होगा" वहाँ से चल दिये। पिता की दृष्टि बचा मैं गुप्तरूप से अन्तःपुर में रही और और जब बालक जन्मा तब मैंने उसे जल में डुबवा दिया और सूर्य के अनुग्रह से मेरा क्वारपना ज्यों का त्यों बना रहा। किन्तु उस बालक के त्याग देने की बात मेरे मन को सदा जलाया करती है। चाहे मेरा यह काम पाप समझा जाय अथवा पाप न समझा जाय—जो सच बात थी—वह मैंने आपके सामने प्रकट कर दी। भगवन्! अब आप मुझे उसे दिखला कर मेरी मनोकामना पूरी करें। महाराज धृतराष्ट्र अपनी अभिलाषा प्रकट कर ही चुके। उनकी अभिलाषा भी आप पूर्ण करें।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! कुन्ती के इन वचनों को सुन वेदव्यास जी कुन्ती से बोले—हे कुन्ती! तुमने जो कुछ अभी कहा—वह ठीक है। जो तुम्हारी अभिलाषा है, वह पूरी होगी। लड़कपन में तुमने जो कुछ किया, उसमें तुम्हारा कुछ भी अपराध नहीं है। क्योंकि तुम्हें पुनः कन्याभाव

प्राप्त हो गया था। देवगण को यह सामर्थ्य है कि, वे अपने ऐश्वर्य बल से दूसरे के शरीर में प्रवेश कर सकें। देवताश्रित पुरुष सङ्कल्प, वाक्य, दृष्टि, स्पर्श और संहर्ष—इन पाँच प्रकार से जीव उत्पन्न कर सकते हैं। अतः हे कुन्ती! तुम मानवीय धर्म में स्थित हो कर भी इसके लिये सोच मत करो। मैं कहता हूँ कि, तुम्हारी समस्त मानसिक पीड़ाएँ दूर होंगी। क्योंकि बलवान् पुरुषों के समस्त कर्म शुभफल-प्रद होते हैं, उनके सब कार्य पवित्र होते हैं। सामर्थ्यवान ही धर्म का पालन भी कर सकते हैं और पराक्रमी ही समस्त ऐश्वर्य के मालिक होते हैं।

इकतीसवाँ अध्याय

कौरवों और पाण्डवों का पूर्वरूप और महासमर का कारण

व्यास जी बोले—हे कल्याणि! हे गान्धारी! रात बीतने पर सो कर उठे हुए लोगों की तरह, तू अपने पुत्रों और बन्धु बान्धवों को तथा पितृकुल के लोगों को देखेगी। कुन्ती कर्ण को, सुभद्रा अभिमन्यु को, द्रौपदी अपने पाँचों पुत्रों को, अपने पिता को और अपने भाइयों को देखेगी। हे राजन्! तुमने और कुन्ती ने जो बातें मुझसे कहीं हैं, उन्हें मैं कहने के पूर्व ही जान गया था। जो महात्मा राजा युद्ध में मारे गये हैं, वे क्षात्र-धर्म-परायण थे। अतः उनके लिये किसी को सोच न करना चाहिये। हे अनिन्दिते! यह युद्ध न था, किन्तु देवताओं का अवश्यम्भावी कार्य था। क्योंकि देवांशों से वे सब इस धराधाम पर इसी कार्य के निमित्त अवतीर्ण हुए थे। वे मनुष्यरूपी गन्धर्व, अप्सरा, पिशाच, गुह्यक, राक्षस, पुण्यजन, सिद्ध, देवर्षि, देव, दानव, तथा देवर्षि ही कुरुक्षेत्र के युद्ध में मरे हैं। यह धीमान् धृतराष्ट्र पूर्वजन्म के गन्धर्वराज हैं, गन्धर्वराज ही धृतराष्ट्र के रूप में तुम्हारे पति हुए हैं। धर्म से कभी न डिगने वाले महाराज पाण्डु, मरुद्गण के अवतार थे। विदुर और युधिष्ठिर का जन्म धर्म के अंश से हुआ है। भीम,

पवनदेव के अंश से उत्पन्न हुए हैं। दुर्योधन साक्षात् कलि महाराज का अवतार था। शकुनि द्वापर का रूप था। दुश्शासनादि पूर्वजन्म के राक्षस थे। अर्जुन पूर्वजन्म में नर नामक ऋषि थे। श्रीकृष्ण साक्षात् परब्रह्म का अवतार हैं। अश्विनीकुमारों के अंश से नकुल और सहदेव जन्मे हैं। कर्ण का जन्म सूर्य के अंश से हुआ था। अर्जुन के हर्ष को बढ़ाने वाला अभिमन्यु—जिसे छः महारथियों ने मिल कर मारा था, चन्द्रदेव का अवतार था। योगबल से वह दो रूपों में विभक्त हो गया था। द्रौपदी सहित अग्निवेदी से उत्पन्न होने वाला धृष्टद्युम्न, अग्नि के अंश से प्रकट हुआ था। शिखण्डी पूर्वजन्म में राक्षस था। देवगुरु बृहस्पति के अंश से आचार्य द्रोण का जन्म हुआ था और अश्वत्थामा रुद्रांश था। गङ्गानन्दन भीष्म को मनुष्य शरीर प्रदान करने वाले वसुदेवता हैं। हे सुन्दरी! इस प्रकार ये देवता, मनुष्य शरीरों में जन्म ले और अपना कार्य समाप्त कर, स्वर्ग को चले गये हैं। तुम सब लोगों के मनों में परलोक सम्बन्धी जो दुःख बहुत दिनों से बसा हुआ है, अब मैं उसे दूर करूँगा। अब तुम सब लोग गङ्गा जी के तट पर चलो। वहाँ तुम लोगों को समर में मारे गये तुम्हारे आत्मीय दिखलायी पड़ेंगे।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! व्यास जी की इन बातों को सुन सब लोग हर्षध्वनि करते हुए श्रीगङ्गा जी की ओर चल दिये। धृतराष्ट्र अपने मंत्री, पाँचों पाण्डवों और समागत महर्षिमण्डली तथा गन्धर्वों सहित गङ्गा तट की ओर चले। धीरे धीरे वे सब गङ्गा जी के तट पर जा पहुँचे। वे सब लोग वहाँ बड़ी प्रीति से और सुख से टिक गये। बूढ़ों और स्त्रियों को लिये हुए महाराज धृतराष्ट्र भी वहाँ टिके। मृत पुरुषों को देखने की अभिलाषा रखने वाले वे लोग रात होने की प्रतीक्षा करने लगे। उन लोगों को वह दिन सौ वर्षों के समान जान पड़ा। जब सूर्यदेव अस्ताचल गामी हुए; तब उन लोगों ने सायं सन्ध्योपासनादि आन्हिक कर्म किये।

बत्तीसवाँ अध्याय

मृतात्माओं का धृतराष्ट्रादि से मिलना भेंटना

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय ! सन्ध्योपासन से निवृत्त हो वे सब लोग व्यास जी के डेरे पर पहुँचे और पाण्डवों तथा ऋषियों सहित धृतराष्ट्र उनके निकट जा बैठे। धृतराष्ट्र के साथ गान्धारी आदि स्त्रियाँ भी बैठीं। पुरवासी तथा अन्य जन भी यथायोग्य स्थानों पर जा बैठे। तब परमतेजस्वी व्यासदेव ने गङ्गा के जल में घुस, मृतात्माओं का आह्वान किया। पाण्डव और कौरव पक्ष के शूरवीरों और अनेक देशों के महाभाग राजाओं का जल के निकट वैसा ही घोर कोलाहल सुन पड़ा, जैसा कुरुक्षेत्र में युद्ध के समय हुआ था। तदनन्तर वे समस्त योद्धा जल के बाहिर आये। उन सब के आगे भीष्म और द्रोणाचार्य अपनी सेनाओं सहित चले आते थे। राजा द्रुपद और विराट अपने पुत्रों और सेना सहित बाहिर आये। द्रौपदी के पाँचों पुत्र, सुभद्रा का पुत्र अभिमन्यु, भीम का पुत्र घटोत्कच, कर्ण, दुर्योधन, महारथी शकुनि, दुश्शासन आदि धृतराष्ट्र के महाबली पुत्र, जरासन्ध के पुत्र भगदत्त, पराक्रमी जलसिन्धु, भूरिश्रवा, शल, शल्य, छोटे भाइयों सहित वृषसेन, राजपौत्र लक्ष्मण, धृष्टद्युम्न का पुत्र, शिखण्डी के समस्त पुत्र, छोटे भाइयों सहित धृष्टकेतु, अचल, वृष का अलायुध राक्षस, सोमदत्त, बाल्हीक, राजा चेकितान आदि तथा और बहुत से राजा, तेजोमय शरीर धारण किये हुए जल से बाहिर निकले। जिस वीर की जो पोशाक थी, जो ध्वजा थी और जो उसका वाहन था, उसी उसी पोशाक को पहिने, ध्वाजाओं के सहित अपने अपने वाहनों पर सवार वे सब देख पड़े। वे सब दिव्य वस्त्र पहिने हुए थे और उनके कानों में कुण्डल लटक रहे थे। किन्तु अब उनमें न तो पूर्व समय जैसी पारस्परिक शत्रुता थी और न अहंकार, क्रोध तथा ईर्ष्या ही रह गयी थी। उनके आगे आगे गन्धर्व गाते बजाते चले

आते थे। बन्दीजन उनकी विरुदावली गा रहे थे और बढ़िया पोशाकों और गहनों से सजी हुई अप्सराएँ नाच रहीं थीं।

हे राजन्! तब हर्षितमना वेदव्यास जी ने तपोबल से महाराज धृतराष्ट्र को दिव्य दृष्टि प्रदान की। दिव्यज्ञान और दिव्य बल से युक्त गान्धारी ने उन सब अपने पुत्रों को और समर में हताहत अन्य लोगों को भी देखा। उस अद्भुत एवं रोमाञ्चकारी दृश्य को वे लोग टकटकी बाँध देखते रहे। वह अद्भुत चमत्कार उन लोगों को ऐसा जान पड़ा, मानों कपड़े पर खिंचे हुए स्त्री पुरुषों के चित्र हों। वेदव्यास जी की कृपा से धृतराष्ट्र दिव्य दृष्टि से उन सब को देख, परम प्रसन्न हुए।

[नोट—इस अध्याय में वर्णित घटना–औपन्यासिक वर्णन नहीं है। स्प्रिचुएलिज़्मवादी आज भी ऐसे दृश्य देखते और दिखलाते हैं। आधुनिक स्प्रिचुएलिज़्म के सिद्धान्तों की बहुत सी बातें ज्यों की त्यों उपर्युक्त वर्णन में आ गयी हैं। अतः स्प्रिचुएलिज़्म की जन्मभूमि यह भारतवर्ष है और इसके जन्मदाता महात्मा वेदव्यास हैं।]

तैंतीसवाँ अध्याय

कर्ण, अभिमन्यु आदि का युधिष्ठिरादि से मिलना

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! क्रोध, ईर्ष्या और पापों से शून्य वे समस्त लोग, जीवित पुरुषों से आपस में मिले भेंटे। व्यास जी की बतलायी विधि के अनुसार बर्त्ताव कर धृतराष्ट्र आदि पुरुष और गान्धारी आदि स्त्रियाँ देवलोकवासी देवताओं की तरह हर्षित थे।

हे राजन्! पिता पुत्र से, स्त्रियाँ अपने पतियों से, भाई भाइयों से, मित्र मित्रों से बड़े स्नेह, बड़ी प्रीति और बड़ी भक्ति के साथ मिले। पाँचों भाई पाण्डव अपने बड़े भाई कर्ण, सुभद्रानन्दन अभिमन्यु और द्रौपदी के पाँचों पुत्रों से मिले। व्यास मुनि की कृपा से, उन मृत क्षत्रियों का अहंकार दूर

हो गया था। अतः वे लोग आपस में मिले भेंटे और उनकी पूर्वकालीन शत्रुता अब मैत्री में परिवर्तित हो गयी। अपने बिछुड़े हुए भाई बन्धु और आत्मीय जनों से मिल, हर्षितमना राजाओं के लिये वह स्थान, स्वर्गभवन के समान हो गया। उनका एक दूसरे पर पूर्ण विश्वास हो गया था और वे सब परम हर्षित हो रहे थे। उस समय उन शूरवीरों में शोक, भय, उद्विग्नता, अप्रीति और अपकीर्ति का लेशमात्र भी न रह गया था। अपने पिताओं, भाइयों, पतियों और पुत्रों के दर्शन पा और उनसे मिल भेंट कर, स्त्रियों को बड़ा हर्ष हुआ। उनके मन का सारा दुःख दूर हो गया। रात भर वे मृतात्माएँ अपने आत्मियों से मिले और हर्षित हो रात बीतने के पूर्व ही जैसे आये थे वैसे ही चले गये। अर्थात् देखते देखते वे सब गङ्गा जी के जल में घुस, अन्तर्धान हो गये। उनमें से कोई इन्द्रलोक को, कोई ब्रह्मलोक को, कोई वरुणलोक को और कोई कुबेर के लोक को चला गया। उनमें बहुत से ऐसी भी थे जो यमलोक को गये। अनेक लोग राक्षसों और पिशाचों के लोकों में गये। कितने ही उत्तर कौरव देशों को गये।

उन सब के चले जाने पर, धर्माभ्यास-परायण, परम तेजस्वी, कौरवों के हितैषी महामुनि वेदव्यास जी ने उन क्षत्रियाणियों से, जिनके पति युद्ध में मारे गये थे कहा—जो स्त्रियाँ अपने पतियों के साथ जाना चाहें, वे सावधानता पूर्वक गङ्गाजल में प्रवेश करें। यह सुन जो स्त्रियाँ श्रद्धालु थीं—वे ससुर से पूँछ गङ्गाजल में घुस गयीं। वे पतिव्रता स्त्रियाँ इस पाञ्चभौतिक शरीर को त्याग अपने पतियों से जा मिलीं। उन्हें इस प्रकार पतिलोक प्राप्त हुआ। उन पतिव्रता स्त्रियों को दिव्य शरीर मिले। दिव्य भूषणों और दिव्य पुष्पमालाओं एवं दिव्य वस्त्रों से अलङ्कृत हो वे सती साध्वी स्त्रियाँ अपने पतियों के साथ दिव्य विमानों में जा बैठीं। उनके स्वभाव सुन्दर हो गये। अब उन्हें थकावट नहीं व्यापती थी। वे अब सर्वगुणसम्पन्ना हो गयी थीं। उस समय जिसने जो इच्छा प्रकट की, धर्मवत्सल वरद वेदव्यास ने उसे

पूर्ण किया। नाना देशों के लोगों ने जब मृत राजाओं के इस धराधाम पर आने का वृत्तान्त सुना, तब वे भी अति प्रसन्न हुए।

जो लोग इस प्रिय-मिलन का वृत्तान्त सुनते हैं, उनके इस लोक और परलोक में समस्त अभीष्ट पूर्ण होते हैं। जो धर्मज्ञ श्रेष्ठ ज्ञानी इस वृत्तान्त को सुनता है, उसे इस लोक में शुभ कीर्ति और परलोक में सद्गति प्राप्त होती है।

हे भरतवंशिन्! वेदाध्यायी, जपपरायण, तपस्वी, सदाचारी, इन्द्रिय-जित, दान द्वारा पापों से मुक्त, सत्यभाषी, पवित्र, शान्त, हिंसा और असत्य रहित, ईश्वर और परलोक के मानने वाले, श्रद्धालु और धैर्य धारण करने वाले लोग इस अद्भुत कथा को सुन परमगति को प्राप्त होंगे।

चौतीसवाँ अध्याय

जनमेजय की शङ्का और वैशम्पायन द्वारा समाधान

सूतपुत्र ने कहा—बुद्धिमान् राजा जनमेजय अपने पूर्वजों के इस आवागमन के वृत्तान्त को सुन, हर्षित हुए। साथ ही उन्होंने उन मृत पुरुषों के पुनः इस धराधाम पर आने के विषय में यह प्रश्न किया। जो आत्मा इस पाञ्चभौतिक शरीर को छोड़ देते हैं, उनका पुनः दर्शन पाञ्चभौतिक शरीर-धारी जनों को कैसे होता है?

जनमेजय के इस प्रश्न को सुन, वाग्मिवर एवं द्विजवर्य, व्यासशिष्य वैशम्पायन जी ने कहा—हे जनमेजय! समस्त जीवों के कर्मों का नाश, विना उनका फल भोगे नहीं होता। कर्मानुसार ही जीवों को शरीर और रूप मिला करते हैं। किन्तु स्वयं जीव अविनाशी है। अविनाशी जीव का संग नश्वर शरीरों के साथ सांसारिक दशा में होता है। जब विनश्वर शरीर नश्वर शरीर से पृथक होते हैं, तब उनका नाश नहीं होता। कर्म अनायास साध्य है। उसका फलागम सत्यप्रधान है। इसीसे आत्मा कर्मफल से युक्त

हो कर, सुखों और दुःखों को भोगा करते हैं। यह भी निश्चय है कि, क्षेत्रज्ञ अविनाशी होने पर भी नश्वर प्राणियों में वास करता है। इसका अविच्छेद (अपार्थक्य) ही प्राणियों का आत्मीय भाव है। जब तक कर्म का नाश नहीं होता, तब तक क्षेत्रज्ञ की स्वरूपता रहती है। इस लोक में क्षीणकर्मा होने पर मनुष्य को रूपान्तर प्राप्त होता है। अनात्मारूप इन्द्रियादिक बहु प्रकार से इस शरीर को पा कर, शरीरवान होते हैं। जो योगी इन्द्रियादिकों को शरीर से भिन्न मानते हैं; वे उस बुद्धि से आत्मारूप हो अविनाशी हो जाते हैं। वेद में अश्वमेध यज्ञ में अश्व मारने के सम्बन्ध में एक श्रुति है। उसके अनुसार अश्वमेध यज्ञ में मारे गये घोड़े के नेत्र सूर्य में और प्राण हवा में लय हो जाते हैं। इसी प्रकार शरीरधारियों के आत्मा अन्य लोकों में जा अविनाशी बने रहते हैं।

हे पृथिवीनाथ! मैं तुमसे यह हितकर प्रिय वचन कहता हूँ। सुनिये। तुमने यज्ञप्रसङ्ग में देवयान मार्ग की बात सुनी ही होगी। अतः तुम्हारे योग्य यह है कि, तुम उपासना द्वारा कर्मफल को प्राप्त कर, देवयान मार्ग का आश्रय ग्रहण करो। जिस समय तुमने यज्ञ किया था, उस समय देवताओं ने यज्ञ में आ, तुम्हारे हितसाधन के लिये यत्न किया था। जब देवता लोग यज्ञ में जमा हो, पशुओं को जाने की आज्ञा देते हैं, तभी वे जा सकते हैं। यज्ञ में अर्पित किये बिना वे नित्य नहीं होते। अर्थात् अविनाशी जीवात्मा यज्ञ द्वारा अभीष्ट जीवन्मुक्ति पाते हैं। यज्ञ न करने वाले अन्य जीवों को वह गति नहीं मिलती।

इसके बाद ज्ञाननिष्ठा का वर्णन है। जो पुरुष इस पञ्चभूतात्मक देव-वर्ग और आत्मा के अविनाशी होने पर, इस जीवात्मा के अनेक रूपों को देखता है, वह निर्बुद्धि है और इससे उसे पुत्रादि के शरीर त्यागने पर दुःख होता है। इसीको अज्ञान कहते हैं। जो कोई पुरुष या स्त्री आदि के वियोग में दोष देखे उसे उनका संयोग त्यागना चाहिये। क्योंकि यह आत्मा असंग है। इसमें अनात्मा का संयोग हो ही नहीं सकता। फिर बिना योग के

वियोग कैसा? इस जगत् में प्रिय वियोग ही तो दुःख का कारण है। जिस पुरुष ने ज्ञाननिष्ठा प्राप्त नहीं की, जो केवल जीव और ईश्वर की भिन्नता को जान कर, शरीराभिमान से उपासना द्वारा पृथक् है, वह योगी बुद्धि द्वारा विशेष ज्ञान प्राप्त कर, मिथ्या ज्ञान अर्थात् मोह से छूट जाता है। न दर्शन के कारण वे अदृश्य हुए हैं। इसीसे मैं उन्हें नहीं जानता और वे भी मुझे नहीं जानते हैं। क्योंकि मुझे वैराग्य नहीं है और वैराग्य ही मोक्ष का साधन है! यह परतंत्र जीव जिस जिस शरीर से जो जो कर्म करता है, उस उस शरीर से अवश्य ही उसे उस उस कर्म का फल भोगना पड़ता है। मानसिक पुण्य पाप का फल मन से और शारीरिक पुण्य पाप का फल शरीर ही से भोगना पड़ता है।

पैतीसवाँ अध्याय

जनमेजय को परीक्षित का प्रदर्शन

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! राजा धृतराष्ट्र नेत्रहीन होने के कारण जन्म भर अपने पुत्रों को न देख सके थे। किन्तु अब व्यास जी की कृपा से दृष्टि पा उन्होंने अपने पुत्रों का सुन्दर रूप देखा। पुरुषश्रेष्ठ राजा धृतराष्ट्र को वेदव्यास जी की कृपा से राजधर्म, ब्रह्मोपनिषद् और बुद्धि निश्चय प्राप्त हुआ। महाप्राज्ञ विदुर ने तपोबल से और धृतराष्ट्र ने तपोधन व्यास जी की कृपा से सिद्धि प्राप्त की।

जनमेजय ने कहा—हे वैशम्पायन! यदि व्यास जी मुझे मेरे पिता का दर्शन उनके उसी रूप और वेष तथा अवस्था में करा दें, तो मुझे आपकी बातों पर पूर्ण विश्वास हो सकता है। यदि मुझे व्यास जी की कृपा से अपने पिता के दर्शन हो जाँय; तो मैं परम प्रसन्न हो, अपने को कृतार्थ समझूँ और मेरी चिरकामना पूरी हो।

सूतपुत्र बोले कि, नरनाथ जनमेजय के इस कथन को सुन, वेदव्यास जी ने मृत राजा परीक्षित को बुलाया। तदनन्तर राजा जनमेजय ने सुरलोक से आये हुए मंत्रियों सहित अपने पिता को उनके पूर्ण रूप, वेष और अवस्था देखा। उनके साथ महात्मा शमीक और उनके पुत्र शृङ्गी ऋषि भी थे। तदनन्तर अति हर्षित हो, यज्ञ के अन्त में जनमेजय ने अपने पिता को स्नान करवा कर, स्वयं स्नान किये। उस समय स्नान कर राजा जनमेजय ने यायावर-कुलोत्पन्न जरत्कारुपुत्र द्विजश्रेष्ठ आस्तीक से कहा—हे आस्तीक! मुझे अपना यह यज्ञ महा-आश्चर्य-जनक जान पड़ा। क्योंकि मेरे शोक को नाश करने वाले पिता जी यहाँ आये हैं।

इस पर आस्तीक मुनि ने कहा—तपोधन द्वैपायन व्यास जिस यज्ञ में अधिष्ठाता हों, उसकी दोनों लोकों में विजय है। हे पाण्डवनन्दन! आपने विचित्र आख्यान सुना, सर्पों को भस्म किया और पिता की पदवी प्राप्त की। हे राजन्! आपके सत्य सङ्कल्प से तक्षक किसी प्रकार बच गया; समस्त ऋषियों का सम्मान हुआ और आपको आपके पिता के भी दर्शन मिल गये। इस पापनाशक इतिहास को सुन कर, बड़ा पुण्यफल प्राप्त हुआ है और बड़े लोगों के दर्शन पाकर हृदय की ग्रन्थि खुली है। जो धर्म के पक्ष में रहते हैं, सदाचारी हैं, और जिन्हें देख पाप दूर भागते हैं, उन्हें नमस्कार करना चाहिये।

सूतपुत्र बोले—राजा जनमेजय ने द्विजश्रेष्ठ वैशम्पायन मुनि से यह सब कथा सुन कर, उनका बारंबार सम्मान किया और उनका पूजन किया। तदनन्तर जनमेजय ने वैशम्पायन जी से वनवास की शेष कथा सुननी चाही।

छत्तीसवाँ अध्याय

धृतराष्ट्र को वेदव्यास द्वारा वैराग्य का उपदेश और युधिष्ठिरादि का वन से प्रत्यागमन

जनमेजय ने पूँछा—हे ब्रह्मन् ! राजा धृतराष्ट्र और राजा युधिष्ठिर ने अपने साथियों संगियों एवं पुत्रों तथा पौत्रों के मृतात्माओं को देख क्या किया ?

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय ! राजर्षि धृतराष्ट्र पुत्रों का अपूर्व दर्शन पा कर, शोक से निवृत्त हो गये और फिर अपने आश्रम में चले आये। जो अन्य लोग थे वे धृतराष्ट्र से आज्ञा ले अपने निर्दिष्ट स्थानों को चले गये। तदनन्तर पाण्डव तथा उनकी स्त्रियाँ राजा धृतराष्ट्र के निकट गयीं। अब युधिष्ठिर के पास बहुत थोड़े सैनिक रह गये थे। उस समय लोकपूजित वेदव्यास जी ने धृतराष्ट्र से कहा—हे महाबाहो ! जब मैं उन पवित्रकर्मा, प्राचीनकुलोद्भव एवं वेदान्त के ज्ञाता बड़े बूढ़े ऋषियों को अनेक प्रकार के कथा प्रसङ्ग सुनाता था; तब वे सब कथा प्रसङ्ग तुमने सुने ही थे। अब तुम अपने मन से शोक निकाल डालो। क्योंकि जो बुद्धिमान् जन होते हैं, वे अवश्यभावी के लिये दुःखी नहीं होते। तुम देवोपम नारद जी के मुख से देवताओं के गुप्त वृत्तान्त सुन ही चुके हो। जो लोग युद्ध में मारे गये हैं, वे शस्त्र से पवित्र हो, क्षत्रिय धर्मानुसार उत्तम गति को प्राप्त हुए हैं। तुमने अपने पुत्रों को देख ही लिया। वे सब परलोक में इच्छानुसार विहार किया करते हैं। बुद्धिमान् युधिष्ठिर, अपने भाइयों, स्त्रियों तथा सुहृद जनों सहित आपकी सेवा में उपस्थित ही हैं। अब इनको विदा करो, जिससे यह लौट कर अपना राजकाज देखें भालें। क्योंकि यहाँ वन में आये इन लोगों को एक मास से अधिक हो गया है। हे राजन् ! राज्यपद की रक्षा करना सरल नहीं है। क्योंकि राजाओं के स्वभावतः अनेक शत्रु हुआ ही

करते हैं। अतः अपने पद की रक्षा के लिये राजाओं को अनेक प्रकार के उपायों से काम लेना पड़ता है।

जब परम तेजस्वी व्यासदेव ने राजर्षि धृतराष्ट्र से इस प्रकार कहा; तब उन्होंने युधिष्ठिर को बुला कर, उनसे कहा, हे अजातशत्रो! तुम्हारा मङ्गल हो। अब तुम और तुम्हारे भाई, जो मैं कहता हूँ सो सुनें। हे राजन्! तुम्हारी कृपा से अब मुझे शोक पीड़ित नहीं करता। हे वत्स! तुम प्यारों के साथ मुझे वन में रह कर भी वैसा ही जान पड़ता है जैसा हस्तिनापुर में रहते समय जान पड़ता था। तुम्हारे होने से मैं अपने को पुत्रवान समझता हूँ। मेरा तुम्हारे ऊपर परम स्नेह है। हे महाबाहो! मैं तुम्हारे ऊपर तिल भर भी क्रुद्ध नहीं हूँ। अतः अब तुम लोग हस्तिनापुर को लौट जाओ। देर मत करो। तुम लोगों के यहाँ रहने से मेरे तप में बाधा पड़ती है। तुम्हारा तपयुक्त शरीर देख, मेरा मन तुम्हारी ओर आकृष्ट हुआ है मेरी तरह ही तुम्हारी ये दोनों माताएं सूखे पत्ते खा कर, व्रत करती हैं। अब इनका शरीर बहुत दिनों चलने वाला नहीं है। व्यास जी के तपोबल और तुम लोगों के समागम से मैंने परलोकगत दुर्योधनादि पुत्रों को देखा। हे अनघ! मेरे जीवन का उद्देश्य पूरा हो गया। अब मैं भलीभाँति उग्र तपस्या करूँगा। अब तुम भी मुझे आज्ञा दो। अब इस कुल के पिण्डदाता और इस कुल की कीर्ति बढ़ाने वाले तुम्हीं हो। हे वत्स! अब तुम या तो अभी अथवा कल सबेरे ही हस्तिनापुर को चल दो। देर न करो। हे भरतर्षभ! तुमने बहुत कुछ राजनीति सुनी है। अतः अब तुम्हें अधिक राजनीति का उपदेश देने की आवश्यकता नहीं है। बेटा! तुमने मेरी बहुत सेवा की है।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! धृतराष्ट्र के इन वचनों को सुन, युधिष्ठिर ने कहा—हे राजर्षे! मेरे भाई और मेरे अन्य सब साथी भले ही हस्तिनापुर चले जाँय; किन्तु मैं तो आपके और अपनी दोनों माताओं के पास रहूँगा।

इस पर गान्धारी बोली—बेटा! ऐसा मत करो; क्योंकि इस कौरव

कुल और मेरे ससुर के पिण्डदाता तुम्हीं हो। बेटा ! बस बहुत हुआ। अब जाओ। तुम्हारी सेवा से हम तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हैं। राजर्षि तुम्हारे पितृ-स्थानीय हैं। अतः तुम्हें उनकी आज्ञा माननी चाहिये।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय ! जब गान्धारी ने युधिष्ठिर को इस प्रकार समझाया; तब वे आँखों में आँसू भर अपनी माता कुन्ती से बोले—माता ! महाराज धृतराष्ट्र और यशस्विनी गान्धारी मुझे बिदा करती हैं, किन्तु मेरा मन तो आपमें अटका है। अतः मैं दुःखियारा क्यों कर जाऊँ। हे धर्मचारिणि ! मैं आपके तप में कुछ भी विघ्न नहीं करता। क्योंकि मैं स्वयं जानता हूँ कि, तप से बढ़ कर सद्गति प्राप्त करने का अन्य कोई साधन नहीं है। तप द्वारा ही मोक्ष मिलती है। फिर जैसी रुचि मेरी पहले थी, वैसी मेरी रुचि अब राज्य करने में नहीं रह गयी। मेरा मन भी तप करने को चाहता है। हे कल्याणि ! पूर्ववर्त्ती राजाओं से शून्य, यह अखिल भूमण्डल मेरे लिये आनन्दप्रद नहीं रह गया। हमारे बान्धवों का नाश हो गया। पूर्ववत् हमारा बल पराक्रम भी अब नहीं रह गया। पाञ्चाल देश का तो मटियामेंट ही हो गया। वहाँ का तो नाम मात्र रह गया है। क्योंकि वहाँ के राजघराने में अब नामलेवा भी कोई नहीं रह गया। द्रोणाचार्य द्वारा युद्ध में वहाँ के सब लोग मारे गये और जो उनके हाथ से बच गये थे, उन्हें रात में सोते समय, अश्वत्थामा ने मार डाला। चँदेरी और मत्स्य देश के राजघराने भी नष्ट हो गये। हमने जिन राजघरानों को देखा था—उनमें केवल यादव-राज-वंश अब देख पड़ता है। सो भी इसलिये कि वे सब वासुदेव के भाई बन्धु हैं। अब मैं राज्य करने के लिये नहीं, बल्कि धर्म के लिये जीवित रहना चाहता हूँ। आप अब हम सब को कल्याण की दृष्टि से देखो। क्योंकि हम लोगों को आपके दर्शन होना अब दुर्लभ है। क्योंकि अब राजर्षि धृतराष्ट्र असह्य तीव्र तप आरम्भ करेंगे।

यह सुन कर सहदेव ने आँखों में आँसू भर कर युधिष्ठिर से कहा—हे भरतर्षभ ! मैं तो माता को छोड़ न जाऊँगा। आप शीघ्र जाँय। मैं भी

तप कर तपोबल से यहाँ रह कर अपना शरीर सुखाऊँगा और राजा धृतराष्ट्र, गान्धारी और माता कुन्ती की सेवा किया करूँगा।

यह सुन कुन्ती ने सहदेव से कहा—बेटा! तुम ऐसा मत कहो। जाओ! मेरी आज्ञा का पालन करो। बेटा! आगे तुम्हारा कल्याण हो। तुम्हारा चित्त स्थिर हो। तुम्हारे यहाँ रहने से हमारे तप में विघ्न पड़ेगा। तुम्हारे स्नेह के फंदे में फँस कर, मेरा उत्तम तप नष्ट हो जायगा, बेटा! इसीसे मैं कहता हूँ कि तुम जाओ, अब हमारी आयु बहुत थोड़ी रह गयी है।

हे जनमेजय! कुन्ती के इन वचनों को सुन, सहदेव और मुख्य कर युधिष्ठिर का मन स्थिर हुआ। तदनन्तर युधिष्ठिर ने महाराज धृतराष्ट्र एवं माताओं से आज्ञा ले और उनको प्रणाम कर उनसे पूँछा—

युधिष्ठिर बोले—राजन्! हम आपका आशीर्वाद ले कर राजधानी को लौट जाँयगे। आपके आशीर्वाद से हम लोग पाप से मुक्त हो, आपके आज्ञानुसार हस्तिनापुर को चले जाँयगे।

इस पर राजर्षि धृतराष्ट्र ने प्रसन्न हो युधिष्ठिर को जाने की आज्ञा दी। तदनन्तर धृतराष्ट्र ने भीमसेन को अपने मन की सफाई का विश्वास दिलाया। तब निष्कपट भाव से भीम ने भी उनको प्रणाम किया। धृतराष्ट्र ने अर्जुन, नकुल तथा सहदेव को भी हार्दिक आशीर्वाद दे, उन्हें जाने की आज्ञा दी। तब उन्होंने राजा को तथा दोनों माताओं को प्रणाम किया और उनकी परिक्रमा की। माता कुन्ती ने उनके मस्तक सूँघे। दूध पीने से रोके हुए बछड़े की तरह बार बार निहारते हुए पाण्डवों ने उन सब की परिक्रमा की। फिर द्रौपदी आदि पाण्डवों की स्त्रियों ने भी बड़े भक्तिभाव से सासों और ससुर को प्रणाम किया। दोनों सासों ने उन्हें आशीर्वाद दे बिदा किया। तब वे भी अपने पतियों के साथ वहाँ से चल दीं। "रथ जोतो"—इस प्रकार सारथियों के चीत्कार का, घोड़ों के हिनहिनाने का तथा

ऊँटों के बलबलाने का कोलाहल सुनायी पड़ा। तदनन्तर स्त्रियों, भाइयों, बन्धु बान्धवों तथा सैनिकों सहित महाराज युधिष्ठिर वहाँ से रवाना हो हस्तिनापुर में आये।

सैंतीसवाँ अध्याय

नारदमुनि का हस्तिनापुर में आगमन

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! जब वन से लौट कर, हस्तिनापुर में पाण्डवों को रहते हुए दो वर्ष बीत गये; तब एक दिन देवर्षि नारद हस्तिनापुर में महाराज युधिष्ठिर के पास आये। महाराज युधिष्ठिर ने उनका यथाविधि पूजन कर, उन्हें आसन पर बिठा, उनसे विश्वस्त भाव से कहा—हे वेदपाठिन्! आज यहाँ बहुत दिनों बाद आपके दर्शन हुए हैं। आप कुशलपूर्वक तो हैं? हे द्विजवर! आप कहाँ कहाँ हो कर यहाँ पधारे हैं? आज्ञा दीजिये। मैं आपकी क्या सेवा करूँ? क्योंकि आप तो हम लोगों की परम गति हैं।

इस पर देवर्षि नारद ने कहा—मैं गङ्गा आदि तीर्थों में भ्रमण करने के कारण बहुत दिनों से यहाँ नहीं आ सका। इस समय मैं तपोवन से आ रहा हूँ।

युधिष्ठिर ने कहा—गङ्गातटवर्त्ती प्रदेशवासियों ने मुझसे कहा है कि—महात्मा धृतराष्ट्र इन दिनों बड़ा उग्र तप कर रहे हैं। आपने तो धृतराष्ट्र, गान्धारी और कुन्ती तथा सञ्जय को देखा ही होगा। वे सब हैं तो प्रसन्न? भगवन्! मुझे अपने चचा धृतराष्ट्र का कुशल संवाद सुनने की उत्कण्ठा है। यदि आपसे उनकी भेंट हुई हो तो आप कृपया उनका कुशल क्षेम बतलावें।

नारद जी बोले—मैंने तपोवन में जो कुछ देखा और सुना है उसे आप चित्त को स्थिर कर सुनें। हे कौरवनन्दन! जब आप कुरुक्षेत्र से लौट कर यहाँ चले आये, तब आपके चाचा धृतराष्ट्र कुरुक्षेत्र से हरिद्वार को गये। उनके साथ अग्निहोत्र के सामान के साथ साथ, गान्धारी, कुन्ती, सञ्जय और याजक ब्राह्मण भी गये। वहाँ धृतराष्ट्र मुख में गुलिका रख (अर्थात् मौन व्रत धारण कर) केवल वायु पी कर तप करने लगे। वनवासी समस्त ऋषियों से प्रशंसित परम तपस्वी धृतराष्ट्र ने वहाँ छः मास तक तप किया। उनके शरीर में केवल अस्थिचर्म रह गया है। गान्धारी केवल जल को पी कर रहती है और कुन्ती एक एक मास पीछे एक दिन भोजन करती है। सञ्जय ने छठवें दिन भोजन कर समय काटा। हे प्रभो! याजक एक स्थान में रह, राजा धृतराष्ट्र के सामने और उनके पीठ पीछे विधिपूर्वक हवन करते रहे। धृतराष्ट्र ने एक स्थान पर रहना त्याग दिया और वे वन में विचरने लगे। दोनों देवियाँ और सञ्जय उनके साथ हो लिये। सञ्जय तो धृतराष्ट्र के और कुन्ती देवी गान्धारी की पथप्रदर्शक बनी। एक दिन जब महाराज धृतराष्ट्र गङ्गास्नान कर, डेरे की ओर लौटे आ रहे थे; तब बड़े वेग से पवन चला और वन में दावानल प्रकट हुआ। दावानल ने पवन के साहाय्य से शीघ्र ही प्रचण्ड रूप धारण कर लिया और वह वन को चारों ओर से घेर कर, वन को भस्म करने लगा। उस वन के सर्पादि जल कर भस्म हो गये। शूकरों ने तालाबों में घुस अपने प्राण बचाये। महाराज धृतराष्ट्र और गान्धारी सहित कुन्ती और सञ्जय आहार न करने के कारण अत्यन्त निर्बल तो हो ही गये थे। अतः वे वहाँ से भाग न सके। जब वन को भस्म करता हुआ अग्नि धृतराष्ट्र के निकट आ पहुँचा, तब धृतराष्ट्र ने सञ्जय से कहा—हे सञ्जय! तुम वहाँ चले जाओ, जहाँ अग्नि तुम्हें भस्म न कर सके। हम लोग तो इस अग्नि में अपने शरीरों को भस्म कर परम गति प्राप्त करेंगे। यह सुन सञ्जय घबड़ाना और बोला—हे राजन्! अग्नि में जल कर मरना तो अच्छा नहीं। साथ ही अग्नि से बचने का भी कोई उपाय नहीं देख पड़ता। अतः यहाँ

अब जो कुछ करना हो सो शीघ्र करना चाहिये। सञ्जय के इन वचनों को सुन, धृतराष्ट्र बोले—हम लोग तो स्वयं घर से निकल कर वन में आये हैं। अतः हम लोगों के लिये यह मृत्यु अनुपकारी नहीं है। जल, अग्नि, वायु और अनशन व्रत ये सब कर्म तपस्वी लोगों के लिये प्रशंसनीय होते हैं। राजा धृतराष्ट्र ने सञ्जय से कहा—हे सञ्जय! जाओ, देर न करो। यह कह और पूर्व की ओर मुख कर और समाधि लगाये धृतराष्ट्र मय गान्धारी और कुन्ती सहित बैठ गये। तब उनकी परिक्रमा कर, बुद्धिमान् सञ्जय ने कहा—हे प्रभो! अब आत्मा को परमात्मा में लगाओ। ऋषिनन्दन राजा धृतराष्ट्र ने तदनुसार ही किया। वे इन्द्रियों को रोक कर, काष्ठ की तरह हो गये। भाग्यवती गान्धारी और आपकी जननी कुन्ती तथा आपके चचा धृतराष्ट्र उस दावानल में भस्म हो गये। सञ्जय बच गया। सञ्जय को गङ्गातट पर तपस्वियों के साथ बैठे हुए मैंने देखा था। वह बुद्धिमान् एवं तेजस्वी सञ्जय भी यह सब वृत्तान्त कह और उन ऋषियों से आज्ञा ले हिमालय पर्वत पर चला गया। राजन्! इस प्रकार तुम्हारे चाचा और दोनों माताओं की मानवी लीला पूरी हुई। संयोगवश मैंने उन तीनों के शरीरों को अग्नि में भस्म होते हुए देखा। जब ऋषियों ने तपोधन राजा धृतराष्ट्र की मृत्यु का वृत्तान्त सुना; तब वे सब उस तपोवन में गये। उन लोगों को उनकी इस गति के लिये शोक नहीं हुआ। हे राजन्! तुम भी उनके लिये शोक मत करो, क्योंकि वे तीनों स्वयं ही अग्नि में भस्म हुए हैं।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! धृतराष्ट्र और दोनों देवियों के स्वर्गवास होने का समाचार सुन, समस्त पाण्डव शोकातुर हो गये। अन्तःपुरवासिनी स्त्रियाँ और प्रजा जन इस दुःखद संवाद को सुन हाहाकार करने लगे। युधिष्ठिर अपनी माता की मृत्यु का समाचार सुन अपने को धिक्कारने लगे और माता का स्मरण कर रोने लगे। उनके साथ भीमसेनादि उनके भाई भी रोये। कुन्ती की मृत्यु का हाल सुन महलों में स्त्रियाँ बड़े

ज़ोर से रोयीं। थोड़ी देर तक महा कुहराम मचा। तदनन्तर धर्मराज ने आँसू रोक और विलाप कर कहा।

अड़तीसवाँ अध्याय

पाण्डवों का विलाप

युधिष्ठिर बोले—हम लोगों के जीवित रहते वन में घोर तप-निरत महाराज धृतराष्ट्र की एक अनाथ की तरह मृत्यु होने से, जान पड़ता है, पुरुषों की गति का जानना बड़ी ही कठिन बात है। दावानल में अपना शरीर भस्म करने वाले महाराज धृतराष्ट्र के सौ पुत्र थे। साठ सहस्र हाथियों जितना पराक्रम रखने वाले—महाराज धृतराष्ट्र दावानल में जल मरे। पूर्व काल में जिनके ऊपर सुन्दरी स्त्रियाँ ताड़ के पङ्खों से हवा करती थीं; दावानल से घिरने पर उन्हीं पर गृद्धों ने अपने परों से हवा की होगी। जिनको सूत मागध विरुदावली का गान कर जगाते थे, वे महाराज, मुझ पापी की करतूतों से पृथिवी पर पड़े लोटा किये। मुझे पतिव्रता, हतसन्तान और पतिलोक में वर्त्तमान यशस्विनी गान्धारी के लिये इतना शोक नहीं, जितना मुझे कुन्ती के लिये है। उसने पुत्रों के ऐश्वर्य को त्याग कर, वनवास स्वीकार किया। हम लोगों के इस राज्य, बल, पराक्रम और क्षात्रधर्म को धिक्कार है। क्योंकि हम जीते हुए भी अब मरे के समान हैं। हे नारद! काल की गति निस्सन्देह बड़ी सूक्ष्म है। यदि ऐसा न होता तो कुन्ती राज्य त्याग कर, वनवासिनी क्यों होती? जब मैं यह सोचता हूँ कि, युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन की माता हो कर, कुन्ती एक अनाथिनी की तरह अग्नि में जल मरी; तब मुझे अपना कुछ भी चेत नहीं रहता। खाण्डव वन को भस्म करवाने में अग्निदेव को अर्जुन ने व्यर्थ ही सहायता की। मैं तो कहूँगा कि अग्निदेव बड़े कृतघ्न हैं। क्योंकि उन्होंने अर्जुन के उस उपकार का कुछ भी विचार न

किया और उसकी माता को भस्म कर डाला। अग्नि को धिक्कार है और अर्जुन के प्रसिद्ध सत्यसङ्कल्पत्व को भी धिक्कार है। हे देवर्षे! महाराज धृतराष्ट्र का अग्नि में जल मरना—मेरे सामने यह दूसरा बड़ा दुःख उपस्थित हुआ है। इस पृथिवी पर राज्य करने वाले और मन्त्रों से पवित्र अग्नियों के रहते—उस महावन में उनकी मृत्यु इस प्रकार क्यों हुई? मुझे विश्वास है कि, जिस माता कुन्ती के शरीर में केवल हड्डियाँ ही रह गयी थीं—वह अग्नि से भयभीत हो, और "हाय बेटा धर्मराज!" "हाय बेटा भीमसेन! मेरी रक्षा करो, कह कर चिल्लाती हुई, अग्नि में भस्म हुई होगी। हाय मेरी माता अग्नि में जल कर भस्म हो गयी! उसे सहदेव सब से अधिक प्यारा था। हाय वह वीर सहदेव भी अन्तिम समय उसके काम न आ सका। यह सुन वे पाँचों भाई मिल कर वैसे ही रोने लगे, जैसे प्रलयकाल में प्राणधारी रोते हैं। उनके रोने का शब्द, अन्तःपुरवासिनी स्त्रियों के रुदन-शब्द के साथ मिल, पृथिवी और आकाश में व्याप्त हो गया।

उन्तालीसवाँ अध्याय

नारद द्वारा युधिष्ठिर को सान्त्वना प्रदान

नारद जी बोले—हे युधिष्ठिर! आपका यह विचारना कि, महाराज धृतराष्ट्र की अनाथ की तरह मृत्यु हुई ठीक नहीं। क्योंकि उनकी मृत्यु के बारे में मैंने जो सुना है, उसे मैं आपसे कहता हूँ सुनिये। मैंने सुना है कि, यज्ञ करने के उपरान्त वन में प्रवेश करते समय, उस वायुभक्षी एवं बुद्धिमान ने अग्नियों को त्याग दिया था। अतः उनके याजक वन में अग्नियों को त्याग, वहाँ से चल दिये थे। निश्चय वे ही अग्नियाँ उस वन में फैल गयी थीं और वन प्रज्ज्वलित हो उठा था। वहाँ के तपस्वियों का

यही कहना है। हे भरतश्रेष्ठ महाराज युधिष्ठिर ! गङ्गा के उस शुष्क वन में वे स्वयं ही जा कर भस्मसात् हुए हैं। हे अनघ ! गङ्गातट पर जिन ऋषियों से मेरी भेंट हुई थी—उनका यही कथन है। महाराज धृतराष्ट्र अपने ही अग्नि में भस्मसात् हुए हैं। अतः उनकी मृत्यु के लिये आप सोच न करें। क्योंकि उन्हें परमगति मिली है। हे राजेन्द्र ! आप समस्त भाई मिल कर उनके निमित्त जलदान-क्रिया करें।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय ! इसके बाद युधिष्ठिर, अपने सगे भाइयों और स्त्रियों को साथ ले, चले। उनके साथ पुरवासी भी हो लिये। वे सब एक वस्त्र धारण कर गङ्गा की ओर चले, फिर उन सब ने युयुत्सु को आगे कर गङ्गा में स्नान किये और धृतराष्ट्र के उद्देश्य से जलाञ्जलि प्रदान की। तदनन्तर गोत्रोच्चारण पूर्वक गान्धारी और कुन्ती के प्रेत कर्म करने के लिये वे लोग नगर के बाहिर ठहर गये। महाराज युधिष्ठिर ने कर्मकाण्ड में पटु सत्यकर्मा ब्राह्मणों को हरिद्वार के उस स्थान पर भेजा, जहाँ धृतराष्ट्र भस्म हुए थे। उन ब्राह्मणों के साथ अन्य लोगों को धन दे कर उनको आज्ञा दी कि हरिद्वार में महाराज धृतराष्ट्र का क्रियाकर्म किया जाय। बारहवें दिन शुद्ध हो राजा युधिष्ठिर ने विधिपूर्वक धृतराष्ट्र तथा दोनों माताओं का श्राद्ध किया। उनके निमित्त युधिष्ठिर ने सोना चाँदी, गौ और अन्य अनेक बहुमूल्य पदार्थ दान किये। युधिष्ठिर ने धृतराष्ट्र, गान्धारी और कुन्ती के नामों पर अलग अलग बहुत सा धन दान में दिया। उस समय जिसने जो माँगा—वही पाया। सेजें, भक्ष्य पदार्थ, मणि, रत्न, धन, वाहन, कपड़ा, अच्छी अलंकृत दासियाँ राजा ने दोनों माताओं के नाम पर दान कीं। अनेक दान देने बाद युधिष्ठिर हस्तिनापुर में गये। उनकी आज्ञा से, हरिद्वार को गये हुए लोग, अस्थिचयन कर गङ्गा तट पर आये। वहाँ गन्ध पुष्पादि से उन अस्थियों का पूजन किया गया और वे गङ्गा में बहा दी गयीं और महाराज युधिष्ठिर को इसकी सूचना दे दी गयी।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय ! देवर्षि नारद जी भी महाराज युधिष्ठिर को सान्त्वना प्रदान कर, अपने इष्ट स्थान को चल दिये। समर में हतपुत्र और जाति बिरादरी, मित्र भाई बन्धु और स्वजनों को सदा धन देने वाले धीमान धृतराष्ट्र इस तरह पन्द्रह वर्ष नगर में और तीन वर्ष वन में रहे। उस समय युधिष्ठिर, जाति बिरादरी और स्वजनों के युद्ध में मारे जाने से राज्य पा कर भी प्रसन्न नहीं हुए।

आश्रमवास पर्व के अन्त में, उचित है कि श्रोता सावधानी के साथ ब्राह्मणों को उत्तम भोजन करावे।

आश्रमवास पर्व समाप्त हुआ

हिन्दी

महाभारत

मुसलपर्व

लेखक
चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्मा

प्रकाशक
रामनरायन लाल
पब्लिसर और बुकसेलर
इलाहाबाद

१९३०

मुशलपर्व

विषय-सूची

आ
होत

धृत
दूर
सब
ष्ठिर
द्रौप
सञ्ज
शरी
युधि
जैसे
धंर
गज

और
पद्मद
मती

के स

मुशलपर्व

प्रथम अध्याय

युधिष्ठिर को अपशकुनों का दिखलायी पड़ना

श्रीनारायण, नरोत्तम नर और सरस्वती देवी को प्रणाम कर, जय नामक इतिहास को पढ़े।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय ! युधिष्ठिर को राज्य करते करते जब पैंतीस वर्ष पूरे हो चुके, तब छत्तीसवें वर्ष के आरम्भ ही में उन्हें बड़े बड़े अपशकुन देख पड़े। कंकड़ियों से युक्त रूखा वायु चलने लगा। वे पक्षी जिनका बाईं ओर आना शुभ माना गया है, वे दहिनी ओर चक्कर काटने लगे ! बड़ी बड़ी नदियों का प्रवाह उलट गया, दिशाओं में कुहरा छा गया। अँगारे बरसाने वाली उल्काएं आकाश से गिरने लगीं। ऐसी आँधी चली कि, धूल से सूर्यमण्डल छिप गया। राहु और केतु उदय हुए—इससे आकाश की शोभा नष्ट हो गयी। सूर्य और चन्द्रमा के पार्श्व (गोल चक्कर) बैठने लगे इनका रंग काला, भस्म जैसा और लाल रंग का होता था। उन पार्श्वों को देख भय मालूम पड़ता था।

हे राजन् ! भयभीत करने वाले ऐसे अनेक अपशकुन दिखलायी पड़ते थे। हे राजेन्द्र ! इनका प्रत्यक्ष फल यह हुआ कि, युधिष्ठिर ने मूसल द्वारा वृष्णिवंशियों के मरण का दुस्संवाद सुना। युधिष्ठिर ने यह भी सुना कि, श्रीकृष्ण और बलराम ने भी शरीर त्याग दिये हैं। इस दुःखदायी समाचार को सुन, युधिष्ठिर ने भाइयों को बुला कर, उनसे कहा—ब्रह्मशाप से वृष्णि-

वंशी आपस में युद्ध कर, विनष्ट हो गये। अतः इस समय हमारा क्या कर्त्तव्य है? यह सुन पाण्डवों को बड़ा दुःख हुआ; किन्तु समुद्र सूख जाने की तरह उनको श्रीकृष्ण का मरण असम्भव प्रतीत हुआ। पहले किसी को इस बात पर विश्वास न हुआ। पाण्डव लोग मूसल से होने वाले नाश का संवाद सुन, बहुत ही उदास हुए और हतसङ्कल्प से हो बैठ गये।

जनमेजय ने पूँछा—हे वैशम्पायन जी! अन्धक, वृष्णि और महारथी भोजवंशी लोग, श्रीकृष्ण के रहते क्यों कर विनष्ट हुए? आप कृपया यह वृत्तान्त विस्तार से कहिये।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! युधिष्ठिर को राज्य मिलने के छत्तीसवें वर्ष वृष्णियों में दुर्नीति ने ज़ोर पकड़ा। वे लोग काल की प्रेरणा से आपस में मूसलों से लड़ कर मर गये।

जनमेजय ने पूँछा—भगवन्! वृष्णि, अन्धक और भोजवंशी वीर योद्धा किसके घोर शाप से नष्ट हुए? हे द्विजवर्य! यह वृतान्त विस्तार से मुझे सुनाइये।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! एक दिन सारण आदि वीरों ने देखा कि, तपोधन विश्वामित्र, कण्व और नारद जी द्वारका में आये हैं। तब दैवदण्ड से पीड़ित उन राजकुमारों ने साम्ब को स्त्री की तरह सजा कर, अपने आगे किया और उन ऋषियों के निकट जा बोले—हे ऋषिगण! अमित तेजस्वी बभ्रु की इस पुत्राभिलाषिणी पत्नी के क्या उत्पन्न होगा? कृपा कर भली भाँति सोच विचार कर आप बतलावें।

हे राजन्! राजकुमारों की इस दिल्लगी से उन ऋषियों ने अपना अपमान समझा और वे क्रुद्ध हो बोले—वासुदेव का पुत्र यह शाम्ब, वृष्णि और अन्धकों के नाश के लिये महाभयङ्कर लोहे का एक मूसल जनेगा। तुम लोग बड़े दुर्वृत्त, गर्वीले और नृशंस हो गये हो। अतः तुम लोगों के कारण ही श्रीकृष्ण और बलदेव जी को छोड़,

सारा यदुकुल नष्ट हो जायगा। बलदेव जी समुद्र में प्रवेश कर शरीर त्याग करेंगे और श्रीकृष्ण को जरा नामक बहेलिया घायल करेगा।

हे राजन्! उन दुराचारियों और दुर्बुद्धियों से तिरस्कृत एवं मारे क्रोध के रक्त वर्ण नेत्रों वाले मुनियों ने आपस में सलाह कर यह शाप दिया था। तदनन्तर उन्होंने केशव का ध्यान किया और मन ही मन उनसे इस शाप के लिये क्षमाप्रार्थना की। इस शाप का वृत्तान्त सुन, बुद्धिमान् श्रीकृष्ण जी ने वृष्णियों से कहा—ऐसा होना ही चाहिये था। यह कह जगत्पति श्रीकृष्ण अपनी नगरी में गये और उन्होंने होने वाले नाश के विरुद्ध कोई प्रयत्न न किया। अगले दिन साम्ब के पेट से वह मूसल निकला जिससे वृष्णियों, अन्धकों और भोजवंशियों का सर्वनाश हुआ। उस यमदूत सदृश मूसल के उत्पन्न होने की बात जब राजा उग्रसेन को मालूम हुई; तब वे दुःखी हुए और उस मूसल को तुड़वा उसके छोटे छोटे टुकडे करवा दिये और उन्हें उठवा कर समुद्र में फिकवा दिया। श्रीकृष्ण, बलदेव जी और महात्मा बभ्रु के परामर्श से राजा उग्रसेन ने शहर भर में यह घोषणा करवा दी कि, आज से वृष्णि, अन्धक मद्यपान न करें। यदि हमारी आज्ञा के विरुद्ध कोई ऐसा करेगा तो उसे बान्धवों सहित सूली दी जायगी। द्वारकावासी लोगों ने इसे बलदेव जी की आज्ञा समझ और राजभय से भयभीत हो मद्यपान न करने का नियम सा बना लिया।

दूसरा अध्याय

वृष्णियों के घरों में उत्पात

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! अन्धक और वृष्णियों के इस प्रकार सावधान रहने पर भी, उनके घरों में वह कराल, विकट मुण्ड वाला, एवं कृष्ण-पिङ्गल-वर्ण कालपुरुष सदा घूमने लगा। किसी को वह दिखलायी भी

पड़ता था और किसी को नहीं भी। यादवों ने उसका वध करने के लिये उस पर अगणित बाण छोड़े, किन्तु उस सर्व-भूत-क्षय-कारी काल को कोई भी घायल न कर सका। वृष्णियों और अंधकों के नाशसूचक अपशकुन होने लगे। बड़ा भयङ्कर अंधड़ चला। राह बाट में जहाँ देखो वहाँ चूहे देख पड़ने लगे। राहों में फूटे मिट्टी के बर्तनों के ढेर लग गये। रात में जब लोग सोते तब चूहे उनके सिर के बाल और नख कुतर जाया करते थे। उन लोगों के घरों में पली हुई मैनाएँ रात दिन ची ची कू ची शब्द करने लगीं। बकरे स्यारों की बोली बोलने लगे। कालप्रेरित पाण्डुर वर्ण और लाल पंजों वाले कबूतर उन लोगों के घरों में घूमने लगे। गौओं के पेट से गधे, खच्चरी के पेट से ऊँट, कुतिया के पेट से बिलार और न्योली के पेट से चूहे उत्पन्न होने लगे। इतने पर भी वृष्णिवंशियों ने पाप कर्म करना न छोड़ा। वे ब्राह्मणों, पितरों और देवताओं से द्वेष करने लगे। वे गुरुजनों का भी अपमान करने लगे। किन्तु श्रीकृष्ण और बलदेव इन कार्यों से अलग रहते थे। पति लोग अपनी पत्नियों को और पत्नियाँ अपने पतियों को धोखा देने लगीं। आग वामावर्त्त हो लाल, काली और मजीठ के रंग की लौं निकालने लगी। उस पुरी में नित्य सूर्योदय और सूर्यास्त के समय सूर्य को घेरे हुए कबंध (बिना सिर के रुण्ड) देख पड़ने लगे। बड़ी सावधानी और शुद्धता पूर्वक बनाये हुए भक्ष्य भोज्य पदार्थों में कीड़े पड़ने लगे। जब महात्मा लोग जप करने बैठते या पुण्याहवाचन के मंत्र पढ़ते, तब उन्हें अपने सामने पुरुषों के दौड़ने का धप धप शब्द सुन पड़ता था। यादवों को आकाश में आपस में ग्रह नक्षत्र टकराते हुए देख पड़ते थे और यथास्थान कोई नक्षत्र या ग्रह नहीं देख पड़ता था। अपने नक्षत्र का न देख पड़ना अपने मरण को सूचक है। जब पाञ्चजन्य शङ्ख बजाया जाता; तब उसकी आवाज़ वृष्णियों और अन्धकों को गधे के रेंकने जैसी सुन पड़ती थी। उस समय हृषीकेश ने त्रयोदशी में अमावास्या अर्थात् कृष्ण पक्ष में केवल १३ दिवस को देख; यादवों से कहा—यह देखो, शुक्लपक्ष में भी एक तिथि की हानि

हो गयी। चतुर्दशी ही को पूर्णिमा हुई और ग्रहण पड़ा। महाभारत युद्ध के समय भी ऐसा ही हुआ था। यह योग हम लोगों के नाश का सूचक है। समय का विचार कर केशव ने फिर कहा—हतबान्धवा गान्धारी ने पुत्रशोक से आर्त हो जो बात कही थी—उसके पूरे होने का समय अब उपस्थित हुआ है। पूर्वकाल में सेनाओं की व्यूहरचना होने पर, युधिष्ठिर ने दारुण उत्पातों को देख कर, जो आशङ्का की थी, इस समय भी वे दारुण उत्पात हो रहे हैं।

श्रीकृष्ण ने यह कह और उन दैवकृत अपशकुनों को सत्य करने की कामना से, तीर्थयात्रा करने के लिये आज्ञा दी। तब द्वारकावासियों ने, श्रीकृष्ण के कथनानुसार, नगर भर में तीर्थयात्रा की घोषणा का प्रचार कर दिया।

तीसरा अध्याय

अन्धकों और वृष्णियों की सपरिवार प्रभासक्षेत्र-यात्रा

वैशम्पायन जी बोले—काले रंग की स्त्री, रात के समय पाण्डुर दाँत दिखाती हुई और हँसती हुई, यादवों के घर में घुस जाती थी और सोती हुई यादवों की स्त्रियों के मंगल सूत्रादिकों को चुरा ले जाती थी। इस प्रकार वह काली स्त्री द्वारका भर में घूमती फिरती थी। वृष्णियों और अन्धकों ने स्वप्न में देखा कि, उनकी अग्निहोत्र-शालाओं और रहने के घरों में बड़े भयानक गिद्ध घुस आये हैं और उन्हें घायल कर रहे हैं। उन लोगों ने स्वप्न में यह भी देखा कि, उनके भूषणों, छत्रों, ध्वजाओं और कवचों को भयङ्कर राक्षस लूट रहे हैं। वृष्णियों और अन्धकों के देखते देखते, अग्निदेव प्रदत्त, श्रीकृष्ण जी का वज्रनाभि और लोहमय चक्र आकाश में चला गया। दारुक के सामने ही मन की तरह शीघ्रगामी, चारो श्रेष्ठ घोड़े, दिव्य और सूर्य की तरह दमकते हुए रथ को लिये हुए, सागर के ऊपर हो

कर चले गये। श्रीबलदेव जी और श्रीकृष्ण जी ताल तथा गरुड़ से चिन्हित जिन ध्वजाओं का नित्य पूजन किया करते थे, उन दोनों विशाल ध्वजाओं को ऊपर ही से अप्सराओं ने खींच लिया और रात दिन वे यही कहती थीं कि तीर्थयात्रा को जाओ। तब अंधकों और वृष्णियों ने बाल बच्चों सहित तीर्थयात्रा की तैयारियाँ कीं। उन्होंने अपने साथ ले जाने के लिये नाना प्रकार की भोजन-सामग्री माँस आदि तथा मदिराएं तैयार कीं। वे लोग हाथियों, घोड़ों तथा अन्य वाहनों पर सवार हो, सेनाओं सहित नगर के बाहिर आये। अपने साथ खाने पीने का बहुत सा सामान लिये हुए यादव-गण, राजाज्ञा से स्त्रियों सहित प्रभासक्षेत्र में जा पहुँचे और वहाँ टिक गये। उस समय मोक्षविशारद उद्धव ने योगबल से जान लिया कि यहीं समुद्र के तट पर यादवों का अब शीघ्र ही नाश होने वाला है। अतः वे उन्हें प्रभास क्षेत्र में पहुँचा, वहाँ से चल दिये। श्रीकृष्ण जी भी जानते थे कि, वृष्णियों और अंधकों का नाश अब अति निकट है। अतः उन्होंने भी अनुनय विनय कर उद्धव को रोकना उचित न समझा। मृत्यु के चंगुल में पड़े हुए यादवों ने परम तेजस्वी उद्धव को अपने तेज से पृथिवी और आकाश को परिपूरित कर, जाते हुए देखा। उद्धव के चले जाने बाद, प्रभास तीर्थ में उग्रवीर्य यादवों की सैकड़ों तुरही बजीं—नट नर्तकों ने गाना बजाना आरम्भ किया और साथ ही साथ उन लोगों ने मदिरापान करना आरम्भ किया। ब्राह्मणों के देने के लिये जो पकवान् वे अपने साथ लाये थे, नशे में चूर होने के कारण वे सब पकवान्, उन लोगों ने बन्दरों को खिला दिये। श्रीकृष्ण के सामने ही बलदेव जी, सात्यकि, गद और बभ्रु ने कृतवर्मा के साथ शराब पी। तदनन्तर नशे में चूर हो सब लोगों के सामने सात्यकि ने हँस कर और तिरस्कार कर, कृतवर्मा से कहा—हे हार्दिक्य! जानते हो—कौन पुरुष क्षत्रिय के घर में पैदा हो, मृतक समान सोते हुए लोगों का वध किया करता है! तुमने जो कार्य किया है, उसे यदुवंशी कभी सहन नहीं कर सकते।

जब सात्यकि ने यह कहा—तब रथियों में श्रेष्ठ प्रद्युम्न ने कृतवर्मा का अपमान कर के, सात्यकि के कथन का समर्थन किया।

इस पर कृतवर्मा बड़ा क्रुद्ध हुआ और अपना बाँया हाथ दिखा कर, बोला—जिस समय भुजा कटने पर, भूरिश्रवा ध्यानमग्न हो बैठा हुआ था, तब तुमने वीर हो कर, किस बुरी तरह निष्ठुरता के साथ उसको मार भूमि पर गिरा दिया था। कुछ अपनी भी याद है?

कृतवर्मा के इस आक्षेप को सुन केशव बहुत क्रुद्ध हुए और उन्होंने त्योरी चढ़ा कृतवर्मा की ओर देखा। उस समय सात्यकि ने सत्राजित् की स्यमन्तक मणि सम्बन्धी कथा, श्रीकृष्ण को सुनायी। उस कथा को सुन, सत्यभामा क्रोध में भर, श्रीकृष्ण के क्रोध को भड़काने के लिये, रोती हुई उनकी गोद में गिर पड़ी। इतने में क्रोध में भरा हुआ सात्यकि उठ खड़ा हुआ और सत्यभामा से कहने लगा—हे सुमध्यमे! मैं शपथ पूर्वक सत्य सत्य कहता हूँ कि, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी और द्रौपदी के पाँचों पुत्रों का मैं भी अनुसरण करता हूँ। जिस पापी ने द्रोणपुत्र की सहायता से सोते हुओं की हत्या की है, आज उस दुरात्मा कृतवर्मा का यश और आयु पूरी हो चुकी है। यह कह श्रीकृष्ण के सामने ही सात्यकि ने दौड़ कर, अपनी तलवार से कृतवर्मा का सिर काटा और उसके बन्धु बान्धवों को मारता काटता वह चारों ओर घूमने लगा। श्रीकृष्ण उसे रोकने को आगे बढ़े। इतने में कालप्रेरित भोज और अन्धक वंशियों ने सात्यकि को चारों ओर से घेर लिया। समय की गति को जान कर, क्रोध में भरे यादवों को दौड़ते हुए देख कर भी श्रीकृष्ण स्वयं क्रुद्ध न हुए। शराब के नशे में चूर उन लोगों ने मृत्यु के वशवर्ती हो, जूठे बरतनों से, सात्यकि को घायल कर डाला। सात्यकि को घायल देख, उसे बचाने के लिये, क्रोध में भरे प्रद्युम्न उन लोगों के बीच जा पहुँचे। प्रद्युम्न भोज-वंशियों से और सात्यकि अन्धकवंशियों से भिड़ गये। विपक्षियों की संख्या अत्यधिक होने के कारण, ये दोनों वीर बहुत देर तक युद्ध कर के भी, उनके द्वारा, श्रीकृष्ण के सामने ही मार डाले गये। अपने पुत्र प्रद्युम्न और अपने

कृपापात्र सात्यकि को मरा देख, श्रीकृष्ण ने क्रोध में भर एक मूठा भर सरपत उखाड़ लिये। वे मूठाभर सरपत भयानक वज्र सदृश मूशल से हो गये। अब उनके प्रहार से श्रीकृष्ण ने, जो उनके सामने पड़ा, उसे मारना आरम्भ किया। थोड़ी ही देर में उसके प्रहार से बहुतों को श्रीकृष्ण ने मार डाला। कालप्रेरित अन्धक भोज, शिनी और वृष्णिवंशियों ने भी सरपत उखाड़ और उनके मूठों से एक दूसरे को मारना आरम्भ किया। वे सरपत जिसके हाथ पड़े, मूसल से बन गये। यह सब काण्ड ऋषि-शाप का प्रतिफल था। वे सरपत यदि अवध्य पर भी फेंके जाते तो वह भी मर जाता था। इस समय यह हाल था कि, पिता पुत्र को और पुत्र पिता को मार रहा था। शराब के नशे में चूर वे सब बड़े वेग से दौड़, आपस में वैसे ही लड़ कट कर नष्ट हो गये; जैसे पतंगे दीपक की लौ में गिर नष्ट हो जाते हैं। उस समय काल का कुछ ऐसा विकट प्रभाव छाया हुआ था कि, जो लोग घायल थे, उन्होंने भाग कर अपनी जान न बचायी। श्रीकृष्ण को अपने पुत्र साम्ब, चारुदेष्ण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध का मारा जाना देख, बड़ा क्रोध उत्पन्न हुआ। भूमि पर मर कर पड़े हुए गद को देख, श्रीकृष्ण ने क्रोध में भर, उन बचे हुओं को भी मार डाला। परपुरञ्जय एवं परमतेजस्वी बभ्रु और दारुक ने श्रीकृष्ण से कहा—भगवन्! आपने अनेक लोगों का वध कर, यदुकुल को निःशेष प्राय कर डाला है। अतः अब वहाँ चलिये जहाँ बलदेव जी हों। हम आपके साथ चलते हैं।

चौथा अध्याय

श्रीकृष्ण जी का अपनी स्त्रियों को पिता के हवाले कर स्वयं पुनः वनगमन

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! तदनन्तर शीघ्रगामी दारुक, केशव, और बभ्रु ने बलदेव जी को ढूँढ़ा। अन्त में उन्होंने देखा कि, अतुल

पराक्रमी बलदेव जी एक वृक्ष के नीचे एकान्त में ध्यानमग्न बैठे हुए हैं। श्रीबलदेव जी को इस अवस्था में देख, श्रीकृष्ण जी ने दारुक को आज्ञा दी कि, तुम कौरवों के निकट जा, यादवों के इस नाश का संवाद अर्जुन को सुनाओ। ब्रह्मशाप से यादवों के नाश होने का संवाद सुन, अर्जुन शीघ्र यहाँ आवेंगे। श्रीकृष्ण के इस प्रकार आज्ञा देने पर दारुक रथ पर सवार हो, कुरुदेश में पहुँचा। दारुक को रवाना कर श्रीकृष्ण ने बभ्रु से कहा—तुम शीघ्र द्वारका में जा कर स्त्रियों की रक्षा करो। कहीं धन के लोभ से, चोर डाँकू उनको मार न डालें। ज्ञातिवध से दुःखी और मद से मतवाला बभ्रु, अत्यन्त थका होने पर भी श्रीकृष्ण की आज्ञा से वहाँ से जब चला, तब ब्रह्मशापवश, किसी बहेलिये के फैंके एक दुरन्त मूसल के आघात से बभ्रु श्रीकृष्ण के पास ही गिर कर मर गया। बभ्रु को मरा देख, श्रीकृष्ण ने बलदेव जी से कहा—जब तक मैं स्त्रियों को स्वजनों की रक्षा में रख, लौट न आऊँ, तब तक यहीं आप मेरी प्रतीक्षा करें।

यह कह श्रीकृष्ण वहाँ से चल दिये और द्वारका में पहुँच अपने पिता से बोले—जब तक अर्जुन यहाँ न आ जाय; तब तक आप पुरवासिनी नारियों की रक्षा करें। वन में बलदेव जी मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं। मैं जा कर अब उनसे मिलूँगा। पहले मैंने कौरवों और अनेक राजाओं का नाश देखा, अब मुझे यादवों का नाश देखना पड़ा। यादवशून्य इस पुरी को मैं देख नहीं सकता। मैं वन में जा, बलदेव जी के साथ तप करूँगा।

यह कह और पिता के चरणों में सीस रख, श्रीकृष्ण जी तुरन्त द्वारका से चल दिये। उनके वहाँ से जाते ही द्वारका में स्त्रियों और बालकों के रोने से हाहाकार मच गया। स्त्रियों का रोना सुन श्रीकृष्ण ने द्वारका में पुनः जा स्त्रियों से कहा—अर्जुन यहाँ आने ही वाले हैं। वे तुम्हें दुःखों से मुक्त करेंगे। यह कह श्रीकृष्ण जी वन में गये और एकान्त बैठे हुए ध्यान-मग्न बलदेव जी को देखा। उन्होंने देखा कि, बलदेव जी के मुख से एक बड़ा भारी सफेद रंग का सर्प निकल रहा है। देखते देखते पर्वत जैसे विशाल

काय एवं लोहितवर्ण सहस्रशीर्ष नाग ने मानवी शरीर त्याग कर, समुद्र में प्रवेश किया। इस समय समुद्र सहित समस्त नदियों ने, राजा वरुण ने तथा उग्रतेजस्वी कर्कोटक, वासुकि, तक्षक, पृथुश्रवा, वरुण, कुञ्जर, मिश्री, शङ्ख, कुमुद, पुण्डरीक, धृतराष्ट्र, ह्राद, क्राथ, शितिकण्ठ, चक्रमन्द, अभिखण्ड, दुर्मुख और अम्बरीष प्रभृति प्रधान नागों ने उनका स्वागत एवं अर्घ्यादि दे उनका पूजन कर, उनसे कुशल प्रश्न किया।

उग्रवीर्य श्रीकृष्ण, अपने भाई को जाते देख, दिव्य दृष्टि से काल की गति को निहार निर्जन वन में घूमते हुए, भूमि पर बैठ गये। उस समय उन्होंने गान्धारी के कथन को स्मरण किया। साथ ही जूठी खीर को शरीर में मलने पर, दुर्वासा ने जो बात कही थी, उसे भी स्मरण किया। फिर अन्धक, वृष्णि और कौरवों के नाश की चिन्ता में मग्न, श्रीकृष्ण ने निज परम-धाम-यात्रा का समय उपस्थित जान, इन्द्रियनिरोध रूपी महायोग अवलंबन किया। अर्थ और तत्व के ज्ञाता भगवान् श्रीकृष्ण ने, त्रिलोकी की रक्षा के निमित्त और दुर्वासा की बात सत्य करने के लिये, अपना शरीर त्यागना चाहा। वे चुपचाप हो और मन की गति को रोक, ध्यानमग्न हो लेट रहे। इतने में जरा नामक बहेलिये ने शिकार मारने की अभिलाषा से, मृग के धोखे में, श्रीकृष्ण के पैर के तलवे में बाण मार उन्हें घायल किया। फिर वह घायलमृग को पकड़ने के लिये बड़ी फुर्ती से श्रीकृष्ण के निकट पहुँचा। उनके निकट पहुँच उसने देखा कि, पीताम्बरधारी चतुर्भुज भगवान् श्रीकृष्ण योगयुक्त हैं। तब तो अपने को महाअपराधी जान, उसने शङ्कित चित्त से श्रीकृष्ण के दोनों चरण पकड़ लिये। तब श्रीकृष्ण उसे ढाँढ़स बँधा एवं निज तेज से आकाश और पृथिवी को परिपूर्ण कर, ऊपर की ओर चल दिये। जब वे स्वर्ग के निकट पहुँचे, तब इन्द्र, अश्विनीकुमार, ग्यारह रुद्र, द्वादश सूर्य, अष्टवसु, विश्वेदेव, अप्सराएँ, सिद्ध, मुनि और गन्धर्व उनकी अगमानी के लिये आये। तदनन्तर वे श्रीकृष्ण जी जो बड़े ऐश्वर्य के स्वामी, बड़े तेजस्वी, अन्तर्यामी, उत्पत्ति और प्रलय के आश्रय-स्थान, योगा-

चारी, अचिन्त्य प्रभाव वाले हैं, अपने तेज से पृथिवी और आकाश को व्याप्त कर, निज लोक को पधारे। हे राजन्! उस समय, देवताओं, ऋषियों, चारणों, विनयावनत गन्धर्वों, अप्सराओं और साध्यों ने श्रीकृष्ण का पूजन कर, उनकी स्तुति की। मुनियों ने ऋग्वेद के मंत्रों से उनकी स्तुति की। गन्धर्वों ने उनकी विरुदावली का गान किया और इन्द्र ने बड़ी भक्ति के साथ उनको सुप्रसन्न किया।

पाँचवाँ अध्याय

दारुक द्वारा पाण्डवों को यादववंश के नष्ट होने का संवाद मिलना

वैशम्पायन जी बोले— हे सञ्जय! दारुक ने हस्तिनापुर में जा, महारथी पाण्डवों को मूसल से यादवों के नष्ट होने का दुःखद संवाद सुनाया। भोज, अन्धक और कुकुर वंशियों सहित वृष्णियों के नष्ट होने का संवाद सुन, शोक से पीड़ित पाण्डव भयभीत हो गये। तदनन्तर श्रीकृष्ण के प्यारे सखा अर्जुन ने कहा। जान पड़ता है, यदुकुल नष्ट हो गया। तदनन्तर वे अपने मामा वसुदेव को देखने के लिये चल दिये। वीर अर्जुन ने दारुक सहित जा कर देखा कि, द्वारकापुरी, विधवा स्त्री की तरह श्रीहीन हो गयी है। जो स्त्रियाँ लोकनाथ श्रीकृष्ण जी के रहने से सनाथा थीं, वे अनाथा स्त्रियाँ अब अपने नाथ के सखा अर्जुन को देख, रो पड़ीं। श्रीकृष्ण की सोलह हज़ार पत्नियाँ चिल्ला चिल्लाकर रोने लगीं। इनको रोते देख, अर्जुन के नेत्रों से भी आँसू टपक पड़े। श्रीकृष्ण और पुत्रों से रहित अर्जुन से उन रोती और विलाप करती हुईं स्त्रियों को न देखा गया। अर्जुन ने वैतरणी नदी के समान द्वारका रूपी नदी का भयङ्कर दृश्य देखा। उस नदी में वृष्णि और अन्धक रूपी जल था, घोड़े रूपी मत्स्य थे, रथ रूपी ओघ था,

महल रूपी घाट और बड़े हृद थे। उसमें रत्न रूप शैवाल था, वज्र प्राकार रूपी माला, रथ्या रूपी स्रोत जल और भँवर, चौराहे रूपी तालाब (हृद) थे। उसमें श्रीकृष्ण और बलदेव रूपी महाग्राह थे। वह नदी बाजे के शब्द और रथों की घरघराहट से शब्दायमान थी।

इस प्रकार की उस उत्तम द्वारकापुरी को अर्जुन ने वृष्णियों से रहित होने के कारण वैसे ही शोभाहीन और आनन्दविहीन देखा, जैसे कि शिशुर ऋतु में कमलिनी शोभाहीन हो जाती है। उन स्त्रियों के सदा करुण-पूर्ण विलाप और रोदन को सुन द्वारकापुरी की दुर्दशा देख, अर्जुन चिल्ला कर रो पड़े और रोते रोते भूमि पर गिर पड़े। तदनन्तर सत्राजित की पुत्री सत्यभामा और रुक्मिणी अर्जुन के निकट जा रोने लगीं। फिर अर्जुन को उठा उन्होंने रत्नजटित सिंहासन पर बैठाया और स्वयं वे उनके सिंहासन के चारों ओर बैठ गयीं। तब अर्जुन ने श्रीकृष्ण की महिमा का कीर्तन कर, उनकी स्तुति की। तदनन्तर उन स्त्रियों को ढाँढस बँधा, वे अपने मामा वसुदेव जी को देखने के लिये उनके निकट गये।

छठवाँ अध्याय

पुत्रशोक से विह्वल वसुदेव जी का अर्जुन को देख, विलाप करना

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! पुत्रशोक से पीड़ित वसुदेव जी को लेटे हुए देख, विशालवक्षःस्थल और दीर्घबाहु अर्जुन ने आँखों में आँसू भर, वसुदेव जी के चरणस्पर्श किये। वसुदेव जी ने अपने भगिनीपुत्र अर्जुन का मस्तक सूँघना चाहा; किन्तु वे सूँघ न सके। अर्जुन को देख, वसुदेव जी को अपने पुत्रों, भाइयों, पौत्रों, भाँजों और मित्रों का स्मरण हो आया और वे रोने लगे। उन्होंने अर्जुन को हृदय से लगा लिया और वे विलाप करने लगे।

वसुदेव जी बोले—हे धनञ्जय ! जान पड़ता है, मैं नहीं मरूँगा। क्योंकि जिन्होंने सैकड़ों दैत्यों तथा राजाओं को जीता था, मैं उन्हें न देख कर भी अब तक जीता जागता बैठा हूँ ! हे पार्थ ! जो दो पुरुष तुम्हारे अत्यन्त प्रिय शिष्य थे, उन्हींकी दुर्नीति से वार्ष्णेयों का नाश हुआ। हे कुरुशार्दूल ! जो दो पुरुष वृष्णिवंशियों में अतिरथी तथा श्रीकृष्ण के प्यारे थे और जिनकी तुम बातचीत करते समय सदा प्रशंसा किया करते थे, वे प्रद्युम्न और सात्यकि—वृष्णि वंश के विनाश के अधिनायक हैं। हे अर्जुन ! मैं सात्यकि, कृतवर्मा, रुक्मिणीपुत्र अथवा अक्रूर को दोषी नहीं ठहरा सकता। क्योंकि हमारे वंश के नाश का कारण तो ब्रह्मशाप है। हे अर्जुन ! जिस जगत्प्रभु ने निज विक्रम से केशी, कंस और शिशुपाल को मारा और निषदराज एकलव्य, काशिराज पौण्ड्रक, कलिङ्ग, मागध, गान्धार प्राच्य, दाक्षिणात्य पार्वत्य और मरुदेशीय राजाओं को अपने वश में किया था, उस मधुसूदन ने अपने कुल के बालकों के अपराध से समस्त वंश के नाश का विचार न किया। हे अर्जुन ! मेरा वह पुत्र, अनघ गोविन्द, जो सनातन विष्णु था, उसे तुम जानते ही हो और मैंने भी नारद तथा अन्यान्य मुनियों से सुना था। हे परन्तप ! जब उस अधोक्षज विभु जगदीश्वर ने कुलक्षय की बात जान लेने पर भी उसकी उपेक्षा की, तो जान पड़ता है कि, गान्धारी तथा अन्य ऋषियों के शापों को अन्यथा करना उसने उचित नहीं समझा। हे अरिन्दम ! तुम स्वयं जानते हो कि, अश्वत्थामा के अस्त्र से मृतक तुम्हारे पौत्र को उसीने अपने तेज से जिलाया था। उसी तुम्हारे मित्र ने अपने सजातियों की रक्षा न की। फिर अपने पुत्रों, पौत्रों, भाइयों और मित्रों को मरा हुआ देख, उसने मुझसे कहा था कि, अब इस कुल के नाश का समय उपस्थित हुआ है। अतः द्वारका में अर्जुन आवेगा—सो आप उससे वृष्णियों के इस सर्वनाश का वृत्तान्त कह देना। हे प्रभो ! परम तेजस्वी अर्जुन, यादवों के नाश का संवाद पा, निश्चय ही शीघ्र यहाँ आवेगा। आप मुझे ही अर्जुन जानें। क्योंकि जो अर्जुन है सो मैं हूँ। अतः वह जो कहे-

वही आप करना। हे भरतर्षभ! श्रीकृष्ण का यही अन्तिम संदेसा है। उसने यह भी कहा था कि, पाण्डव अर्जुन समय पर आवेगा और मरे हुए पुरुषों और स्त्री बालकों का तथा आपका क्रियाकर्म करेगा। यहाँ से अर्जुन के जाते ही परकोटा और अट्टालिकाओं सहित इस नगरी को समुद्र शीघ्र ही डुबो देगा। मैं बुद्धिमान बलदेव जी के साथ, किसी पवित्र स्थान में योगावलम्बन कर, शरीर परित्याग करूँगा। मेरे कथन में आप तिल भर भी सन्देह न करें।

हे पार्थ! अचिन्त्य पराक्रमी सर्वशक्तिमान हृषीकेश ने इतने वचन कह कर और बालकों सहित मुझे परित्याग कर, यहाँ से प्रस्थान किया। इस समय मैं तुम्हारे उन दोनों भाइयों और इस घोर ज्ञातवध की बात सोच सोच कर, अत्यन्त पीड़ित हो रहा हूँ। मैंने खाना पीना त्याग दिया है। क्योंकि अब मैं और अधिक दिनों जीना नहीं चाहता। हे पाण्डुनन्दन! यह सौभाग्य की बात है कि तुम आ गये। अब श्रीकृष्ण ने जो कहा है, उसे तुम पूरा करो।

हे अरिनिषूदन पृथासुत! मैं इस राज्य, ऐश्वर्य, स्त्रियों और अपने प्राणों को भी तुम्हें सौंपता हूँ। अब तुम जो चाहो सो करो।

सातवाँ अध्याय

वसुदेव जी का देहत्याग और अर्जुन का स्त्रियों को ले कर द्वारका से इन्द्रप्रस्थ को गमन

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! मामा की इन बातों को सुन, अर्जुन ने दुःखी हो वसुदेव जी से कहा—मामा! अब श्रीकृष्ण रहित यह पृथिवी मुझसे देखी नहीं जाती। महाराज युधिष्ठिर, भीमसेन, सहदेव, नकुल, और द्रौपदी की भी ऐसी ही दशा होगी। क्योंकि हम छःहों का एक ही सा विचार है। हे धर्मज्ञ! धर्मराज का भी अन्तकाल अब निकट ही है।

सो निश्चय ही वे भी शीघ्र मृत्यु के वशवर्त्ती होंगे। मैं अतिशीघ्र यदु-वंश की स्त्रियों तथा बालकों एवं वृद्धों को इन्द्रप्रस्थ लिये जाता हूँ।

वसुदेव जी से यह कह अर्जुन ने दारुक से कहा—चलो, अब देर मत करो। चलो वृष्णियों के मंत्रियों से भी मिल आऊँ। उन महारथियों के शोक करते हुए अर्जुन, यादवों की सधर्मा नामी सभा में गये। वहाँ जा वे समस्त मंत्रियों और ब्राह्मणों तथा अन्य प्रजाजनों के बीच आसन पर जा बैठे। दुःखी हो अर्जुन ने उन सब दुखिया लोगों से कहा—मैं आपको तथा अन्धक एवं वृष्णि के बाल बच्चों को इन्द्रप्रस्थ ले जाऊँगा। क्योंकि यह नगरी समुद्र में डूब जायगी। अब तुम्हें जो कुछ यहाँ से ले चलना हो, उसे तुम अपनी सवारियों में रख लो। इस वज्र-नाभ को मैं इन्द्रप्रस्थ में आप लोगों का राजा बनाऊँगा। आज के सातवें दिन बड़े तड़के हम इस नगरी के बाहिर निकल चलेगें। अतः तुम लोग इस अवधि के भीतर ही तैयारी कर लो।

अर्जुन के इन वचनों को सुन वे लोग तुरन्त तैयारी करने में लग गये—क्योंकि उन्हें अपने प्राणों की चिन्ता थी। अर्जुन ने बड़े क्लेश के साथ वह रात भगवान् श्रीकृष्ण के महल में रह कर काटी। अगले दिन सबेरा होते ही वसुदेव जी ने शरीर त्यागा। अन्तःपुर में पुनः रोदन का घोर शब्द हुआ। छातियाँ पीटती हुई स्त्रियाँ रो रो कर विलाप करने लगीं। उन्हें अपने तन बदन की कुछ भी सुध न रही। उनके सिर के बाल खुल गये। आभूषण खुल खुल कर इधर उधर गिर पड़े। नारीरत्न, देवकी, भद्रा, रोहिणी और मदिरा अपने पति वसुदेव जी की चिता के निकट गयीं। अर्जुन ने बड़ी धूमधाम से वसुदेव की अर्थी निकाली। उनकी अर्थी बहु-मूल्य वस्तुओं से सजायी गयी थी। रोते पीटते द्वारकावासी उस अर्थी के साथ चले जाते थे। अर्थी के आगे वसुदेव जी का अश्वमेध यज्ञ सम्बन्धी छत्र, अग्निहोत्र का दहकता हुआ अग्नि और ब्राह्मण थे। अन्तःपुर की हज़ारों विधवा स्त्रियाँ उस वीर की अर्थी के पीछे चल रही थीं।

तदनन्तर जो स्थान जीवित काल में उस शूरपुत्र वसुदेव को परमप्रिय था, उसी स्थान पर उनका शव रख पितृमेध कार्य आरम्भ किया गया। पतिलोक में जाने की अभिलाषिणी वसुदेव की चारों पत्नियाँ उस चिता पर शव को गोद में रख, सती हुईं। अर्जुन ने चारों स्त्रियों सहित वसुदेव जी के शव का चन्दनादि सुगन्धित काष्ठ से दाहकर्म किया। उस समय सामग ब्राह्मणों के सामगायन का और रोने वाले लोगों के रोने का शब्द एक साथ हुआ। फिर वृष्णि और अन्धक वंशीय वज्रादि कुमारों और स्त्रियों ने उस महात्मा को जलाञ्जलि दी। इस कार्य को पूरा करा, अर्जुन उस स्थान पर गये, जहाँ यादव लोग आपस में लड़ कर मरे थे। उन लोगों को वहाँ मरा हुआ देख, अर्जुन को बड़ा शोक हुआ। अर्जुन ने समयानुसार और क्रम से उन लोगों के भी क्रिया कर्म करवाये। फिर अपने साथियों सहित बलदेव जी और श्रीकृष्ण के शव को खोज कर, उन दोनों के शवों का भी विधि पूर्वक दाहकर्म करवाया। इन सब कार्यों को पूरा कर अर्जुन सातवें दिन द्वारका से रवाना हो गये। वृष्णि वंशियों की शोकार्त्ता स्त्रियाँ रुदन करती हुईं, घोड़े, बैलों, खच्चरों और ऊँटों से खींचे जाने वाले रथों में बैठ अर्जुन के रथ के पीछे हो लीं। यादवों के नौकर चाकर, घुड़सवार सैनिक पुरजनवासी तथा जनपदवासी प्रजा जन, उन स्त्रियों तथा बूढ़े और बालकों को घेर, अर्जुन के आज्ञानुसार, उनकी रक्षा करते हुए साथ साथ चले। ब्राह्मण, क्षत्रिय, महाधनी वैश्य और शूद्र सभी वर्ण के प्रजाजन उनके साथ थे। श्रीकृष्ण की सोलह हज़ार स्त्रियाँ अपने पौत्र वज्रनाभ को आगे कर, वहाँ से चलीं। भोज, अन्धक और वृष्णियों की अगणित अनाथिनी स्त्रियाँ द्वारका छोड़ चल दीं। परपुरञ्जय अर्जुन विशाल धनराशि सहित उन स्त्रियों को साथ ले वहाँ से रवाना हुए। जब द्वारका जनशून्य हो गयी; तब समुद्र ने समस्त रत्नों से पूर्ण उस पुरी को अपने जल के भीतर छिपा लिया। अर्जुन द्वारका राज्य के जिस जिस भाग को छोड़ते गये; समुद्र उस उस भूभाग को जल में डुबोता गया। द्वारकावासी इस अपूर्व चमत्कार को

देखते और होनहार को अनिवार्य मान शीघ्रता से चल दिये। अर्जुन ठह-रने योग्य, पार्वत्य प्रदेशों तथा नदियों के तटों पर ठहरते हुए वृष्णियों की स्त्रियों तथा अन्य लोगों को द्वारका से ले आये। अर्जुन गौ, पशु, और धनधान्य से पूर्ण पञ्चनद (पंजाब) प्रदेश के समीप एक स्थान पर ठहरे।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! वहाँ बहुत से लुटेरे डाँकू रहते थे। इतनी बहुत सी अनाथिनी स्त्रियों को अकेले अर्जुन की रक्षा में देख, उन डाकुओं को धन के लोभ ने घेर लिया। तब उन पापात्मा आभीरों ने मिल कर आपस में सलाह की कि, अर्जुन अकेला है और उसके साथ जो सिपाही हैं भी, उनमें कुछ दम नहीं है। इस प्रकार आपस में सलाह कर, असंख्य डाकुओं ने हाथों में लाठियाँ ले यादवों की स्त्रियों पर धावा बोला। वे सिंहनाद करते हुए तथा लोगों को भयभीत करते हुए उन सब के निकट जा पहुँचे। यह देख अर्जुन अपने साथियों सहित उनके निकट गये और हँस कर बोले—हे अधर्मियों! यदि तुम्हें अपनी जानें प्यारी हों, तो यहाँ से चल दो। नहीं तो मेरे बाणों से घायल और अंगभंग हो, तुम्हें पीछे पछताना पड़ेगा। किन्तु उन डाँकुओं ने अर्जुन की इस चेतावनी पर कुछ भी ध्यान न दिया और वे स्त्रियों की ओर बढ़े। यह देख अर्जुन अपने धनुष पर रोदा चढ़ाने लगे; किन्तु आज वे उस धनुष पर रोदा न चढ़ा सके। तब सामने महाभय उपस्थित देख अर्जुन ने दिव्यास्त्रों से काम लेना चाहा; किन्तु उन्हें उस समय उनके मंत्र ही याद न पड़े। तब तो अर्जुन बहुत लजाने। अर्जुन के साथी घुड़सवार, गजसवार और रथसवार सिपाही यादवों की स्त्रियों की रक्षा न कर सके। स्त्रियाँ भयभीत हो, इधर उधर भागने लगीं। अर्जुन ने उनकी रक्षा के लिये बड़े बड़े प्रयत्न किये। डाँकू उन स्त्रियों में से बहुत सी स्त्रियों को पकड़ कर ले गये और बहुत सी अपने आप उनके साथ हो लीं। अर्जुन और उनके साथी सिपाही देखते के देखते ही रह गये। उस समय अर्जुन बड़े बिकल हुए। यदुवंशियों के नौकरों चाकरों की सहायता से अर्जुन ने ज्यों त्यों कर गाण्डीव धनुष पर डोरी चढ़ायी और बाण छोड़,

डाकुओं को मारा भी। किन्तु थोड़ी ही देर में अर्जुन के तर्कस में एक भी बाण न रह गया। रक्त के प्यासे अर्जुन के कभी न चुकने वाले बाण, आज चुक गये। तब इन्द्रपुत्र अर्जुन ने बाणों के चुक जाने पर, शोक और दुःख से व्यथित हो, धनुष ही से डाकुओं पर प्रहार किया। किन्तु वे डाँकू यादवों की स्त्रियों को ले ही गये। इस घटना का अर्जुन के चित्त पर बड़ा प्रभाव पड़ा। वे दुःखी हो बारंबार ठंडी साँसें लेने लगे।

वैशम्पायन जी बोले हे जनमेजय! अस्त्र चलाने के मंत्रों का विस्मरण, भुजबल की न्यूनता, धनुष की अनाकर्षणता और बाणों की समाप्ति देख, अर्जुन ने होनहार को अनिवार्य समझा और बोले इस संसार में कोई वस्तु ऐसी नहीं जिसका नाश नहीं। तदनन्तर बची हुई और लुटी हुई स्त्रियों को साथ लिये हुए, वे कुरुक्षेत्र पहुँचे। फिर उन स्त्रियों के ठहरने का कई स्थानों पर प्रबन्ध कर, अर्जुन ने कृतवर्मा के पुत्र को मार्तिकावत नगर का राजा बना दिया। भोजवंशियों की स्त्रियों को सौंप, उनके भरण पोषण का भार उस पर रखा। जो स्त्रियाँ और बालक वृद्ध बच रहे उन्हें अर्जुन ने इन्द्रप्रस्थ में ले जा कर ठहरा दिया। रुक्मिणी, गान्धारी, शैब्या, हैमवती और जाम्बवती सती हो गयीं। अर्जुन ने वज्रनाभ को इन्द्रप्रस्थ का राजा बनाया। अक्रूर की जो स्त्रियाँ वज्रनाभ की देखरेख में थीं, वे वनवासिनी हुईं।

वैशम्पायन जी बोले हे जनमेजय! श्रीकृष्ण की सत्यभामा आदि प्यारी स्त्रियाँ तथा अन्य यदुवंशियों की स्त्रियाँ तप करने का निश्चय कर, वन में चली गयीं। वन में जा और फल मूलादि से पेट भर, वे स्त्रियाँ हरि के ध्यान में मग्न हो गयीं। वे हिमालय की परिक्रमा कर, कलाप नामक ग्राम में पहुँचीं। जो द्वारकावासी पृथापुत्र अर्जुन के साथ द्वारका से आये थे, अर्जुन ने विभाग क्रम से उनमें से बहुत लोगों को वज्रनाभ के निकट भेज दिया। समयानुकूल ये सब कार्य कर, अर्जुन आँसू बहाते हुए, भगवान् वेदव्यास जी के आश्रम में गये और उनके दर्शन किये।

आठवाँ अध्याय

व्यास जी द्वारा अर्जुन को सान्त्वना प्रदान

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय ! अर्जुन ने व्यासाश्रम में जा कर देखा कि, ऋषिश्रेष्ठ सत्यवतीसुत व्यास जी निर्जन स्थान में अकेले बैठे हुए हैं । उनके निकट जा अर्जुन ने अपना नाम ले उनको प्रणाम किया । व्यास जी ने उनको आशीर्वाद दे—उनसे कुशल पूँछी और हर्षित हो उन्हें अपने निकट एक आसन पर बिठाया । अर्जुन को उदास एवं विकल देख, व्यास जी ने अर्जुन से पूँछा—अर्जुन ! मैंने तुझे कभी पराजित होते नहीं सुना । तब तू इस समय इस प्रकार श्रीहत क्यों हो रहा है ? बाल, नख और वस्त्र के निचोड़न के जल के अथवा कुल्ले के जल के छींटे तो तेरे शरीर पर नहीं पड़े ? तूने किसी रजस्वला स्त्री के साथ सम्भोग तो नहीं किया ? तूने किसी ब्राह्मण की हत्या तो नहीं की ? क्या तू किसी से युद्ध में तो परास्त नहीं हुआ ? हे अर्जुन ! तेरी ऐसी शोच्य दशा होने का कारण क्या है ? यदि मेरे सुनने योग्य हो तो तू शीघ्र मुझे बतला ।

अर्जुन ने कहा—मेघवर्ण और दिव्य कमललोचन श्रीकृष्ण जी ने बलदेव जी सहित शरीर त्याग दिया और वे वैकुण्ठ को सिधार गये । प्रभासक्षेत्र में ब्रह्मशापानुसार मूसल से वृष्णिवंशियों का रोमाञ्चकारी नाश हुआ । हे ऋषिवर्य ! जो यादव वीर, बड़े पराक्रमी और सिंह के समान गर्वीले थे, वे आपस में लड़ कट कर नष्ट हो गये । परिघ जैसी भुजाओं वाले तथा परिघों और शक्तियों के प्रहारों को सह जाने वाले वे वीर सरपतों के प्रहार से नष्ट हो गये । इस समय-विपर्यय को तो देखिये । पाँच लाख शूरवीर यादव आपस में जूझ कर नष्ट हो गये । उन बड़े परा–क्रमी यादवों का और यशस्वी श्रीकृष्ण का वियोग मुझसे नहीं सहा जाता । जिस प्रकार समुद्र का सूख जाना, पर्वत का चलना फिरना, आकाश का गिरना और अग्नि का उष्णता त्याग कर शीतल होना असम्भव है, उसी प्रकार

मैं शाङ्गधनुषधारी श्रीकृष्ण के नाश को असम्भव समझता था। श्रीकृष्ण रहित हो मुझे धराधाम पर रहना पसंद नहीं। इसके अतिरिक्त एक और भी बात मेरे हृदय में शूल की तरह खटकती और मुझे विकल कर रही है। हे ऋषिवर्य ! पञ्चनदीय सहस्रों आभीरों ने मेरी आँखों के सामने यदुवंशियों की स्त्रियों को लूटा और बहुत सी स्त्रियों को वे पकड़ कर ले गये। उस समय मुझसे अपने धनुष पर रोदा भी न चढ़ाया जा सका। न मालूम उस समय मेरा भुजबल कहाँ चला गया ? हे महामुने ! उस समय मैं अस्त्र चलाने के समस्त मंत्र भूल गया। मेरे अक्षय्य तूणीर के बाण थोड़ी ही देर में निवट गये। शङ्ख, चक्र, गदा, पद्मधारी चतुर्भुज, श्याम दल सदृश नेत्रों वाले, पीताम्बरधारी जो अप्रमेयात्मा पुरुष मेरे रथ के ऊपर आगे बैठ, शत्रुसैन्य को भस्म करता जाता था, वही अविनाशी पुरुष अब मुझे देख नहीं पड़ता। जिस महापुरुष ने अपने तेज से शत्रुओं की सेनाओं को पहले ही भस्म कर डाला था और पीछे मैंने उनको अपने गाण्डीव से छोड़े हुए बाणों से नष्ट किया—उसी महापुरुष को न देखने से, मैं विकल हो मारा मारा फिरता हूँ और कहीं भी मुझे शान्ति नहीं मिलती। श्रीकृष्ण के बिना मुझे जीवित रहना पसंद नहीं। जब से जनार्दन भगवान् विष्णु अन्तर्धान हुए हैं, तब से मुझे सब ओर अन्धकार ही अन्धकार दिखलायी पड़ता है। इसीसे बिना श्रीकृष्ण के मुझे अपना जीवन भार सा जान पड़ता है। अपने पराक्रम तथा स्वजनों के नष्ट होने से मेरा मन घबड़ा रहा है। मुझे सारा जगत् सूना देख पड़ता है। अतः अब जिसमें मेरी भलाई हो—आप मुझे वही उपदेश दें।

वेदव्यास जी ने कहा—हे कुरुशार्दूल ! ब्रह्मशाप से इस कुल का नाश हुआ है, अतः उन लोगों के लिये तुम्हें दुःखी न होना चाहिये। जो होनहार होता है, वह हुए बिना नहीं रहता। यही कारण है कि, सामर्थ्य रहते भी और जान कर भी श्रीकृष्ण ने स्वजनों के नाश को रोकने का प्रयत्न न किया, प्रत्युत उपेक्षा की। नहीं तो श्रीकृष्ण के लिये उस ब्रह्मशाप का

अस्तित्व मिटाना बात ही क्या थी। वे चाहते तो इन चराचरात्मक तीनों लोकों का अस्तित्व भी मिटा सकते थे। वे शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म धारी चतुर्भुज एवं विशालनयन पुरातन ऋषि वासुदेव श्रीकृष्ण, प्रीति के बन्धन में बँध, तुम्हारे रथ को हाँकते थे। पृथिवी का भार हल्का कर, अब वे निज लोक को चले गये हैं।

हे पुरुषपुङ्गव! तुमने अपने भाइयों भीम, नकुल और सहदेव की सहायता से देवताओं का अभीष्ट पूरा किया है। इस पृथिवी पर तुम्हारा आगमन जिस कार्य के लिये हुआ था वह काम तुम लोग पूरा कर चुके। अब तुम लोगों की महायात्रा का समय भी निकट ही है। अतः अब तुम्हारा यहाँ से चला जाना ही तुम्हारे लिये कल्याणकर है। क्योंकि अभ्युदय काल में मनुष्य की बुद्धि का जैसा तेज तथा प्रतिपत्ति होती है, आपत्काल में वह वैसी नहीं रहती। हे धनञ्जय! काल ही सब का मूल है। उसीने बीजरूप से इस जगत् को उत्पन्न किया है, वही जब चाहेगा तब इसको नष्ट कर डालेगा। काल के वश से मनुष्य बलवान् हो कर भी फिर निर्बल हो जाता है और प्रभु हो कर भी आज्ञाकारी दास बन जाता है। अतः इस बात के लिये तो शोक करना ही न चाहिये। समयानुसार तुमने समस्त अस्त्र पाये थे, वे सब अपना काम पूरा कर अपने अपने स्थानों को चले गये। युगान्तर में पुनः तुम्हें मिलेंगे। हे भरतपुङ्गव! तुम लोगों का भी महाप्रस्थान का समय अब उपस्थित है। अतः मेरी समझ में तदनुसार अनुष्ठान करने ही से तुम्हारी भलाई होगी।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! श्रीवेदव्यास जी के इन वचनों को सुन, अर्जुन हस्तिनापुर में आये और धर्मराज के निकट जा, यादवों के सर्वनाश का वृत्तान्त उन्हें सुनाया।

मुशलपर्व समाप्त हुआ

४८

आ
होर

धृत
दूर
तब
छिर
द्रौप
सञ्ज
शरी
युधि
जैसे
धंर
गज

और
पद्मद
मती

के स

हिन्दी

महाभारत

महाप्रस्थानिकपर्व

लेखक
चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्मा

प्रकाशक
रामनरायन लाल
पब्लिशर और बुकसेलर
इलाहाबाद

१९३०

महाप्रस्थानिकपर्व

विषय-सूची

अध्याय पृष्ठ

४८

आ
हो

धृत
दूर
तब
ष्ठिर
द्रौप
सञ्ज
शरी
युधि
जैसं
धर
गज

और
पश्चा
मती

के स

महाप्रस्थानिकपर्व

प्रथम अध्याय

द्रौपदी तथा पाँचों पाण्डवों की महायात्रा।

श्रीनारायण को, नरों में उत्तम नर भगवान् को और देवी सरस्वती को प्रणाम कर, जय नामक इतिहास को आरम्भ करे।

जनमेजय ने पूँछा—हे भगवन्! यादवों के इस प्रकार मूसल युद्ध में नष्ट होने और श्रीकृष्ण के निज धाम सिधारने का संवाद सुन, पाण्डवों ने क्या किया?

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! कौरवराज युधिष्ठिर ने वृष्णिवंशियों के विनाश का वृत्तान्त सुन, स्वयं स्वर्ग जाने की अभिलाषा से, अर्जुन से कहा—अर्जुन! काल ही समस्त प्राणियों को अपने में लय करता है। हम लोग भी उसी कालपाश में बंधे हुए हैं। अतः हम लोगों को भी इन सब विषयों पर विचार करना चाहिये।

यह सुन अर्जुन ने काल को अपरिहार्य बतला अपने ज्येष्ठ भ्राता के कथन का समर्थन किया। भीमसेन, नकुल और सहदेव ने भी सव्यसाची अर्जुन का अभिप्राय जान, उन्हींके कथन का अनुमोदन किया। तदनन्तर युधिष्ठिर ने युयुत्सु को बुलाया और विशेष धर्माचरण के लिये वन में जाने का निज अभिप्राय प्रकट कर, उन्हें, सारा राज्य भार सौंपा। फिर अपनी जगह राजा परीक्षित को राजसिंहासन पर बिठा और दुःखित हो, उन्होंने सुभद्रा से कहा—यादवों में बचे हुए वज्र को मैंने इन्द्रप्रस्थ के राजसिंहासन

पर अभिषिक्त कर दिया है और तुम्हारा यह पौत्र आज हस्तिनापुर के राज-सिंहासन पर अभिषिक्त किया गया है। हे भद्रे! तुम्हें उचित है कि, तुम हस्तिनापुर में परीक्षित की और इन्द्रप्रस्थ में वज्र की रक्षा करो। देखना अपने मन को कभी अधर्म की ओर मत जाने देना।

इस प्रकार सुभद्रा को समझा कर, महाराज युधिष्ठिर ने भाइयों सहित अपने (ममेरे भाई) धीमान् श्रीकृष्ण, बलदेव जी तथा अपने बूढ़े मामा वसुदेव जी तथा अन्य समस्त यादवों को जलाञ्जलि दे, विधिपूर्वक उनका श्राद्ध किया। तदनन्तर शार्ङ्गधनुषधारी केशव का नाम ले कर, उनके उद्देश्य से द्वैपायन वेदव्यास, नारद, मारकण्डेय, भरद्वाज और याज्ञवल्क्यादि तपोधन एवं श्रेष्ठ द्विजवर्यों को बड़ी श्रद्धा के साथ, विविध भाँति के स्वादिष्ट पकवान भोजन करवाये और अगणित रत्न, वस्त्र, घोड़े, रथ और सैकड़ों दास दासियाँ और ग्राम दान में दिये।

हे जनमेजय! फिर पुरवासियों में प्रधान कृपाचार्य जी का पूजन कर, परीक्षित को शिष्य रूप से उन्हें सौंपा। तदनन्तर राजर्षि युधिष्ठिर ने प्रजाजनों को एकत्र कर उनके सामने अपनी इच्छा प्रकट की। महाराज युधिष्ठिर का अभिप्राय सुन पुरवासी और जनपदवासी बड़े दुःखी हुए और उनके प्रस्ताव का अनुमोदन न कर, उन लोगों ने बारंबार यह कहा—हे नरनाथ! आपको ऐसा विचार करना उचित नहीं है। किन्तु युधिष्ठिर ने, जो निज कर्त्तव्य और समय के ज्ञाता थे, प्रजाजनों के अनुरोध को न माना। फिर सब की अनुमति प्राप्त कर, वे भाइयों सहित वन में जाने को तैयार हुए।

तदनन्तर युधिष्ठिरादि समस्त पाण्डवों ने तथा द्रौपदी ने अपने शरीरों से समस्त आभूषण और वस्त्र उतार डाले और बल्कल वस्त्र पहिन लिये। फिर राज्य त्यागने के समय विधि पूर्वक इष्टि यज्ञ कर सब अग्नियों को जल में छोड़, वे चल दिये। द्रौपदी सहित पाण्डवों को वनगमन करते देख, समस्त अन्तःपुरवासिनी स्त्रियाँ शोक से विह्वल हो, वैसे ही रोयीं जैसे पूर्वकाल में

जुए में हारे हुए पाण्डवों को देख वे रो चुकी थीं। किन्तु पाण्डव उस समय हर्षित हो गमन करने लगे। वृष्णियों का नाश देख और बड़े भाई युधिष्ठिर की सम्मति जान, पाण्डव और द्रौपदी एक कुत्ते को साथ ले, हस्तिनापुर से निकले। उन्हें पहुँचाने को पुरवासी और स्त्रियाँ दूर तक उनके साथ गयीं। उस समय यह हिम्मत किसी की न हुई कि, कोई भी महाराज युधिष्ठिर से यह कहता कि, "आप लौट चलिये।" तदनन्तर समस्त पुरवासी पुरुष और स्त्रियाँ लौट गयीं। कृपाचार्यादि युयुत्सु के पास रहे। नागपुत्री उलूपी ने गङ्गा में प्रवेश किया। चित्राङ्गदा, मणिपुर को लौट गयी और जो स्त्रियाँ बच रहीं वे परीक्षित के निकट रहीं। संन्यास धर्मावलम्बी पाण्डव, यशस्विनी द्रौपदी सहित पूर्व की ओर चले और बहुत से जनपद, सागर और नदियों को अतिक्रम किया। उस समय युधिष्ठिर सब के आगे और भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव यथाक्रम एक दूसरे के पीछे चलने लगे। कमलनयनी श्यामाङ्गी एवं वरारोहा, स्त्रियों में श्रेष्ठ द्रौपदी उन सब के पीछे पीछे चलती थी। इस प्रकार जब पाण्डव वन को गये, तब एकमात्र कुत्ता ही उनका अनुगामी हुआ। उस महाप्रस्थान के समय भी अर्जुन ने रत्नों के लोभ से दिव्य गाण्डीव धनुष और अक्षय्य तूणीरों का त्याग नहीं किया।

हे जनमेजय! इस प्रकार चल कर, उन लोगों ने उदयाचल के निकटवर्त्ती लोहित्य समुद्र के तट पर पहुँच, देखा कि, मूर्तिमान् अग्निदेव, पुरुष विग्रह धारण कर, पर्वत पर जाने का मार्ग रोके हुए खड़े हैं। सप्तार्च्चि अग्निदेव पाण्डवों को आते देख, उनसे बोले—हे वीरों! मैं अग्निदेव हूँ। हे युधिष्ठिर! हे भीम! हे अरिन्दम अर्जुन! हे वीर उभय अश्विनीकुमारो! तुम सब मेरे कथन को सुनो। मैंने ही नारायण और अर्जुन के प्रभाव से खाण्डव वन को भस्म किया था। तुम लोगों का भाई यह अर्जुन अब इस परमायुध गाण्डीव को यहीं छोड़ वन को जावे। अब इसे इससे कोई प्रयोजन नहीं है। श्रीकृष्ण जी के पास जो चक्ररत्न था, वह भी स्वर्ग को चला गया। किन्तु जब वे पुनः अवतार लेंगे, तब पुनः वह उनके हाथ में आ जायगा।

मैंने यह गाण्डीव धनुष अर्जुन के लिये वरुण से माँग कर ला दिया था ; अतः अब यह उनको लौटा देना चाहिये ।

अग्नि के इन वचनों को सुन, जब भाइयों ने अर्जुन से अनुरोध किया ; तब उन्होंने गाण्डीव धनुष और दोनों अक्षय्य तरकस, जल में फेंक दिये ; यह देख अग्निदेव भी तत्क्षण अन्तर्धान हो गये । वहाँ से वे लोग दक्षिण की ओर चले । हे भरतशार्दूल ! तदनन्तर वे लोग लवणसागर के उत्तर किनारे से चलते हुए दक्षिण-पश्चिम दिशा की ओर गये । फिर वहाँ से वे पश्चिम दिशा में वहाँ गये, जहाँ द्वारका थी । वहाँ जा उन्होंने देखा कि, महासागर ने द्वारकापुरी को डुबो दिया है । इस प्रकार पाण्डव और द्रौपदी जो पृथिवी की परिक्रमा करने के अभिलाषी थे ; वहाँ से उत्तर दिशा की ओर रवाना हुए ।

दूसरा अध्याय

मेरु पर द्रौपदी, नकुल, सहदेव, अर्जुन और भीम का शरीरत्याग

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय ! संयतेन्द्रिय पाण्डवों ने इस प्रकार तीनों दिशाओं की परिक्रमा कर, उत्तर की ओर जा, हिमालय पर्वत देखा । वे लोग शैलराज हिमालय को नाँघ और वालुकार्णव को पार कर, शिखरश्रेष्ठ महाशैल सुमेरु पर्वत पर पहुँचे । वे योगी और धर्मात्मा पाण्डव जब मेरु शिखर पर जल्दी जल्दी चढ़ रहे थे, तब द्रौपदी योगभ्रष्टा हो पृथिवी तल पर गिर पड़ी । गिरी हुई द्रौपदी को देख, महाबली भीमसेन ने युधिष्ठिर से पूँछा—हे अरिन्दम ! राजपुत्री कृष्णा ने कभी कोई पापकर्म नहीं किया, तो भी यह गिर पड़ी—इसका क्या कारण है ?

युधिष्ठिर ने उत्तर दिया—भीमसेन ! हम सब लोगों के समान होने पर भी इसकी सब से अधिक प्रीति अर्जुन में थी। आज उसी पक्षपात का फल इसे मिला है।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय ! धर्मात्मा युधिष्ठिर ने द्रौपदी की ओर फिर कर न देखा। वे मन को अपने वश में कर आगे बढ़ते ही चले गये। इतने में विद्वान् सहदेव भूमि पर गिर पड़े।

गिरे हुए सहदेव को देख भीम ने धर्मराज से पूँछा—जो अहङ्कार रहित हो, सदैव हमारी सब की सेवा किया करते थे ; वे माद्रीपुत्र सहदेव क्यों गिरे ?

उत्तर में युधिष्ठिर ने कहा—इन्हें इस बात का अभिमान था कि, मुझसे बढ़ कर प्राज्ञ अन्य पुरुष नहीं है। यह उसी अभिमान का फल है।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय ! कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर सहदेव को वहीं पड़ा छोड़, अन्य बचे हुए भाइयों और कुत्ते को साथ लिये हुए चलने लगे। किन्तु द्रौपदी और सहदेव को पृथिवी पर लोटते देख, भ्रातृ-वत्सल शूर नकुल शोक से पीड़ित हो भूमि पर गिर पड़े। नकुल जब गिर पड़े तब भीम ने उनके गिरने का भी कारण युधिष्ठिर से पूँछा। वे बोले—जो नकुल आज तक कभी धर्ममार्ग से विचलित नहीं हुआ, जिसने सदा हम लोगों के आदेशों का पालन किया और जिसके सदृश स्वरूपवान् पुरुष त्रिलोकी में न था ; वह क्यों गिरा ?

धार्मिक पुरुषों में श्रेष्ठ एवं अग्रणी महात्मा युधिष्ठिर ने उत्तर दिया—नकुल सदा अपने मन में यह विवेचना किया करते थे कि तीनों लोकों में मेरे समान सुस्वरूप और कोई नहीं है। मैं ही सब से बढ़ कर सुन्दर हूँ। हे वृकोदर ! यह उसी गर्व का फल है। भाई जिसका जैसा कर्म है, वह उसका वैसा ही फल भोगता है। अतः इसके लिये सोच न कर, चले आओ।

द्रौपदी और दो भाइयों को इस प्रकार गिरे हुए देख, शोक से विकल हो, पर-वीर-निषूदन अर्जुन भी भूमि पर गिर पड़े। इन्द्र समान तेजस्वी, दुराधर्ष एवं पुरुषसिंह अर्जुन को निर्जीव हो गिरते देख, भीम ने पुनः युधिष्ठिर से पूँछा—धर्मराज! मुझे जहाँ तक स्मरण है—अर्जुन ने तो कभी हँसी दिल्लगी में मिथ्याभाषण नहीं किया—तब फिर वे क्यों गिरे?

उत्तर में युधिष्ठिर ने कहा—अर्जुन ने कहा था, मैं एक ही दिन में समस्त शत्रुओं का नाश कर डालूँगा; किन्तु इसने किया नहीं—अतः यह शूरताभिमानी अर्जुन, उसी मिथ्या प्रतिज्ञा करने के कारण गिरे हैं। अर्जुन धनुषधारियों में अग्रगण्य थे। इसीले वे अन्य समस्त धनुर्धरों की अवज्ञा किया करते थे। उनके गिरने का दूसरा कारण यह है।

श्रीवैशम्पायन जी बोले—जब युधिष्ठिर यह कह आगे बढ़े, तब भीम-सेन गिर पड़े और गिरते ही धर्मराज से पूँछा—महाराज! मैं क्यों गिरा? यदि आपको इसका कारण अवगत हो तो शीघ्र बतलाइये।

युधिष्ठिर बोले—हे पार्थ! तुम बहुत खाया करते थे और दूसरे के बल को न सह कर, सदा अपने बल की डींगे हाँका करते थे। इस लिये तुम गिरे हो।

महाबाहु युधिष्ठिर, यह कह और भीम की ओर न देख, आगे चलते चले गये। अब उनके पीछे अकेला वह कुत्ता ही चला जाता था, जिसका उल्लेख कई बार पहले किया जा चुका है।

तीसरा अध्याय

धर्मराज युधिष्ठिर का विमान पर सवार हो सदेह स्वर्ग-गमन

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! तदनन्तर देवराज इन्द्र रथ पर सवार हो—पृथिवी एवं आकाश को अपने रथ की घरघराहट से शब्दाय-

मान करते हुए, युधिष्ठिर के निकट आये और उनसे रथ पर सवार होने के लिये कहा। किन्तु धर्मराज युधिष्ठिर, जो अपने भाइयों और द्रौपदी के निर्जीव हो गिरने से शोक से सन्तप्त हो रहे थे, सहस्राक्ष इन्द्र से बोले—हे सुरराज! मेरी परम अभिलाषा थी कि मेरे भाई मेरे साथ चलें—किन्तु वे लोग यहाँ गिरे पड़े हैं। अतः मैं उनके बिना स्वर्ग जाना नहीं चाहता।

इन्द्र बोले—हे धर्मराज! आप उनके लिये शोक न करें। वे तो स्वर्ग में पहुँच चुके। आप स्वर्ग में चलें—वहाँ द्रौपदी सहित चारों भाइयों से आपकी भेंट होगी। वे लोग मानवी तन परित्याग कर स्वर्ग को गये हैं; परन्तु आप इस शरीर ही से स्वर्ग जाँयगे।

युधिष्ठिर बोले—हे सुरेश्वर! यह कुत्ता मेरा चिरभक्त है। अतः इसे मैं अपने साथ स्वर्ग में ले चलूँगा। क्योंकि यदि मैं ऐसा न करूँ तो मैं बड़ा निष्ठुर समझा जाऊँगा।

इन्द्र ने कहा—धर्मराज! इस समय आप मर्त्यभाव से रहित हो मेरे समान अमर हो गये हैं और आपने लक्ष्मी, महती, सिद्धि और स्वर्ग-सुख प्राप्त किये हैं। अतः इस कुत्ते को छोड़िये। ऐसा करने से आप निष्ठुर न समझे जाँयगे।

युधिष्ठिर बोले—हे सहस्राक्ष! आर्य हो कर मेरे लिये ऐसा अनार्य कर्म करना असम्भव है। आप जिस ऐश्वर्य की बात कहते हैं—वह भले ही मुझे प्राप्त न हो; किन्तु मैं अपने एक भक्त का त्याग नहीं कर सकता।

इन्द्र ने कहा—धर्मराज! जो लोग कुत्ता पालते हैं, उन्हें स्वर्ग की प्राप्ति नहीं होती। क्योंकि देवता क्रोध में भर ऐसे लोगों के इष्टापूर्त्त के फल को हर लेते हैं। हे धर्मराज! अतः सोच समझ कर काम कीजिये। कुत्ते को त्यागिये। इसमें निर्दयता नहीं है।

युधिष्ठिर ने कहा—हे महेन्द्र! मुनियों के मतानुसार भक्त का त्यागना ब्रह्महत्या के समान महापातक है। अतः मैं निज सुखप्राप्ति की अभिलाषा

से अपने इस भक्त कुत्ते को त्याग नहीं सकता। मेरे प्राण भले ही चले जाँय, किन्तु मैं भयभीत, भक्त, शरणागत, पीड़ित, घायल और प्राण-रक्षा की याचना करने वाले को कभी न त्यागूँगा। यह मेरा पुरातन व्रत है।

इन्द्र बोले—हे धर्मराज! क्रोधवश देवता, कुत्ते के देखे हुए दान का, बड़े यज्ञ का और हवन का फल हर लेते हैं। अतः तुम इस कुत्ते को छोड़ दो। इसे छोड़ने ही से आप स्वर्ग में जा सकेंगे। हे वीर! आपने द्रौपदी और भाइयों को त्याग अपने कर्म से स्वर्ग पाया है। फिर आप इस कुत्ते को क्यों नहीं त्याग देते? आप सब का त्याग कर के भी जो आज आप मोहवश होते हैं, यह देख हमें बड़ा आश्चर्य होता है।

युधिष्ठिर बोले—हे सुरेन्द्र! मृतक पुरुष पुनः जीवित नहीं किये जा सकते। उनके साथ इस लोक में की हुई सन्धि और विग्रह तथा अन्य किसी प्रकार का भी सम्बन्ध नहीं रह जाता। मैंने तो जीवितों का त्याग नहीं किया। हे शक्र! शरणागत को भय दिखाना, स्त्री का वध करना, ब्रह्मस्व अपहृत करना, मित्र के साथ द्रोह करना—इन चार महापातकों के समान ही मैं भक्त के त्याग को भी समझता हूँ।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! धर्मरूपी भगवान् धर्मराज के इन वचनों को सुन, इन्द्र परम प्रसन्न हुए। तब धर्म ने मधुरवाणी से युधिष्ठिर की प्रशंसा कर, उनसे कहा।

धर्म ने कहा—हे वत्स! तुम अपने पूर्वजों की चलायी रीति पर चलते हो, तुम बड़े बुद्धिमान् हो और प्राणी मात्र में तुम दया रखते हो। अतः तुम कुलीन हो। हे बेटा! द्वैतवन में जहाँ जल की खोज में आये हुए तुम्हारे भाई मृतक बना दिये गये थे वहाँ मैंने ही तुम्हारी परीक्षा ली थी। वहाँ तुमने अपनी दोनों (कुन्ती और माद्री) माताओं में समानता सिद्ध करने के लिये, भीमसेन और अर्जुन के पुनः जीवित करने का अनुरोधन न कर, नकुल के पुनः जीवित करने की प्रार्थना की थी। इस समय अपने इस

भक्त कुत्ते के पीछे तुम देवरथ त्यागने को तैयार हो। हे भरतश्रेष्ठ! इसी लिये तुम्हें सशरीर अक्षय्य स्वर्गलोक की और अनुत्तम दिव्यगति प्राप्त हुई है।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! तदनन्तर धर्म, इन्द्र, मरुद्गण और पवित्र वचन, बुद्धि और कर्मों वाले रजोविहीन देवगण, देवर्षिवृन्द और यथेच्छाचारी सिद्धगण, पाण्डुनन्दन युधिष्ठिर को रथ पर सवार करा और अपने अपने विमानों में स्वयं बैठ वहाँ से चल दिये। कुरु-कुल-श्रेष्ठ युधिष्ठिर, निज तेज से पृथिवी और आकाश को परिपूर्ण कर और रथ पर चढ़, शीघ्रता से ऊपर जाने लगे। उस समय सुरपुर में स्थित एवं सर्वलोकवित् वाग्मिवर नारद जी ने उच्चस्वर से यह कहा—मैं समस्त राजर्षियों को जानता हूँ किन्तु युधिष्ठिर उन सब की कीर्ति को दबा कर, सर्वोत्तम पद पर आरूढ़ हुए हैं। इसके पूर्व, युधिष्ठिर को छोड़, अन्य कोइ राजा स्वर्ग में संदेह नहीं आया। क्योंकि युधिष्ठिर को छोड़ अन्य किसी राजा ने निज यश, निज तेज और निज सच्चरित्रता एवं सम्पत्ति से लोकों को व्याप्त नहीं किया।

नारद जी के इस कथन को सुन, युधिष्ठिर ने देवताओं और अपने पक्ष के स्वर्गस्थित देवताओं के आगे कहा—जिस जगह मेरे भाई हैं—वह स्थान चाहे शुभ हो, चाहे अशुभ—मैं तो वहीं जाना चाहता हूँ। अन्य लोक में जाना मुझे पसंद नहीं।

धर्मराज के इन वचनों को सुन, देवराज इन्द्र ने दयालु हृदय युधिष्ठिर से कहा—राजेन्द्र! आप यहाँ आ कर भी मानव-सुलभ-स्नेह भाव के चक्कर में क्यों पड़े हुए हैं? इस समय आप उस लोक में निवास कीजिये, जिसे आपने अपने शुभ कर्मों के फल से प्राप्त किया है। हे कुरुनन्दन! आपको तो वह सिद्धि प्राप्त हुई है, जो आज तक अन्य किसी पुरुष को नहीं मिली। किन्तु आपके भाइयों को तो वह स्थान प्राप्त नहीं हुआ। हे नरनाथ! आश्चर्य है कि, अब भी आपको मानुषी प्रीति घेरे हुए हैं। यह स्वर्ग है, यहाँ के देवर्षियों और स्वर्गवासी सिद्धों को आप देखें।

सर्वभूतेश्वर इन्द्र के इन वचनों को सुन धीमान् युधिष्ठिर ने कहा—हे दैत्यनिषूदन ! मैं अपने भाइयों के बिना यहाँ रहना नहीं चाहता। अतः जहाँ कहीं मेरे भाई हों, वहीं मुझे भी आप पहुँचा दें। मैं तो वहीं जाना चाहता हूँ, जहाँ बृहती पुष्प के समान श्यामाङ्गी, बुद्धिमती और नारीश्रेष्ठ मेरी द्रौपदी है।

महाप्रस्थानिक पर्व समाप्त हुआ

हिन्दी

महाभारत

स्वर्गारोहणपर्व

लेखक
चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्मा

प्रकाशक
रामनरायन लाल
पब्लिशर और बुकसेलर
इलाहाबाद

१९३०

स्वर्गारोहणपर्व

विषय-सूची

४८

आ
होत

धृत
दूर
तब
छिर,
द्रौप
सञ
शरी
युधि
जैसी
धंर
गजग

और
पद्मद
मती

के स

स्वर्गारोहणपर्व

पहिला अध्याय

युधिष्ठिर और नारद की बातचीत

श्रीनारायण को, नरों में उत्तम नर भगवान को तथा देवी सरस्वती को प्रणाम कर, जय नामक इतिहास की कथा आरम्भ करनी चाहिये।

जनमेजय ने पूँछा—हे भगवन्! शुभ कर्मों के उत्कर्ष से त्रिभुवन जिसके अन्तर्गत हो जाता है, उस त्रिविष्टप—स्वर्गलोक में जाकर, मेरे पूर्वज पितामह पाण्डवों तथा धृतराष्ट्र के पुत्रों को कौन से स्थान प्राप्त हुए। मैं यह वृत्तान्त भी सुनना चाहता हूँ। आचार्य एवं कर्मठ महर्षि वेदव्यास के वरदान से आप सर्वज्ञ हो गये हैं।

वैशम्पायन जी ने कहा—हे जनमेजय! आपके पूर्वज, पितामह पाण्डवों ने त्रिविष्टप—स्वर्ग में जा, जो किया, उसे आप सुनें। धर्मराज ने स्वर्ग में जा कर, देखा कि, श्रीमान् दुर्योधन देदीप्यमान दिवाकर की तरह, आसन पर बैठा हुआ है। उस समय दुर्योधन वीरश्री से युक्त तथा दीप्तिमान देवताओं तथा पुण्यात्मा पुरुषों के बीच बैठा हुआ था। इस प्रकार दुर्योधन को वीरश्री से युक्त देख, युधिष्ठिर का चित्त चंचल हो गया और वे लौट पड़े। वे दुर्योधन को देख रोषान्वित हो गये थे। उन्होंने चिल्ला कर देवताओं से कहा—मैं अदूरदर्शी और लालची दुर्योधन के साथ स्वर्ग में रहना नहीं चाहता। जिसके पीछे हमें वनों में रह महाकष्ट भोगने पड़े, जिसके पीछे हमें अपने सुहृदों तथा भाईबंदों का युद्ध में संहार करना पड़ा, जिसने धर्म

चारिणी अनवद्याङ्गी पाञ्चालराजपुत्री, द्रौपदी को भरी सभा में गुरुजनों के सामने अपमानित किया। हे देवगण! उस दुर्योधन की सूरत मैं देखना नहीं चाहता। मुझे तो आप लोग मेरे भाइयों के पास पहुँचा दें।

इस पर नारद जी ने मंदहास्य कर युधिष्ठिर से कहा—राजेन्द्र! आप ऐसी बातें न कहें। यह स्वर्ग है। यहाँ शत्रुता आदि दूषित भावों का नाश हो जाता है। अतः आप दुर्योधन के सम्बन्ध में अब ऐसी बातें न कहें। अब जो मैं कहता हूँ—उसे आप सुनें। ये जो अन्य समस्त राजागण आपको स्वर्ग में देख पड़ते हैं, वे सब देवताओं सहित दुर्योधन का पूजन किया करते हैं। ये लोग समरानल में अपने शरीर को होम कर, वीरलोक में आये हैं। आप सब यहाँ देवतुल्य हैं। यद्यपि दुर्योधन ने सदा आपके साथ विद्वेष किया और आप लोगों को सताया है तथापि इसे यह स्थान, क्षात्रधर्म का पालन करने के कारण प्राप्त हुआ है। बड़ा भारी भय उपस्थित होने पर भी दुर्योधन कभी नहीं डरा। जुए के खेल के कारण आपको जो क्लेश हुआ, उसे आप भूल जाँय। आप द्रौपदी के अपमान को भी भूल जाँय। युद्ध में अपने जाति वालों से आपको जो कष्ट मिले, उसे भी आप भुला दें। राजन्! आप न्यायानुसार दुर्योधन से मिलें। यह स्वर्ग है। यहाँ मर्त्यलोक जैसी शत्रुता नहीं हुआ करती।

जब नारद जी ने युधिष्ठिर से ये बचन कहे, तब मेधावी धर्मराज युधिष्ठिर ने भाइयों के विषय में पूँछते हुए कहा—जिसके पीछे घोड़े, हाथी, और मनुष्यों सहित भूमण्डल विनष्ट हुआ है और जिसके पीछे बदला लेने के लिये उत्सुक, हम सब लोगों को क्रोध की आग में भस्म होना पड़ा है, उस अधर्मी, पापी, संसार एवं सुहृदों के द्रोही दुर्योधन को यदि ये सनातन वीरलोक प्राप्त हुए हैं, तो बतलाइये, मेरे वीर, महात्मा, महाव्रतधारी, सत्य प्रतिज्ञ, शूरवीर, और सत्यभाषी समस्त भाई इस समय किस लोक में हैं? मैं उन सब को देखने के लिये उत्सुक हूँ। हे नारद! सत्यसङ्गर महात्मा कुन्ती-नन्दन कर्ण, धृष्टद्युम्न, सात्यकि, धृष्टद्युम्न के पुत्र तथा युद्धक्षेत्र में शस्त्रों के

प्रहार से मरे हुए अन्य समस्त राजा लोग कहाँ हैं? वे लोग तो मुझे यहाँ नहीं देख पड़ते। हे नारद! विराट्, द्रुपद और धृष्टकेतु प्रभृति राजाओं को पञ्चालपुत्र शिखण्डी, द्रौपदी के पुत्रों और दुर्द्धर्ष अभिमन्यु को मैं देखना चाहता हूँ।

दूसरा अध्याय

युधिष्ठिर और देवताओं की बातचीत

युधिष्ठिर बोले—हे देवगण! मुझे यहाँ परमतेजस्वी न तो कर्ण ही देख पड़ते और न युधामन्यु तथा उत्तमौजा ही। जिन महारथियों ने अपने शरीरों को समरानल में होम दिया और जो राजा तथा राजकुमार मेरे पीछे समर में मारे गये, वे समस्त शार्दूल के समान पराक्रमी महारथी कहाँ हैं? क्या वे साधु लोग इस लोक में हैं? हे देवगण! मुझे भी आप उन्हींको कोटि का समझिये। यदि उन लोगों को यह लोक प्राप्त नहीं हुआ, तो मैं अपने उन राजाओं, भाइयों और जाति बिरादरी वालों से अलग रहना नहीं चाहता। जलदान के लिये माता ने मुझे आज्ञा दी थी कि, मैं कर्ण के निमित्त जलाञ्जलि दूँ। मैंने माता की आज्ञा मान, कर्ण का तर्पण तो किया; किन्तु उस समय माता की इस आज्ञा को सुन, मुझे दुःख अवश्य हुआ था।

हे देवगण! इस समय मुझे बारंबार इस बात का परिताप हो रहा है कि, मैं उस पर-बल-मर्दन-कारी कर्ण के दोनों चरणों को जननी के चरणों के सदृश देख कर भी, उनके अनुगत क्यों न हुआ? यदि हम लोग कर्ण को अपनी ओर कर लेते, तो देवराज इन्द्र भी हमें जीत नहीं सकते थे। कर्ण का वृत्तान्त मुझे अवगत न होने के कारण ही वे अर्जुन के हाथ से मारे गये थे। सूर्यनन्दन कर्ण चाहे जहाँ हों—मैं उनसे मिलना चाहता हूँ। मैं प्राणों से भी अधिक प्यारे भीम विक्रमी भीमसेन, इन्द्रतुल्य अर्जुन, अश्विनी कुमारों के समान नकुल सहदेव को देखना चाहता हूँ। मुझे यहाँ रहना

अच्छा नहीं लगता । हे सुरसत्तमगण ! मैं आपसे सत्य ही सत्य कहता हूँ कि भाइयों के बिना मुझे स्वर्ग में रहना पसंद नहीं है । वे जहाँ हैं, वहीं मेरा स्वर्ग है । मैं भाइयों से शून्य इस स्वर्ग को स्वर्ग नहीं मानता ।

देवता बोले—हे तात ! यदि तुम उसी स्थान पर जाना चाहते हो तो वहीं जाओ । विलम्ब मत करो । हम देवराज से पूँछ कर तुम्हारे इच्छानुसार ही कार्य करेंगे ।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय ! तदनन्तर देवताओं ने देवदूत से कहा—इन्हें ले जा कर, इनके भाइयों को इन्हें दिखला लाओ । तदनन्तर युधिष्ठिर उस देवदूत के साथ वहाँ गये जहाँ उनके भाई थे । आगे आगे देवदूत था और उसके पीछे धर्मराज थे । चलते चलते वे पापियों से सेवित, उस अशुभपथ में तुरन्त जा पहुँचे, जहाँ अन्धकार छाया हुआ था, जो महाभयङ्कर था, जिस पर बाल के समान सिवार थी, जहाँ माँस और रक्त की कीचड़ हो रही थी, जहाँ पापियों के शरीरों से निकली हुई दुर्गन्धि आती थी । वहाँ डाँसों और मच्छड़ों का घोर उपद्रव था । वहाँ जिधर देखो उधर मुर्दे पड़े हुए थे । चारों ओर हड्डियाँ और बाल पड़े हुए थे । वह स्थान कृमि कीटों से भरा हुआ था । उसके चारों ओर आग धधक रही थी । लोहे जैसी कड़ी और पैनी चोंचों वाले गिद्ध और कौवे वहाँ उड़ रहे थे । और विन्ध्य गिरि जैसे विशाल काय एवं सूचीमुख प्रेतों से वह स्थान परिपूर्ण था । रुधिर और मज्जा से तराबोर, टूटे हाथों, भुजाओं और उदर चरणों वाले प्रेतों से पूर्ण मार्ग पर युधिष्ठिर को चलना पड़ा । उस दुर्गन्धि युक्त, अकल्याणरूप और रोमाञ्चकारी मार्ग पर हो कर जाते हुए, युधिष्ठिर ने, अत्यन्त दुर्गम एक नदी देखी । सफेद और मिहीन गरम बालू, तपी हुई लोहे की चद्दरें, गरम तेल से भरे कड़ाह आदि पापियों के दण्डस्थानों को युधिष्ठिर ने देखा । युधिष्ठिर ने वे स्थान भी देखे जहाँ बड़े पैने काँटे बिछे थे और जहाँ दुःस्पर्श बड़े पैने कटीले सेमल के वृक्ष खड़े थे । वहाँ पापियों को दण्ड दिया जा रहा था और वे उस दण्ड से पीड़ित हो रहे थे । उस

दुर्गम स्थान को देख, युधिष्ठिर ने देवदूत से पूँछा—अभी हमें कितनी दूर ऐसी राह पर और चलना पड़ेगा। मेरे वे भाई लोग कहाँ हैं? सो बतलाओ। मैं यह भी जानना चाहता हूँ कि, देवलोक के इस प्रान्त का क्या नाम है?

देवदूत बोला—बस आपको यहीं तक आना था। अब यहाँ से लौट चलिये। क्योंकि देवताओं ने मुझसे कह दिया है कि, जब आप थक जाँय, तब मैं आपको लौटा ले चलूँ। उस समय युधिष्ठिर दुर्गन्धि से विकल हो अचेत से हो रहे थे। लौटते समय युधिष्ठिर के कान में ये दुःखभरे शब्द पड़े—हे धर्मपुत्र! हे राजर्षि पाण्डव! हम लोगों पर अनुग्रह कर, एक मुहूर्त्त भर यहाँ और ठहरिये। हे अजेय तात! आपके यहाँ आने पर आपके शरीर को स्पर्श कर जो सुगन्धि युक्त हवा चलती है, उसके हमारे शरीर में लगने से, हमें बड़ा सुख प्राप्त होता है। आपको देखने से हमें चिरकाल तक बड़ा आनन्द प्राप्त होगा। इसलिये हे धर्मराज! आप एक मुहूर्त्त भर यहाँ ठहरें। आपके यहाँ रहने से हमारा दुःख दूर होता है और यहाँ की वेदना हमें नहीं सताती है।

हे जनमेजय! युधिष्ठिर को वहाँ चारों ओर से दुःखियों के ये ही शब्द सुन पड़े। दयालुहृदय युधिष्ठिर उन दुःखियों के इन दुःख भरे वचनों को सुन, खड़े हो गये। किन्तु वे दुःखिया कौन थे, उन्हें युधिष्ठिर न पहचान सके। तब उन्होंने उनसे पूँछा—आप लोग कौन हैं और यहाँ क्यों रहते हैं? इस पर चारों ओर से सुन पड़ा—मैं कर्ण हूँ, मैं भीम हूँ, मैं अर्जुन हूँ, मैं नकुल हूँ, मैं सहदेव हूँ, मैं धृष्टद्युम्न हूँ, मैं द्रौपदी हूँ और हम द्रौपदी के पुत्र हैं। इस प्रकार वहाँ चिल्लाहट मची। उस समय युधिष्ठिर मन ही मन सोचने लगे। हा! दैव का यह कैसा विधान है? महात्मा कर्ण तथा द्रौपदी आदि ने कौन सा पाप कर्म किया था, जो इन पापगन्ध से पूर्ण दारुण स्थान में इनको वास मिला है? मुझे तो इन समस्त पुण्यकर्मा लोगों का कोई भी पाप कर्म नहीं मालूम। धृतराष्ट्र का महापापी पुत्र राजा दुर्योधन कौन सा कर्म कर के अपने साथियों सहित इन्द्र की तरह श्रीसम्पन्न हो, इन्द्र की तरह

सम्मान प्राप्त कर रहा है ? यह किस कर्म का फल है जो ये धर्मात्मा, शूर, सत्यवादी, शास्त्रोक्त कर्म करने वाले, सन्त, यज्ञकर्त्ता और बड़ी बड़ी दक्षिणाएँ देने वाले लोग नरक में पड़े हैं। क्या मैं सोता हूँ, या जागता हूँ अथवा अचेत हूँ ? यह व्यापार तो चित्त को भ्रान्त कर, आश्चर्य चकित करने वाला है। अथवा यह मेरा चित्तविभ्रम है ? महाराज युधिष्ठिर दुःख और शोक से व्याकुल हो, इस प्रकार तरह तरह के विचारों की उधेड़बुन में पड़ गये। उन्होंने क्रोध में भर, देवताओं की और कर्म की निन्दा की। वहाँ की दुर्गन्धि से घबड़ाये हुए युधिष्ठिर ने देवदूत से कहा—तुम जिनके आज्ञा-वर्ती सेवक हो—उनके पास जाओ। मैं वहाँ नहीं जाऊँगा। मैं तो यहीं रहूँगा। देवदूत! तुम लौट जाओ और देवताओं से कहो कि, मेरे ये भाई मेरे यहाँ रहने से सुखी होते हैं। अतः मैं यहीं रहूँगा।

बुद्धिमान् युधिष्ठिर की आज्ञा पा, देवदूत, देवराज इन्द्र के निकट गया। उसने वहाँ जा, धर्मराज ने जो कहा था वह ज्यों का त्यों, इन्द्र को कह सुनाया।

तीसरा अध्याय

युधिष्ठिर का तनुत्याग कर अर्जुनादि के निकट गमन

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! जब युधिष्ठिर वहाँ एक मुहूर्त्त तक ठहर गये, तब इन्द्रादि देवता वहीं जा उपस्थित हुए। सुस्वरूप धर्म देवता भी युधिष्ठिर को देखने के लिये वहाँ पहुँचे। उन पवित्र कर्मा एवं पवित्रकुलोद्भव प्रकाशवान वपुधारी देवताओं के वहाँ पहुँचने पर, वहाँ का अन्धकार दूर हो गया। पापियों का दण्डस्थान, वैतरणी नदी और कूट-शाल्मली वृक्ष सहित वहाँ से अदृश्य हो गये। वहाँ के भयानक गर्म तेल के कढ़ाह और भयङ्कर शिलाएँ भी न मालूम कहाँ अदृश्य हो गयीं। देवताओं के वहाँ उपस्थित होते ही सुखस्पर्शी शीतल सुगन्ध युक्त हवा चलने लगी।

साध्यगण, एकादश रुद्र, द्वादश सूर्य, सिद्ध, महर्षि तथा अन्यान्य देवगण वहाँ उपस्थित हुए, जहाँ धर्मराज खड़े थे। तदनन्तर महती शोभा से युक्त देव-राज इन्द्र ने परम विश्वस्त महाराज युधिष्ठिर से कहा—हे महाबाहो! देवगण आप पर प्रसन्न हैं! हे पुरुषप्रवर! यहीं तक ठीक है। आइये। आपको समस्त अक्षय्य लोक और सिद्धि प्राप्त हुई हैं। आप क्रोध न करें और मैं जो कहता हूँ उसे सुनें। हे तात! जितने राजा होते हैं, उन्हें सब को नरक देखना पड़ता है। हे पुरुषप्रवर! शुभ और अशुभ अथवा पुण्य और पाप की दो राशियाँ होती हैं। इनमें से जो प्रथम पुण्यफल भोगना चाहते हैं; उन्हें पीछे नरक भोगना पड़ता है, और जो पहले नरक भोगते हैं, उन्हें पीछे स्वर्गसुख भोगने को मिलते हैं। जो लोग पाप अत्यधिक करते हैं, उन्हें पहले स्वर्गसुख भुगाया जाता है। इसीसे मैंने आपकी भलाई के लिये आपको प्रथम नरक दिखलाया है, आपका पापकर्म यह है कि, आपने द्रोणाचार्य के वध के समय अश्वत्थामा के विषय में मिथ्या भाषण किया था, आपके इस कपट व्यवहार के लिये ही आपको नरक दिखलाया गया है। आपने जिस प्रकार कपट नरक देखा,उसी प्रकार भीम, अर्जुन, नकुल सहदेव और द्रौपदी ने छलक्रम से नरक में गमन किया था। हे राजन्! आपके पक्ष के जितने राजा लोग युद्ध में मारे गये थे, देखिये वे सब स्वर्ग में निवास कर रहे हैं। आप जिनके लिये सन्तप्त हो रहे हैं, उन शस्त्र-धारियों में श्रेष्ठ महाधनुर्द्धर कर्ण को परम सिद्धि प्राप्त हुई है। हे नरश्रेष्ठ महाबाहो! कर्ण को आप अपने ही स्थान पर देखिये, जिससे आपके मन का शोक दूर हो। हे कौरव! प्रथम कष्ट का अनुभव कर, तदनन्तर शोक रहित तथा निरामय हो, मेरे साथ आप विहार करें। हे तात! आप अपने तपः प्रभाव एवं दानादि धर्मानुष्ठान के द्वारा उपार्जित फल को अब उपभोग करें। आज रजोहीन वस्त्रों और भूषणों को धारण किये हुए गन्धर्व एवं दिव्य अप्सराएँ स्वर्ग में आपकी सेवा करें। हे राजन्! आपने राजसूय यज्ञ कर, जिन लोकों को स्वयं प्राप्त किया है, वे सब लोक आप प्राप्त करें और तप के फल को

भी भोगें। राजा हरिश्चन्द्र के लोकों की तरह आपके लोक तथा अन्य राजाओं के लोक भी अलग अलग हैं। उनमें आप विहार करें। आपको वे लोक प्राप्त होंगे जिनमें राजर्षि मान्धाता, महाराज भगीरथ, और दशरथ-नन्दन भरत जी हैं। हे राजेन्द्र! यह देखिये, यह त्रिलोक-पाविनी सुरनदी आकाश-गङ्गा है। आप इसमें स्नान करें। इसमें स्नान करने से आपका मनुष्यभाव दूर हो जायगा। शोक, व्यग्रता और द्वेषभाव से आपका पिंड छुट जायगा।

जब देवराज इन्द्र कौरवेन्द्र युधिष्ठिर को इस प्रकार समझा चुके; तब मूर्तिमान् धर्मदेव ने अपने पुत्र युधिष्ठिर से कहा—हे ज्ञानवान् युधिष्ठिर! तेरी भक्ति, सत्यवादता, वक्तृत्व, सन्तोष और जितेन्द्रियत्व देख, मैं तेरे ऊपर प्रसन्न हूँ। मैंने तेरी यह तीसरी बार परीक्षा ली है। तू राजा है, अतः तेरा क्षत्रियोचित स्वाभाव कोई बदल नहीं सकता। प्रथम द्वैतवन में युग्म अरणीकाष्ठ के सम्बन्ध में प्रश्न द्वारा मैंने तेरी परीक्षा ली। उस परीक्षा में तू उत्तीर्ण हुआ। दूसरी बार तेरे भाइयों और द्रौपदी के मृतक होने पर, श्वान रूप धारण कर मैंने तेरी परीक्षा ली। उसमें भी तू उत्तीर्ण हुआ। अब यह तीसरी परीक्षा थी कि, तू अपने भाइयों के पास रहना चाहता है। हे महाभाग! तू परम पवित्र, पापशून्य और सुखी हो। हे राजन्! तेरे भाई नरक योग्य नहीं हैं। देवराज इन्द्र की यह माया थी। हे तात! समस्त राजाओं को नरक देखना पड़ता है। इसीसे तुझे भी दो मुहूर्त्त तक दुःख भोगना पड़ा है। हे पुरुषोत्तम! नकुल, सहदेव, भीमसेन और सत्यवक्ता कर्ण अधिक काल तक नरक में रहने योग्य नहीं हैं। हे युधिष्ठिर! राजपुत्री द्रौपदी नरक के योग्य नहीं है। आ! त्रिलोक-पावनी इस आकाशगङ्गा के दर्शन कर।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! तदनन्तर आपके पूर्वज पितामह राजर्षि युधिष्ठिर, वहाँ से सब देवताओं के साथ चल दिये। तदनन्तर ऋषियों से प्रशंसित युधिष्ठिर ने पावनी सुरनदी आकाश-गङ्गा में गोता

लगाया। गोता लगाते ही युधिष्ठिर मनुष्य शरीर त्याग, प्रकाशमय शरीर धारी हो गये और द्वेष, शोक से उनका पिंड छुट गया। उस समय देवताओं से घिरे और महर्षियों से प्रशंसित महाराज युधिष्ठिर, धर्मदेव के साथ उस लोक में गये, जहाँ क्रोध से रहित, पुरुषोत्तम शूरवीर पाण्डव तथा धृतराष्ट्र के पुत्र अलग अलग स्थानों पर रहते थे।

चौथा अध्याय

युधिष्ठिर को श्रीकृष्ण के दर्शन

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय! तदनन्तर, देवता, ऋषि और मरुद्गण से प्रशंसित महाराज युधिष्ठिर, कौरवों के निकट गये। वहाँ युधिष्ठिर ने ब्राह्म शरीर युक्त भगवान् गोविन्द के दर्शन किये। उस समय वे निज वपु की शोभा से देदीप्यमान थे। सुदर्शन चक्रादि दिव्य अस्त्र, पुरुष-विग्रह धारण कर, उनकी उपासना कर रहे थे। उनके पास अर्जुन उनकी उपासना करते हुए स्थित थे। युधिष्ठिर को इस छवि में भगवान् मधुसूदन ने अपने दर्शन दिये। देवताओं से पूजित उन दोनों नर नारायण ने युधिष्ठिर को देख, उनके प्रति सम्मान प्रदर्शित किया। तदनन्तर युधिष्ठिर ने स्थानान्तर में जा शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ, द्वादशात्मक सूर्य के समान प्रकाशवान् कर्ण को देखा। दूसरे स्थान पर, मरुद्गण के सहित मूर्तिमान पवनदेव की गोद में दिव्य रूप धारी एवं परम सिद्धि को प्राप्त बड़े शोभायमान भीमसेन को देखा। तदनन्तर अश्विनीकुमारों के स्थान पर, परमतेजस्वी नकुल और सहदेव को देखा। फिर युधिष्ठिर ने सूर्य के समान तेजस्विनी एवं कमल मालिनी द्रौपदी को अपनी शरीर की सुघराई से सुरपुर की शोभा बढ़ाते हुए देखा। द्रौपदी को देखते ही युधिष्ठिर ने चाहा कि, द्रौपदी से कुछ पूँछे—किन्तु देवराज इन्द्र ने सब वृत्तान्त वर्णन करते हुए युधिष्ठिर से कहा—हे युधिष्ठिर! यह अयोनिजा, लोकप्रिया, पावनी एवं गन्धवती

द्रौपदी स्वर्ग की लक्ष्मी है। इसने आपके लिये मानव-शरीर धारण किया था। शिव जी की प्रेरणा से यह आपके सुसंग के निमित्त उत्पन्न की गयी थी। राजा द्रुपद के यहाँ उत्पन्न हो, आपको प्राप्त हुई थी। ये आपके और द्रौपदी के परमतेजस्वी और अग्नि की तरह प्रकाशमान् पुत्र पाचों महाभाग गन्धर्व हैं। अब आप गन्धर्वराज बुद्धिमान धृतराष्ट्र को भी देख लो। इन्हें आप अपने पिता का ज्येष्ठ भ्राता जानो। अग्नि के समान तेजस्वी यह कुन्तीनन्दन, सौर्य और राधेय के नाम से विख्यात आपके ज्येष्ठभ्राता हैं। इन पुरुषोत्तम को आप देखिये। यह विमान में बैठ कर चलते हैं। हे राजेन्द्र! साध्यगण, विश्वेदेवा और मरुतों में आपको, भोज, अन्धक और वृष्णि वंशी महापराक्रमी सात्यकि आदि बड़े बडे वीर महारथी देख पड़ेंगे। सुभद्रानन्दन, अजेय, महाधनुर्धर एवं चन्द्रवत् तेजस्वी अभिमन्यु को चन्द्र के साथ आप देखें। कुन्ती और माद्री के प्यारे आपके पिता पाण्डु सदा विमान में बैठ मेरे पास आया करते हैं। शान्तनुनन्दन भीष्म पितामह आपको वसुओं के समूह में देख पड़ेंगे। देखिये आचार्य द्रोण, सुर-गुरु बृहस्पति के निकट विद्यमान हैं। हे युधिष्ठिर! अन्यान्य राजा और आपके योद्धा लोग, गन्धर्वों, यक्षों और पुण्यजनों के सहित विमानों में बैठ बिचरा करते हैं। कितने ही राजाओं को गुह्यकों की गति प्राप्त हुई है। उन लोगों ने शरीर त्याग कर, पवित्र वाणी, पवित्र कर्म और पवित्र बुद्धि के द्वारा स्वर्ग प्राप्त किया है।

पाँचवाँ अध्याय

कौरवों के स्वर्गवास की पृथक् पृथक् अवधि

जनमेजय बोले—हे वैशम्पायन जी! भीष्म, द्रोण, धृतराष्ट्र, विराट, द्रुपद, शङ्ख, उत्तर, धृष्टकेतु, जयत्सेन, सत्यजित्, दुर्योधन के पुत्रगण, शकुनि, कर्ण के पुत्रगण, राजा जयद्रथ और घटोत्कच आदि जिनके नाम

ऊपर वर्णन नहीं किये गये तथा वे राजा जिनके नाम ऊपर वर्णन किये जा चुके हैं, कितने समय तक स्वर्ग में रहे ? हे द्विजसत्तम ! क्या स्वर्ग ही उनका सदैव के लिये निवासस्थान था ? अथवा कर्मफल भोगने के बाद वे किस गति को प्राप्त हुए ? आप इन मेरे प्रश्नों का उत्तर दें। क्योंकि आपको तपः प्रभाव से सब बातें मालूम हैं।

सौति ने कहा—हे राजन् ! महात्मा व्यास जी से अनुमति ले, उस ब्रह्मर्षि ने कहना आरम्भ किया।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय ! कर्मफल समाप्त होने पर, सब जीव प्रकृति को प्राप्त नहीं होते। यदि समस्त जीव कर्मफल भोगने के अनन्तर प्रकृति दशा को प्राप्त हो जाया करते, तो समस्त जीवों की मोक्ष हो जाती और यह संसार शून्य हो जाता। अतः कर्म शेष होने पर निज प्रकृति को प्राप्त होने वाले जीव बिरले ही होते हैं।

हे राजन् ! परमतेजस्वी, प्रतापी, अगाध बुद्धि सम्पन्न, सर्वज्ञ, सर्वगतिज्ञ, दिव्यचक्षुओं से युक्त पराशरसुत वेदव्यास जी ने जो कहा है, देवताओं से भी गुप्त उस वृत्तान्त को आप सुनें। भीष्म को अष्टवसुओं का लोक प्राप्त हुआ है। आचार्य द्रोण आङ्गिरस प्रवर बृहस्पति के शरीर में प्रविष्ट हुए। हार्दिक्य कृतवर्मा ने मरुद्गण के शरीरों में प्रवेश किया, प्रद्युम्न ने सनत्कुमार के शरीर में प्रवेश किया। गान्धारी सहित धृतराष्ट्र दुरासद कुबेर के लोक में गये। पाण्डु ने माद्री और कुन्ती सहित महेन्द्र के स्थान में वास पाया। विराट, द्रुपद, धृष्टकेतु, निशठ, अक्रूर, साम्ब, सानुकम्प, विदूरथ, भूरिश्रवा, शल, पृथ्वीपति, भूरि, कंस, उग्रसेन, वसुदेव, उत्तर तथा उनके भाई शङ्ख आदि ने विश्वेदेवों में प्रवेश किया। कर्मों के शेष होने पर अभिमन्यु ने चन्द्रमण्डल में प्रवेश किया। पुरुषश्रेष्ठ कर्ण, सूर्यमण्डल में प्रविष्ट हुए। शकुनि द्वापर के और धृष्टद्युम्न अग्निदेव के शरीर में प्रविष्ट हुए। धृतराष्ट्र के समस्त पुत्र बल में प्रमत्त रूप राक्षस थे। वे शस्त्रों द्वारा पवित्र हो स्वर्ग-वासी हुए। विदुर और युधिष्ठिर धर्मदेव में लय हो गये। बलदेव जी, जो

शेष जी का अवतार थे, रसातल में चले गये । जो ब्रह्मा की प्रार्थना को स्वीकार कर, योगबल से पृथिवी का भार उठाये हुए हैं, जो देवताओं के भी देवता हैं, उन सनातन नारायण के अंश से उत्पन्न वासुदेव श्रीकृष्ण मानवी लीला पूरी कर, नारायण में लीन हो गये ।

हे जनमेजय ! वासुदेव की सोलह हज़ार स्त्रियाँ जो काल की प्रेरणा से सरस्वती नदी में डूब गयी थीं—वे स्वर्ग में अप्सरा बन, वासुदेव जी के निकट गयीं । उस महासमर में जो बड़े बड़े महारथी वीर योद्धा घटोत्कच आदि मारे गये थे ; वे मरने पर देवताओं और यक्षों के लोक में गये । दुर्योधन के जो राक्षस सहायक थे, उन्हें भी क्रम से उत्तम लोकों की प्राप्ति हुई । उनमें से किसी ने महेन्द्रभवन में, किसी ने धीमान् कुबेर और वरुण के लोक में प्रवेश किया ।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय ! यह मैंने आपके आगे कौरवों और पाण्डवों का समस्त वृत्तान्त विस्तार पूर्वक वर्णन किया ।

सौति बोले—हे द्विजोत्तम ! यज्ञ में इस वृत्तान्त को सुन राजा जनमेजय को बड़ा आश्चर्य हुआ । तदनन्तर यज्ञ कराने वालों ने उनके उस यज्ञ कार्य को पूर्ण किया । आस्तीक मुनि भी सर्पों के प्राणों की रक्षा करवा हर्षित हुए । राजा जनमेजय ने ब्राह्मणों को दक्षिणाएँ दे, उन्हें सन्तुष्ट किया । वे अपने अपने घरों को चले गये । उन विप्रों को बिदा कर, राजा जनमेजय तक्षकशिला से हस्तिनापुर में आये ।

राजा जनमेजय के यज्ञ में व्यास जी की आज्ञा से वैशम्पायन वर्णित और अपना जाना हुआ यह इतिहास मैंने आपके आगे कहा । यह इतिहास परम पावन, संसारसागर से उद्धार करने वाला और अत्युत्तम है । इसके रचयिता वेदव्यासदेव जी हैं, जो सत्यवादी, सर्वज्ञ, धर्म-ज्ञान-सम्बन्धी समस्त विषयों के ज्ञाता, सत्पुरुष, जितेन्द्रिय और योगी हैं और तप करने से जिनका चित्त शुद्ध हो गया है । पाण्डवों का यह इतिहास व्यास जी ने तत्कालीन घटनाओं को योगबल से देख कर रचा है ।

जो बुद्धिमान् प्रत्येक पर्व पर इसे दूसरों को सुनावेगा, वह निश्चय ही पापरहित हो मरने पर स्वर्गधाम को सिधारेगा। जो मनुष्य इस वेदकल्प इतिहास को मूल सहित आद्यन्त सुनता है, उसके ब्रह्महत्यादिक करोड़ों घोरातिघोर पाप नष्ट हो जाते हैं। जो मनुष्य श्राद्ध करते समय, श्राद्ध के ब्राह्मणों को इस इतिहास का एक पाद भी सुना देते हैं, उनके पितरों को उस श्राद्ध का अक्षय्य फल प्राप्त होता है। जो पुरुष दिन में मनसा या इन्द्रियों द्वारा पाप करता है वह सायंकाल सन्ध्योपासन करने के उपरान्त यदि महाभारत को पढ़े तो वह पाप से छूट जाता है। स्त्रियों सहित जो ब्राह्मण रात में पाप करता है, वह प्रातःसन्ध्या में महाभारत का पाठ करने से पाप से मुक्त हो जाता है। अर्थ एवं आशय की गुरुता के कारण तथा अपनी विशालता के कारण इस ग्रन्थ को महाभारत कहते हैं। जो मनुष्य इस महाभारत अथवा इसके साठ लाख मूल श्लोकों को जानता है, उसके समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के जो विषय महाभारत में हैं, वे अठारहों पुराणों में नहीं हैं। पुराणों की रचना-महाभारत की छाया ही से हुई है। मोक्षार्थी ब्राह्मण, क्षत्रिय और गर्भवती स्त्री को यह इतिहास सुनना चाहिये। स्वर्गाभिलाषी को स्वर्ग, विजयाभि-लाषी को विजय और गर्भवती को उसकी इच्छा के अनुसार पुत्र अथवा कन्या—इस महाभारत की कथा को सुनने से प्राप्त होती है। वेदव्यास जी ने धर्म का प्रचार करने के लिये इस मोक्षदायक ग्रन्थ को बड़ी चतुरता से बनाया है। व्यास जी ने चारों वेदों के आशय को ले कर, साठ लक्षात्मक महाभारत संहिता रची। उसमें का आधा भाग अर्थात् तीस लक्षात्मक संहिता तो देवलोक में है। पन्द्रह लक्षात्मक पितृलोक में और चतुर्दश लक्षात्मक यक्षलोक में है। इहलोक में एक लक्षात्मक महा-भारत संहिता का प्रचार है। यह संहिता देवताओं को नारद जी ने, पितरों को देवल ऋषि ने, राक्षसों और यक्षों को शुकदेव जी ने और मनुष्यों को वैशम्पायन जी ने सुनायी। इन चारों को पढ़ाने वाले वेदव्यास जी ही हैं।

ब्राह्मण को आगे कर, जो मनुष्य, इस परम पावन एवं वेद के सदृश महान् अर्थ से ओतप्रोत इतिहास को लोगों को सुनाता है, उस मनुष्य की इस लोक में समस्त मनोकामनाएं पूरी होती हैं, उसकी कीर्ति दिगन्तव्यापिनी होती है और मरने पर उसे परमगति प्राप्त होती है। चौथाई पुस्तक अथवा चौथाई श्लोक के पढ़ने वाले को भी वही फल प्राप्त होता है। अथवा व्यास जी में बड़ी श्रद्धा भक्ति रख, इसे सुनाने वाले मनुष्य को भी वही फल मिलता है। यह तो भारत के माहात्म्य का वर्णन किया गया है। अब भारत के साररूप चार श्लोकों का अर्थ लिखा जाता है। सहस्रों माता पिता, सहस्रों स्त्री पुत्र, संसार में होते हैं, हुए हैं और आगे भी होंगे। सहस्रों बार हर्ष और विषाद के अवसर मूढ़ जनों को प्राप्त होते हैं, किन्तु पण्डितों को ऐसे अवसरों से भेंट नहीं होती। मैं बाँह उठाये चिल्ला कर कह रहा हूँ—किन्तु मेरे चिल्लाने पर कोई ध्यान नहीं देता। अतः लोग धर्म के कारण अर्थ और काम का सेवन क्यों न करेंगे? काम, भय, लोभ अथवा जीवन के लिये कदापि धर्म को न छोड़ना चाहिये। क्योंकि धर्म ही नित्य है। सुख और दुःख तो अनित्य हैं। जीव नित्य है, किन्तु जीव के हेतु शरीरादि अनित्य हैं।

जो पुरुष नित्य सबेरे उठ कर, चार श्लोकों की इस भारत सावित्री का पाठ करता है, उसे समस्त महाभारत के पाठ का फल प्राप्त होता है और अन्त में उसे परब्रह्म मिलते हैं। जैसे हिमालय और समुद्र—दोनों रत्नाकर कहलाते हैं; वैसे ही यह महाभारत भी प्रसिद्ध है। जो भली भाँति सावधान हो कर महाभारत को पढ़ता है, उसे निश्चय ही परम सिद्धि मिलती है। व्यास जी के मुख से निकली हुई, पावनी, उद्धार करने वाली, पापघ्नी, कल्याणरूपिणी और अप्रमेय महाभारत की कथा को जो मनुष्य समझता है, उसको पुष्करादि तीर्थों में मंत्रपूर्वक स्नानादि करने की आवश्यकता नहीं रह जाती।

छठवाँ अध्याय

महाभारत की कथा कहने और सुनने का विधान

राजा जनमेजय ने पूँछा—भगवन् ! ज्ञानी पुरुषों को महाभारत की कथा किस विधान से सुननी चाहिये ? महाभारत सुनने का फल क्या है और ग्रन्थ समाप्त होने पर किस देवता का पूजन करना उचित है ? प्रत्येक पर्व की समाप्ति पर क्या क्या वस्तुएं दान करनी चाहिये, वक्ता से क्या पूँछना उचित है ?—ये बातें भी आप मुझे बतला दें।

वैशम्पायन जी बोले—हे जनमेजय ! महाभारत के सुनने सुनाने का विधान और उससे मिलने वाले फल को भी आप सुनें। राजन् ! स्वर्ग-स्थित देवगण क्रीड़ा करने के लिये धराधाम पर आये और क्रीड़ा कर के पुनः देवलोक को लौट गये। सूर्य के पुत्र दोनों अश्वनीकुमार, देवता, लोक-पाल, महर्षि, गुह्यक, गन्धर्व, नाग, विद्याधर, सिद्ध, धर्म, मुनियों सहित शरीरधारी ब्रह्मा जी, पर्वत, सागर, नदी, अप्सराओं के समूह, ग्रह, संवत्सर, अयन, ऋतु, चराचर सारा जगत्, असुर—इन सब का वृत्तान्त महाभारत में दिया हुआ है। इन सब के अवतारों की कथा, इनके नाम और कर्मों को वर्णन करने से, घोर पापी जन भी पाप से मुक्त होता है। इस इतिहास को सुन लेने बाद, जितेन्द्रिय हो, पवित्रता पूर्वक, उनका श्राद्ध करना चाहिये। अपने सामर्थ्य के अनुसार रत्नादि का दान ब्राह्मणों को देना चाहिये। गौ, काँसे की दुधैड़ी, भली भाँति अलङ्कृत एवं शुभलक्षणों से युक्त कन्याएँ, विविध भाँति के खाद्य पदार्थ, विचित्र स्थान, भूमि, वस्त्र, सुवर्ण, अश्व, युवा हाथी तथा विविध प्रकार के वाहन, पलंग, पालकी, सजे हुए रथ, उत्तमोत्तम वस्त्र, स्थल में उत्पन्न रत्नादि, ये सब वस्तुएँ ही नहीं—बल्कि अपना शरीर, अपनी स्त्री और अपने पुत्र तक ब्राह्मणों को दे। क्रम पूर्वक एवं श्रद्धापूर्वक इनके देने की विधि सुनो। शुद्ध चित्त, प्रसन्न मुख, सामर्थ्या-नुसार सेवा करने वाला, सन्देह रहित, सत्यप्रेमी और सत्यवादी, जितेन्द्रिय,

बाहिर भीतर पवित्र रहने वाला, श्रद्धावान्, क्रोधशून्य, भारत का पारगामी जिस तरह सिद्ध होता है—वह आप सुनिये। महाभारत की कथा उस ब्राह्मण को कहनी चाहिये जो पवित्र रहता हो, मधुरभाषी हो, आचारवान् हो, स्वच्छ सफेद वस्त्र पहिनता हो, जितेन्द्रिय हो, संस्कार सम्पन्न हो, सर्व-शास्त्रज्ञ हो, स्वयं श्रद्धावान् हो, दूसरे के गुणों में दोष न लगाता हो, स्वरूपवान् हो, ऐश्वर्य युक्त हो, शिक्षित हो, कथा कहने का जिसे अभ्यास हो। ऐसे ब्राह्मण से कथा सुन उसे यदि दान दिया जाय और उसके प्रति सम्मान प्रदर्शित किया जाय, तो वह सुनने वाले पर कृपालु होता है। वह ब्राह्मण महाभारत की कथा बाँचे, जिसका चित्त स्थिर हो और देर तक आसन पर बैठने का जिसे अभ्यास हो। कथा बाँचने वाला ब्राह्मण दीर्घसूत्री न हो और न हड़बड़िया ही हो। उसे धैर्यवान् होना चाहिये। महाभारत के वक्ता का उच्चारण स्पष्ट होना चाहिये, जिससे अक्षरों तथा पदों के उच्चारण में श्रोता को किसी प्रकार का सन्देह न हो। महाभारत के वक्ता को उचित है कि, वह कथा बाँचने के पूर्व, श्रीनारायण, नरों में उत्तम नर भगवान् और सरस्वती देवी को नमस्कार करे। ऐसे ही वक्ता से नियम पूर्वक महाभारत की कथा सुनने वाले के कर्ण पवित्र होते हैं और महाभारत की कथा सुनने का फल प्राप्त होता है। जो मनुष्य महाभारत के प्रथम पारायण में ब्राह्मणों को मुँहमाँगी वस्तु दे कर, उन्हें सन्तुष्ट करता है, उसे अग्निष्टोम यज्ञ का फल होता है। उसे मरने के बाद चढ़ने को उत्तम दिव्य विमान मिलता है और वह आनन्द पूर्वक देवताओं के साथ विहार करता है। दूसरा पारायण करने से अतिरात्र यज्ञ का फल प्राप्त होता है। उसे रत्नजटित विमान चढ़ने को (मरने बाद) मिलता है। वह दिव्य पुष्पों की माला, दिव्य पोशाक और दिव्य सुगन्धियों से अलंकृत हो और दिव्य बाजूबंद पहिन, सदा देवलोक में सम्मानित होता है। तीसरा पारायण करने वाले को द्वादशाह यज्ञ करने का फल मिलता है और मरने के बाद, देवताओं जैसा दिव्य प्रकाशमान् शरीर पा कर, वह अयुत वर्षों तक स्वर्ग में वास करता है। चतुर्थ पारायण से

वाजपेय यज्ञ का और पाँचवे पारायण से द्विगुणित यज्ञफल प्राप्त होता है। मरने पर वह उदय कालीन सूर्य की तरह अथवा प्रज्वलित अग्नि की तरह दमकते हुए विमान पर देवताओं के साथ सफल हो कर, स्वर्गलोक में जाता है और वहाँ अयुतों वर्षों तक सुख भोगता है। छठवें में दूना और सातवें पारायण में इससे तिगुना फल मिलता है। वह कैलास शिखर के समान वैडूर्य मणियों से जड़ी वेदी वाले, अनेक गतियों वाले मणियों मूँगों से अलङ्कृत, इच्छाचारी और अप्सराओं से युक्त विमान में सवार हो, अपर सूर्य की तरह सब लोकों में भ्रमण करता है। अष्टम पारायण में राजसूय यज्ञ का फल प्राप्त होता है। मरने पर उसे चन्द्रमा के समान प्रकाशवान् ऐसा सुन्दर विमान चढ़ने को मिलता है, जो मन के समान गति वाला, होता है और जिसमें चन्द्रमा जैसे सफेद रंग के घोड़े जुते होते हैं और उसकी चन्द्रमुखी स्त्रियाँ सेवा करती हैं। वह सुन्दरी स्त्रियों की गोद में सोता है और स्त्रियों के मेखला और पायजेबों की मधुर झंकार सुन कर जागता है। नवम पारायण करने वाले को यज्ञों में सर्वश्रेष्ठ अश्वमेध यज्ञ करने का फल मिलता है। मरने पर उसे चढ़ने को ऐसा विमान मिलता है, जिसमें सोने के डंडे, वैडूर्यमणि की बैठकी, सोने के झरोखे होते हैं और जिसमें परिचर्या के लिये अप्सराएँ और गन्धर्व रहते हैं। उसे दिव्य पुष्प मालाएँ पहनने को मिलती हैं। वह शरीर में चन्दन लगाता है और अपर देवता की तरह वह स्वर्ग में आनन्द करता है। दसवाँ पारायण करने वाले मरने के बाद सोने का मुकुट धारण कर, शरीर में दिव्य चन्दन का लेप कर, और दिव्य मालाओं से सुशोभित हो, रत्नजटित बैठकी वाले, वैडूर्य मणियों के बंदनवारों से युक्त, सुनहले झरोखे वाले और मूँगे मोतियों के जड़ाऊ छज्जेदार विमान पर सवार हो, उत्तम लोकों में घूमता है। वह गन्धर्वों के साथ रह और स्वर्गलोक में सम्मानित हो, इक्कीस हज़ार वर्षों तक रहता है, वह क्रीड़ा करने योग्य अमरावती में इन्द्र के साथ विहार करता है। वह दिव्य विमान सवारी के लिये पा कर, विविध देशों की सुन्दरी स्त्रियों में

रह कर, देवताओं के समान रहता है। राजन् ! फिर वह सूर्यलोक, चन्द्रलोक और शिवलोक में निवास कर, विष्णु के कैङ्कर्य में प्राप्त होता है। यह फल इसी प्रकार का है—इसमें सन्देह न करना चाहिये। गुरुदेव का मत है कि, श्रद्धालु एवं ऐश्वर्यवान् पुरुष को, कथा कहने वाले को वे सब पदार्थ देने चाहिये, जो वह माँगे। हाथी, घोड़े, रथ तथा अन्य अनेक प्रकार के वाहन, कुण्डल, कङ्कण, यज्ञोपवीत, बहुमूल्य वस्त्र, चन्दनादि सुगन्धित वस्तु, उसे देनी चाहिये। जो श्रद्धालु पुरुष इस प्रकार कथा बाँचने वाले को सन्तुष्ट करता है, उसे मरने पर विष्णुलोक मिलता है।

हे राजन् ! अब मैं उन वस्तुओं को बतलाता हूँ, जो कथा समाप्त होने पर वेदपाठी ब्राह्मण को कथा की भेंट में देनी चाहिये। ये वस्तुएँ स्वर्गवासी उन क्षत्रियों के वंश, उनकी सत्यनिष्ठा, उनके बड़प्पन, उनके धर्माचरण को स्मरण कर और उनके नाम पर, ब्राह्मणों को देनी चाहिये। कथा के आरम्भ में ब्राह्मणों से स्वस्तिवाचन करावे। फिर प्रत्येक पर्व की समाप्ति पर ब्राह्मणों का पूजन करे। हे राजन् ! प्रथम वक्ता को चन्दनादि से चर्चित कर, उसे सुन्दर वस्त्र पहिनावे। फिर खीर और मिठाई उसे भोजन करावे। फिर फल मूल तथा खीर में घी और शक्कर मिला कर, अन्य ब्राह्मणों को भोजन करावे। साथ ही गुडौदन आदि भोज्य पदार्थों को दान में दे। सभा पर्व के अन्त में मालपुआ और लड्डू ब्राह्मणों को खिलावे। वनपर्व की समाप्ति पर फल और कंद ब्राह्मणों को खिलावे और जल-कुम्भों का दान करे। वेदपाठी ब्राह्मणों को वन्यफल मूल तथा अन्य उत्तम पकवान दान में दे। उद्योगपर्व के अन्त में पुष्पमालाओं और चन्दन से ब्राह्मणों का पूजन कर उन्हें भोजन करावे। भीष्मपर्व के अन्त में अनुपम वाहन का दान करे और बढ़िया पकवान ब्राह्मणों को दे। हे राजन् ! द्रोण पर्व की समाप्ति होने पर ब्राह्मणों को भोजन करावे और उन्हें सेज, धनुष, अच्छी तलवार दान में दे। जब कर्णपर्व समाप्त हो, तब ब्राह्मणों को अच्छे पकवान भोजन करावे। शल्य पर्व

के अन्त में लड्डू, मालपुआ और मीठा भात ब्राह्मणों को खिलावे। गदा पर्व की समाप्ति पर, खिचड़ी का दान करे। स्त्री पर्व की समाप्ति पर, ब्राह्मणों को रत्न दे। ऐषिक पर्व के आरम्भ में घृतौदन का दान करे और भली भाँति बनाये हुए भोज्य पदार्थ दे। शान्ति पर्व समाप्त होने पर, ब्राह्मणों को घी के बने पदार्थ खिलावे। आश्रमवास पर्व समाप्त होने पर, ब्राह्मणों को हविष्यान्न (खीर) खिलावे। मुशल पर्व के अन्त में गन्धयुक्त पुष्पों की माला और चन्दनादि से ब्राह्मणों को प्रसन्न करे। महाप्रस्थानिक पर्व में मुहमाँगा भोजन ब्राह्मणों को करावे। स्वर्गारोहण पर्व समाप्त होने पर ब्राह्मणों को खीर खिलावे। हरिवंश की समाप्ति पर एक हज़ार ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिये। साथ ही एक निष्क सहित एक गौ भी श्रेष्ठ ब्राह्मण को देनी चाहिये। जिसमें इतना दान करने की सामर्थ्य न हो—उसे उचित है कि, वह अपने सामर्थ्य के अनुसार आधा चौथाई दान अवश्य करे। प्रत्येक पर्व की समाप्ति पर श्रोता को उचित है कि, एक पुस्तक और कुछ सोना कथा बाँचने वाले को भेंट करे।

हे जनमेजय! हरिवंश के प्रत्येक पारायण में ब्राह्मणों को खीर खाँड़ के भोजन करावे। शास्त्रज्ञ, रेशमी अथवा पटसन के सफेद वस्त्र पहिने हुए, मालाधारी पुरुष, पवित्र स्थान पर बैठ कर, समस्त पर्वों का पारायण पूरा करे। फिर चन्दन पुष्पादि से यथाविधि महाभारत के प्रत्येक पर्व की अलग अलग पूजा करे। भक्ष्य, भोज्य, पेय, लेह्य आदि पदार्थों से तथा अन्य प्रकार की वस्तुओं को दे, कथा बाँचने वाले को सन्तुष्ट करे। दक्षिणा में सोने की अशर्फ़ी दे। उस पुरुष को अतिरात्र यज्ञ करने का फल प्राप्त होता है, जो भगवान् नारायण और अन्य देवताओं का नाम कीर्तन कर, गन्ध पुष्प से ब्राह्मणों का पूजन कर, उन्हें विविध प्रकार की वस्तुओं के दान दे, सन्तुष्ट करता है। जो ब्राह्मण शुद्धता पूर्वक महाभारत की कथा कहता है—उसे भी वही फल प्राप्त होता है, जो श्रोता को। हे राजन्! जब वक्ता भविष्य समय से सम्बन्ध रखने वाली कथा कहे, तब उत्तम ब्राह्मणों को भोजन करवा कर,

यथाविधि दान देना चाहिये। तदनन्तर वक्ता को भली भाँति अलङ्कृत कर भोजन करवाना चाहिये। उसके प्रसन्न होने पर, भगवान् में उत्तम भक्ति और प्रीति उत्पन्न होती है। ब्राह्मणों के प्रसन्न होने पर समस्त देवता प्रसन्न होते हैं। अतएव साधु पुरुषों को उचित है कि, वे मुँहमाँगी वस्तुएँ ब्राह्मणों को दे कर उन्हें सन्तुष्ट करें।

हे राजन्! मैंने आपको यह विधि बतला दी, इस विधि के अनुसार वही महाभारत की कथा सुन सकता है, जो श्रद्धालु है। जिसे अपना परम कल्याण अभीष्ट हो वह इस विधि से महाभारत की कथा सुने, कथा के अन्त में विधिवत् दान और ब्राह्मण भोजन करावे। मनुष्यों को सदा महाभारत का पाठ करना चाहिये और महाभारत सुनना चाहिये। जिसके घर में महाभारत की पुस्तक है, उसके हाथ में विजय है। महाभारत परमोत्तम और परम पवित्र ग्रन्थ है। महाभारत में अनेक प्रकार की कथाएँ हैं। देवता लोग महाभारत का सेवन करते हैं। महाभारत परम पद है। महाभारत सब शास्त्र ग्रन्थों में परमोत्तम है। महाभारत मोक्ष देने वाला है।

महाभारत की कथा, पृथिवी, गौ, सरस्वती (विद्या), ब्राह्मण और केशव भगवान् का गुणानुवाद,—कभी अकल्याणकारी नहीं होते। क्या वेद, क्या रामायण और क्या महाभारत—सब के आदि, मध्य और अन्त में हरि की महिमा गायी गयी है। इस लोकवासी उन मनुष्यों को जो परम पद चाहते हों, उन्हें विष्णु भगवान् की दिव्य कथाओं से पूर्ण और विद्या के भाण्डार से युक्त महाभारत की कथा सुननी चाहिये। महाभारत परम-पवित्र है। महाभारत धर्मशास्त्र है और महाभारत सर्वगुणसम्पन्न है। जो पुरुष ऐश्वर्य चाहता हो, उसे महाभारत की कथा सुननी चाहिये। क्योंकि इससे क्या शारीरिक, क्या मानसिक और क्या वाचिक—समस्त पाप वैसे ही नष्ट हो जाते हैं, जैसे सूर्योदय होने पर अन्धकार। अष्टादश पुराणों के सुनने का फल केवल महाभारत के सुनने से वैष्णवों को मिल जाता है। अतः क्या स्त्री और क्या पुरुष सब को वैष्णव होना चाहिये। जिन स्त्रियों को वैष्णव की

चाहना हो, वे हरिवंश की कथा सुनें। पूर्वोक्त फलों की चाहना रखने वालों को उचित है कि, अपने सामर्थ्यानुसार सुवर्ण दान दे—असमर्थपक्ष में पाँच निष्क सुवर्ण तो अवश्य ही दे। अपना कल्याण चाहने वाले को उचित है कि, स्वर्णशृङ्गी, वस्त्र से अलङ्कृत, सवत्सा गौ विधिपूर्वक वक्ता को दे।

हे भरतर्षभ! सोने के कड़े और कुण्डल और विशेष कर भोज्य पदार्थ भी वक्ता को देने चाहिये। वक्ता ब्राह्मण को भूमि भी दान में दे। क्योंकि भूमिदान के समान दान न कोई हुआ और न होगा।

जो मनुष्य महाभारत की कथा सदा सुनता या सुनाता है, वह समस्त पापों से छूट कर, विष्णुलोक को जाता है। हे भरतर्षभ! महाभारत की कथा कहने या सुनने वाला—अपना और अपनी ग्यारह पीढ़ियों का तथा अपनी स्त्री तथा पुत्रों का भी उद्धार करता है। हे राजन्! महाभारत के पारायण में दशांश हवन भी करना चाहिये।

स्वर्गारोहण पर्व समाप्त हुआ